fgUnh lkfgR; dk bfrgkl

BAHINDI-202

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY

MEERUT-250005

UTTAR PRADESH

SIM Module Developed by :

Reviewed by :

-

Assessed by:

Study Material Assessment Committee, as per the SVSU ordinance No. VI (2).

Copyright © Laxmi Publications Pvt Ltd.

No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior permission from the publisher.

Information contained in this book has been published by Laxmi Publications Pvt Ltd and has been obtained by its authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the publisher and its author shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specially disclaim and implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by : Laxmi Publications Pvt Ltd., 113, Golden House, Daryaganj, New Delhi-110 002.
Tel: 43532500, E-mail: info@laxmipublications.com

DEM C—
Typeset at: Printed at:
Edition: 2020

विषय-सूची

ईकाई-1 हिंदी साहित्य का इतिहास की भूमिका और आदिकाल

1. काल विभाजन एवं नामकरण **1-6**

1.1. उद्देश्य (Objectives) 1
1.2. प्रस्तावना (Introduction) 1
1.3. काल विभाजन 2
1.4. सारांश (Summary) 5
1.5. शब्दकोश (Keywords) 5
1.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 5
1.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 6

2. आदिकाल की पृष्ठभूमि **7-12**

2.1. उद्देश्य (Objectives) 7
2.2. प्रस्तावना (Introduction) 7
2.3. आदिकाल : युग की पृष्ठभूमि 7
2.4. सारांश (Summary) 11
2.5. शब्दकोश (Keywords) 11
2.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 11
2.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 12

3. आदिकालीन साहित्य परंपरा : जैन, सिद्ध, नाथ साहित्य, रासो काव्य एवं लौकिक साहित्य **13-34**

3.1. उद्देश्य (Objectives) 13
3.2. प्रस्तावना (Introduction) 13
3.3. आदिकालीन साहित्य परंपरा 14
3.4. सारांश (Summary) 32
3.5. शब्दकोश (Keywords) 33
3.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 33
3.7. संदर्भ पुस्तकें (Review Readings) 34

ईकाई-2 भक्तिकालीन साहित्य

4. निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि एवं प्रमुख विशेषताएँ, प्रमुख संत कवि एवं उनका योगदान **35-42**

4.1. उद्देश्य (Objectives) 35
4.2. प्रस्तावना (Introduction) 35
4.3. निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि 35
4.4. प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान 36
4.5. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ 39
4.6. सारांश (Summary) 41

4.7. शब्दकोश (Keywords) 41
4.8. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 41
4.9. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 42

5. निर्गुण प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा 43–46

5.1. उद्देश्य (Objectives) 43
5.2. प्रस्तावना (Introduction) 43
5.3. हिंदी सूफी काव्य परंपरा तथा सूफी मत का वैचारिक आधार 43
5.4. सारांश (Summary) 45
5.5. शब्दकोश (Keywords) 45
5.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 45
5.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 46

6. निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्य धारा 47–55

6.1. उद्देश्य (Objectives) 47
6.2. प्रस्तावना (Introduction) 47
6.3. निर्गुण ज्ञानामार्गी संत काव्यधारा के प्रमुख कवि 47
6.4. निर्गुण काव्य की विशेषताएँ 48
6.5. निर्गुण का अर्थ : निर्गुण काव्यधारा में ज्ञानामार्गी धारा 48
6.6. निर्गुण भक्ति सहित की वैचारिक पृष्ठभूमि 49
6.7. प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान 49
6.8. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ 53
6.9. सारांश (Summary) 54
6.10. शब्दकोश (Keywords) 54
6.11. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 54
6.12. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 55

ईकाई-3 रीतिकालीन साहित्य

7. रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि और आधार 56–66

7.1. उद्देश्य (Objectives) 56
7.2. प्रस्तावना (Introduction) 56
7.3. रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि और आधार 57
7.4. सारांश (Summary) 65
7.5. शब्दकोश (Keywords) 65
7.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 65
7.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 66

8. रीतिकालीन कविता की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ-रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त 67–71

8.1. उद्देश्य (Objectives) 67
8.2. प्रस्तावना (Introduction) 67
8.3. रीतिकाल की विविध काव्यधाराएँ 67
8.4. सारांश (Summary) 70
8.5. शब्दकोश (Keywords) 70

8.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 70
8.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 71

ईकाई-4 आधुनिक साहित्य

9. आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि 72-77
9.1. उद्देश्य (Objectives) 72
9.2. प्रस्तावना (Introduction) 72
9.3. आधुनिक काल की पृष्ठभूमि 72
9.4. सारांश (Summary) 76
9.5. शब्दकोश (Keywords) 76
9.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 76
9.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 77

10. भारतेंदु युग : प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तिया 78-86
10.1. उद्देश्य (Objectives) 78
10.2. प्रस्तावना (Introduction) 78
10.3. भारतेंदु युग 78
10.4. सारांश (Summary) 85
10.5. शब्दकोश (Keywords) 85
10.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 86
10.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 86

11. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनका युग : राष्ट्र काव्यधारा एवं समकालीन कविता 87-92
11.1. उद्देश्य (Objectives) 87
11.2. प्रस्तावना (Introduction) 87
11.3. द्विवेदी युग, हिंदी नवजागरण और सरस्वती, राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि 87
11.4. सारांश (Summary) 91
11.5. शब्दकोश (Keywords) 91
11.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 91
11.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 92

12. छायावाद 93-128
12.1. उद्देश्य (Objectives) 93
12.2. प्रस्तावना (Introduction) 94
12.3. छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ 94
12.4. सारांश (Summary) 126
12.5. शब्दकोश (Keywords) 127
12.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 127
12.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 128

l:eLVj fnrh;

fgUnh lkfgR; dk bfrgkl **(BAHINDI-202)**
ch , fgUnh f}rh; o'k

IkkB;dze	
b:dkbZ 1	fgUnh lkfgR; dk bfrgkl dh Hkfedk vkj vkfndky ● काल विभाजन और नाम करण ● आदिकाल की पृष्ठभूमि ● नाथ, सिद्ध और जैन साहित्य ● रासो काव्य एवं लौकिक साहित्य
b:dkbZ 2	¼kfDrdkyhu lkfgR; ● भक्तिकाल की पृष्ठभूमि ● निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा ● निर्गुण प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा
b:dkbZ 3	jhfrdkyhu lkfgR; ● रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि और आधार ● रीतिकालीन कविता का
b:dkbZ 4	vk/kfud lkfgR; ● आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि ● भारतेन्दु युग ● द्विवेदी युग ● छायावाद
IkkB;iLrd&	1 हिन्दी साहित्य डॉ भोला नाथ तिवारी 2 भक्तिकालीन साहित्य डा राममूर्ति त्रिपाठी 3 रीतिकाल साहित्य डॉ नगेन्द्र 4 आधुनिक साहित्य डॉ राजनाथ शर्मा

1. काल विभाजन एवं नामकरण

नोट

रूपरेखा

1.1 उद्देश्य (Objectives)
1.2 प्रस्तावना (Introduction)
1.3 काल विभाजन
1.3.1 हिंदी के प्रमुख इतिहासकारों द्वारा किए गए काल विभाजन
1.3.2 मिश्रबंधुओं के काल विभाजन की त्रुटियाँ
1.3.3 विभिन्न काल खंडों के नामकरण
1.4 सारांश (Summary)
1.5 शब्दकोश (Keywords)
1.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
1.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- काल विभाजन के आधार को जानने हेतु।
- इतिहासकारों द्वारा किए गए काल विभाजन को जानने हेतु।
- काल खण्डों के नामकरण को जानने हेतु।

1.2. प्रस्तावना (Introduction)

काल विभाजन के कई आधार हो सकते हैं। यथा–

1. **कर्ता के आधार पर**–प्रसाद युग, भारतेंदु युग, द्विवेदी युग।
2. **प्रवृत्ति के आधार पर**–भक्तिकाल, संतकाव्य, सूफीकाव्य, रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद।
3. **विकासवादिता के आधार पर**–आदिकाल, आधुनिक काल, मध्यकाल।
4. **सामाजिक तथा सांस्कृतिक घटनाओं के आधार पर**–राष्ट्रीय धारा, स्वातंत्र्योत्तर काल, स्वच्छंदतावाद आदि। इस संबंध में उल्लेखनीय बिंदु निम्नवत् हैं–

1. काल विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों की समानता के आधार पर होना चाहिए।
2. कालों का नामकरण यथासंभव मूल चेतना (प्रधान प्रवृत्ति) को आधार बनाकर करना चाहिए।
3. युगों (कालों) का सीमांकन मूल प्रवृत्तियों के आरंभ और समापन के अनुसार होना चाहिए।
4. काल की मूल प्रवृत्ति का निर्धारण प्रमुख ग्रंथों के आधार पर करना चाहिए।

1.3. काल विभाजन

1.3.1 हिंदी के प्रमुख इतिहासकारों द्वारा किए गए काल विभाजन

नोट

1. **गार्सा-द-तासी, शिवसिंह सेंगर** ने काल विभाजन का कोई प्रयास नहीं किया।
2. **ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान'** को ग्यारह अध्यायों में विभक्त किया है। प्रत्येक अध्याय एक काल खंड को व्यक्त करता है। इन्होंने लेखकों एवं कवियों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण किया है।

   इस काल विभाजन में वैज्ञानिकता का अभाव है तथा अध्यायों की संख्या अधिक होने से उसे काल विभाजन मानना उपयुक्त नहीं है।
3. **मिश्रबंधुओं का काल विभाजन**–मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक 'मिश्रबंधु विनोद' (1913 ई.) में निम्न काल विभाजन प्रस्तुत किया–

1. आरंभिक काल	(क)	पूर्वारंभिक काल (700 - 1343 वि.)
	(ख)	उत्तरारंभिक काल (1344 - 1444 वि.)
2. माध्यमिक काल	(क)	पूर्व माध्यमिक काल (1445 - 1560 वि.)
	(ख)	प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561 - 1680 वि.)
3. अलंकृत काल	(क)	पूर्वालंकृत काल (1681 - 1790 वि.)
	(ख)	उत्तरालंकृत काल (1791 - 1889 वि.)
4. परिवर्तन काल	(क)	(1890 - 1925 वि.)
5. वर्तमान काल	(ख)	(1926 वि. से अब तक)

1.3.2 मिश्रबंधुओं के काल विभाजन की त्रुटियाँ

1. कालखंडों के नामकरण में एक जैसी पद्धति नहीं अपनाई गई। आरंभिक, माध्यमिक, वर्तमान काल विकासवादिता के आधार पर हैं तो अलंकृत काल आंतरिक प्रवृत्ति के आधार पर।
2. इस काल विभाजन का कोई सुस्पष्ट आधार नहीं है।
3. हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ 700 वि. (64 ई.) से मानकर हिंदी के अंतर्गत अपभ्रंश की रचनाओं को समेट लिया गया है। हिंदी साहित्य का प्रारंभ 1000 ई. के आसपास हुआ था।
4. परिवर्तन काल असंगत है तथा कालों की संख्या भी अधिक है।

इन्हीं न्यूनताओं को ध्यान में रखकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उक्त काल विभाजन पर व्यंग्य करते हुए लिखा है–**''सारे रचना काल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर, इत्यादि खंडों में आँख मूंदकर बाँट देना–यह भी न देखना कि किस खंड के भीतर क्या आता है और क्या नहीं–किसी वृत्त संग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।''**

4. **आचार्य रामचंद्र शुक्ल का काल विभाजन**–आचार्य शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' (1929 ई.) में निम्न काल विभाजन किया–
   1. वीरगाथाकाल (संवत् 1050-1375 वि.)
   2. भक्तिकाल (संवत् 1375-1700 वि.)
   3. रीतिकाल (संवत् 1700-1900 वि.)
   4. गद्यकाल (संवत् 1900-1984 वि.)

वस्तुतः शुक्लजी ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में दोहरा नामकरण करते हुए उसका प्रारूप निम्न प्रकार से दिया है–

1. आदिकाल (वीरगाथाकाल) (1050-1375 वि.)
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) (1375-1700 वि.)
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) (1700-1900 वि.)
4. आधुनिक काल (गद्य काल) (1900-1984 वि.)

नोट

स्पष्ट है कि लोग जिसे आदिकाल कहते हैं शुक्लजी उस काल में 'वीरता' की प्रवृत्ति को प्रधान मानकर उसका नाम **वीरगाथाकाल** रखना चाहते हैं। इसी प्रकार पूर्व मध्यकाल को **भक्तिकाल,** उत्तर मध्यकाल को **रीतिकाल** तथा आधुनिक काल को वे **गद्यकाल** कहे जाने के पक्ष में है। उनके अनुसार वीरगाथाकाल में वीरता की, भक्तिकाल में भक्ति की, रीतिकाल में रीतितत्व निरूपण की और आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता है, इसलिए प्रधान प्रवृत्ति के आधार पर ही इन कालखंडों का नामकरण करना उचित है।

शुक्ल जी काल विभाजन पद्धति के दो आधार हैं–

1. प्रधान प्रवृत्ति, 2. ग्रंथों की प्रसिद्धि।

जिस कालखंड में एक विशेष ढंग की रचनाएँ अधिक मिलीं उसे एक अलग कालखंड माना गया और रचनाओं की प्रचुरता के आधार पर प्रधान प्रवृत्ति का निर्धारण कर लिया गया। प्रधान प्रवृत्ति के लिए लोक प्रसिद्ध ग्रंथों को ही आधार बनाया गया है।

शुक्लजी के काल विभाजन में सर्वाधिक आपत्ति विद्वानों को **वीरगाथाकाल** नाम पर है। इस काल की अधिकांश सामग्री आधारहीन एवं अप्रामाणिक है। अतः उसके आधार पर प्रधान प्रवृत्ति का निर्धारण नहीं हो सकता। कुछ आलोचकों ने इस नाम को अनुचित बताकर इसे **आदिकाल** कहना ही उपयुक्त माना है।

एक प्रवृत्ति को प्रधानता देकर शेष को गौण मान लेने का दृष्टिकोण भी कुछ लोगों के मत से एकांगी है जो इतिहास की अधूरी एवं एक पक्षीय व्याख्या करता है जिसे वैज्ञानिक नहीं कह सकते।

फिर भी यह कहना उचित है कि शुक्लजी की काल विभाजन पद्धति का आधार तर्कसंगत एवं पुष्ट है। उनका काल विभाजन सरल एवं सुस्पष्ट है। अधिकतर परवर्ती इतिहासकारों ने उसी का आधार ग्रहण किया है।

5. **डॉ. रामकुमार वर्मा का काल विभाजन**–डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (1938 ई.) में निम्न प्रकार काल विभाजन किया–
   1. **संधिकाल** (750 वि. - 1000 वि.)
   2. **चारणकाल** (1000 वि. - 1375 वि.)
   3. **भक्तिकाल** (1375 वि. - 1700 वि.)
4. **रीतिकाल** (1700 वि. - 1900 वि.)
5. **आधुनिक काल** (1900 वि. - अब तक)

   संधिकाल में उन्होंने अपभ्रंश की रचनाएँ समाविष्ट की हैं। चारणकाल और शुक्लजी के वीरगाथाकाल में कोई मौलिक अंतर नहीं है। वीरगाथाओं के रचयिता चारण कहलाते थे। शुक्लजी ने नामकरण रचना की प्रवृत्ति के आधार पर किया जबकि डॉ. वर्मा ने रचनाकार के आधार पर किया।

6. **डॉ. गणपति चंद्र गुप्त का काल विभाजन**–इन्होंने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' (1965 ई.) में निम्न काल विभाजन किया–

1. **प्रारंभिक काल** (1184-1350 ई.)
2. **मध्यकाल** 1. पूर्व मध्यकाल (1350-1500 ई.)
   2. उत्तर मध्यकाल (1500-1857)
3. **आधुनिक काल** (1857-1965 ई.)

नोट

डॉ. गणपति चंद्र गुप्त का यह भी मत है कि हिंदी के प्रारंभिक काल एवं मध्यकाल में तीन प्रकार का काव्य मिलता है–(*i*) धर्माश्रित काव्य, (*ii*) राज्याश्रित काव्य, (*iii*) लोकाश्रित काव्य।

विभिन्न काल खंडों में विकसित काव्य परंपराओं का विवरण डॉ. गुप्त ने इस प्रकार दिया है–

1. प्रारंभिक काल	1. धार्मिक रास काव्य परंपरा	धर्माश्रित काव्य
	2. संत काव्य परंपरा	
2. मध्यकाल	1. संत काव्य परंपरा	
	2. पौराणिक गीति परंपरा	धर्माश्रित काव्य
	3. पौराणिक प्रबंध काव्य परंपरा	
	4. रसिक भक्ति काव्य परंपरा	
	1. मैथिली गीति परंपरा	
	2. ऐतिहासिक रास काव्य परंपरा	
	3. ऐतिहासिक चरित काव्य परंपरा	राज्याश्रित काव्य
	4. ऐतिहासिक मुक्तक काव्य परंपरा	
	5. शास्त्रीय मुक्तक परंपरा	
	1. रोमांसिक कथा काव्य परंपरा	लोकाश्रित काव्य
	2. स्वच्छंद प्रेम काव्य परंपरा	

1.3.3 विभिन्न काल खंडों के नामकरण

1. आदिकाल

(अ) वीरगाथाकाल	–	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
(ब) आदिकाल	–	हजारीप्रसाद द्विवेदी
(स) चारणकाल	–	डॉ. रामकुमार वर्मा
(द) बीज वपन काल	–	महावीर प्रसाद द्विवेदी
(य) सिद्ध सामंत युग	–	राहुल सांकृत्यायन
(र) आरंभिक काल	–	मिश्र बंधु
(ल) प्रारंभिक काल	–	डॉ. गणपति चंद्र गुप्त

2. **पूर्व मध्यकाल**–भक्तिकाल।

3. **उत्तर मध्यकाल**–रीतिकाल, अलंकृतकाल, शृंगारकाल, कला काल।

4. **आधुनिक काल**–गद्यकाल, वर्तमान काल।

स्पष्ट है कि प्रथम कालखंड के नामकरण पर ही अधिक विवाद है। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में जो नाम सर्वाधिक प्रचलित हैं, वे इस प्रकार हैं–

1. **आदिकाल** (1000 ई. से 1350 ई.)
2. **भक्तिकाल** (1350 ई. से 1650 ई.)
3. **रीतिकाल** (1650 ई. से 1850 ई.)
4. **आधुनिक काल** (1850 ई. से अब तक)

उक्त नाम ही अब सर्वस्वीकृत हैं। इतिहास ग्रंथों में इन्हीं का प्रयोग होता है।

नोट

1.4. सारांश (Summary)

- लोग जिसे आदिकाल कहते हैं शुक्लजी उस काल में 'वीरता' की प्रवृत्ति को प्रधान मानकर उसका नाम **वीरगाथाकाल** रखना चाहते हैं। इसी प्रकार पूर्व मध्यकाल को **भक्तिकाल,** उत्तर मध्यकाल को **रीतिकाल** तथा आधुनिक काल को वे **गद्यकाल** कहे जाने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार वीरगाथाकाल में वीरता की, भक्तिकाल में भक्ति की, रीतिकाल में रीतितत्व निरूपण की और आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता है, इसलिए प्रधान प्रवृत्ति के आधार पर ही इन कालखंडों का नामकरण करना उचित है।
- यह कहना उचित है कि शुक्लजी की काल विभाजन पद्धति का आधार तर्कसंगत एवं पुष्ट है। उनका काल विभाजन सरल एवं सुस्पष्ट है। अधिकतर परवर्ती इतिहासकारों ने उसी का आधार ग्रहण किया है।

1.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **अप्रमाणिक :** जिसका कोई प्रमाण न हो।
2. **आधारहीन :** जिसका कोई आधार न हो।
3. **इतिहासकार :** इतिहास लिखने वाला

1.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. मिश्रबंधुओं के काल विभाजन की त्रुटियों से क्या तात्पर्य है? समझाइए।
2. शुक्लजी के काल विभाजन के दो आधार क्या हैं? उल्लेख कीजिए।
3. विभिन्न काल खंडों के नामकरण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. गार्सा-द-तासी, शिवसिंह सेंगर ने ..... का कोई प्रयास नहीं किया।
   2. मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक ..... 1913 ई. में काल विभाजन प्रस्तुत किया।
   3. वर्तमान काल 1890–1925 वि. ..... से अब तक।
5. **बहुविकल्पीय प्रश्न–**
   1. कालखंडों के नामकरण में एक जैसी क्या नहीं अपनाई गई?
      (क) नीति (ख) विगति
      (ग) पद्धति (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
   2. शुक्लजी के काल विभाजन में सर्वाधिक आपत्ति विद्वानों को किस नाम पर है?
      (क) चारणकाल (ख) आधुनिक काल
      (ग) आदिकाल (घ) वीरगाथा काल

3. चारणकाल और शुक्लजी के वीरगाथाकाल में कोई अंतर नहीं है।

(क) भौगोलिक (ख) खगोलिक

(ग) मौलिक (घ) आंदोलित

नोट

6. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. शुक्लजी ने नामकरण रचना की प्रवृत्ति के आधार पर किया।
2. 'वीरगाथा काल' नामकरण शुक्लजी ने किया।
3. हिंदी के प्रारंभिक काल एवं मध्यकाल में आठ प्रकार का काव्य मिलता हैं।

1.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य– डॉ. भोला नाथ तिवारी
2. भक्तिकालीन साहित्य– डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
3. रीतिकाल साहित्य– डॉ. नगेन्द्र
4. आधुनिक साहित्य– डॉ. राजनाथ वर्मा

2. आदिकाल की पृष्ठभूमि

नोट

रूपरेखा

2.1 उद्देश्य (Objectives)
2.2 प्रस्तावना (Introduction)
2.3 आदिकाल : युग की पृष्ठभूमि
2.4 सारांश (Summary)
2.5 शब्दकोश (Keywords)
2.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

2.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- आदिकाल की पृष्ठभूमि जानने में।
- आदिकाल की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ जानने में।

2.2. प्रस्तावना (Introduction)

साहित्य मानव-समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। अत: उसके प्रेरक तत्त्व के रूप में मनुष्य के परिवेश बहुत महत्त्व है। किसी भी काल के साहित्योतिहास को समझने के लिए उस परिवेश को ठीक प्रकार से समझना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से आदिकालीन साहित्य के इतिहास के साथ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों को जानना अपेक्षित है।

आदिकाल हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के परस्पर मिलन का काल है। हर्षवर्धन के समय हिन्दू संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति के चरम शिखर पर आरूढ़ हो चुकी थी। उसे राष्ट्रव्यापी एकता तथा जातीय गौरव प्राप्त हो चुके थे। संगीत, चित्र, मूर्ति एवं भवन-निर्माण आदि कलाओं में जातीय गौरव सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा था। विशेषत: सभी ललित कलाएँ धर्म से अनुप्राणित थी। भुवनेश्वर, पुरी, खजुराहो, सोमनाथ बेलोर, कांची, तंजौर तथा आबू के भव्य मंदिर आदिकाल की अद्‌भुत विभूतियाँ हैं। अरब इतिहासकार अलबरूनी तथा महमूद गजनवी इन मंदिरों की भव्यता, विशालता तथा धर्मानुप्राणता को देखकर आश्चर्यचकित रह गये थे।

2.3. आदिकाल : युग की पृष्ठभूमि

राजनीतिक परिस्थिति–भारतीय इतिहास का यह युग राजनीति की दृष्टि से अव्यवस्था, गृह-कलह और पराजय का युग है। एक ओर तो इस युग का क्षितिज विदेशी आक्रमणों के भयावह मेघों से आच्छादित रहा दूसरी ओर रजवाड़ों की पारस्परिक भीतरी कलह घुन के समान इसे खोखला करती रही। सम्राट हर्षवर्धन (सन् 605 से 643) के निधन के पश्चात् मानो एक प्रकार से उत्तरी भारत से केन्द्रीय शक्ति का ह्रास हो गया और राजसत्ता डावांडोल हो गई। 9वीं शताब्दी में प्रतिहार मिहिर भोज ने उसे फिर समेटा और

नोट

सुव्यवस्था का क्षेत्र बनाया। उधर दक्षिण को राष्ट्रकूटों के साम्राज्य ने सम्भाल रखा था। इधर अरब में नवोदित इस्लाम ने सुदूर पश्चिम एशिया और पश्चिम और पूर्व में अपने पैर पसारने चाहे, भले ही उसने बात की। बाद में मध्य एशिया और पश्चिम को रौंद और कुचल डाला पर वह अफगानिस्तान से आगे न बढ़ सका। अफगानिस्तान तब भारत के अन्तर्गत था। अब मुसलमानों ने सिंध को प्रवेश-द्वार बनाना चाहा और सन् 710-11 में मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में सिंध पर धावा किया। सिंध का राजा दाहिर और उसके पुत्र तिल-तिल भूमि के लिए लड़े परन्तु अंत में हार गये। इस पराजय का कारण स्पष्ट है, वहाँ के जाटों ने ब्राह्मण राजा दाहिर के व्यवहार से असंतुष्ट होकर उस युद्ध में केवल उदासीनता ही नहीं दिखाई प्रत्युत आक्रमणकारियों का साथ दिया और वैयक्तिक स्वार्थ के लिए निज देश के हित को न्योछावर कर दिया। इसी प्रकार, सिंध के बौद्धों का इस आक्रमण के समय अपने ब्राह्मण राजा का साथ न देना भी इसी मनोवृत्ति को सूचित करता है। इस घटना से जनता की शासन के प्रति उदासीनता और राजनीतिक चेतना के ह्रास का पता चलता है। फिर 739 ई. में तत्कालीन अरब सेनापति ने सिंध से कच्छ, दक्खिनी मारवाड़, उज्जैन और उत्तरी गुजरात को ध्वस्त कर लाट (दक्षिण गुजरात) में प्रवेश किया। वहां चालुक्य सेनापति ने अरब सेना का पूर्णतया संहार किया। अरब सिंध तक ही सीमित रहे। 9वीं सदी में वहां उनके छोटे-मोटे सरदार ही रह गए। 9वीं सदी तक मुसलमान पश्चिमोत्तर भारत में प्रवेश न कर सके क्योंकि उस समय वहां शक्तिशाली राज्य थे। इनमें काश्मीर के सम्राट ललितादित्य का विशिष्ट स्थान है।

उत्तरी भारत में दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों में प्रतिहारों का राज्य बना रहा फिर भी उसके दूर के प्रान्त स्वतंत्र हो गये। इन नये राज्यों में विशिष्ट थे चेदि (दक्षिणी बुंदेलखंड), जुझौती (उत्तरी बुंदेलखंड), मालवा, गुजरात सांभर और गौड़। 9वीं शताब्दी में बुखारा के तुर्क आक्रमणकारियों से डरकर हिन्दू राजाओं ने काबुल से हटकर अटक के समीप उदभांडपुर (ओहिंद) को अपनी राजधानी बनाया। कुछ समय के बाद शांहि इसके स्वामी हो गए। 10वीं शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य महमूद गजनवी के हाथ आया। उसने उक्त शांहि राज्य को बड़ी कठिनता से जीता। फिर पंजाब और कांगड़ा को लिया और अन्तर्वेद पर चढ़ाई करके मथुरा और कन्नौज लूटे तथा कन्नौज को करद राज्य बनाकर ग्वालियर और कालिंजर को लूटा। इसके अनन्तर सौराष्ट्र पर चढ़ाई करके सोमनाथ मन्दिर से अपार धनराशि लूटी। जिन दिनों में महमूद के उत्तरी भारत में आक्रमण पर आक्रमण हो रहे थे, उन्हीं दिनों दक्षिण का चोल राजा राजेन्द्र पूर्व में अपने राज्य का विस्तार करने में व्यस्त था। उसने उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और बंगाल तक को जीत लिया। महमूद के बाद मालवा के भोज और वेदि के कर्ण का प्रताप भी कम न था। उन्होंने कुरूक्षेत्र और कांगड़ा से तुर्क आधिपत्य का अंत कर दिया। यदि चोल राजा राजेन्द्र विदेशी आक्रांता महमूद गजनवी के प्रति अपनी शक्ति का प्रयोग करता तो निश्चय था वह इंच-भर भी भारत भूमि में न बढ़ पाता।

ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में गाहड़वालों के शक्तिशाली राज्य थे। 1150 में अजमेर के बीसलदेव चौहान ने तोमरों से दिल्ली ले ली और हांसी से लेकर हिमालय तक अपना राज्य फैला लिया और पंजाब से तुर्कों को पीछे धकेला।

गजनी में तुर्कों का अन्त करके शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने भारत जीतने की ठानी। कई बार हारकर भी उसने हिम्मत न हारी। अजमेर का शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज चौहान उस समय विदेशी आक्रमण के प्रति पूर्णत: जागरूक न था। जब गोरी ने गुजरात पर आक्रमण किया तब उसकी सेना अजमेर की पश्चिमी आबू तक जाकर लौट आई और गोरी को रोकने की ओर ध्यान न दिया बल्कि उसी समय उसने जुझौती के राजा परमार्दिदेव से युद्ध छेड़ा, जिसमें दो देशी राजाओं की शक्ति का अपव्यय हुआ। कन्नौज के राजा जयचन्द के षड्यंत्र के परिणामस्वरूप पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गोरी से पराजित हुआ और मारा गया। फिर कन्नौज और कालिंजर का पतन हुआ। दिल्ली में तुर्क सल्तनत स्थापित हुई और शनै:-शनै: उसका विस्तार हुआ। यद्यपि उसका विरोध करने वाले सर्वत्र रहे और डटकर वे उसके सरदारों से लोहा लेते रहे फिर भी मुस्लिम पताका प्राय: पूरे भारत में फहराने लगी।

राजनीतिक परिस्थितियों के सर्वेक्षण के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि हिन्दुओं में अपना राज्य फैलाने की लालसा लिये अनेक वीर थे किन्तु आक्रमण के समय अपने पड़ोसी राज्य से उदासीन रहे थे। उनमें संकुचित राष्ट्रीयता थी। अपने दस-पचास गाँवों को ही राष्ट्र समझते रहे। व्यापक रूप से समूचे

भारत को राष्ट्र नहीं समझा। यही कारण है कि वैयक्तिक वीरता होते हुए भी उन्हें पराजित होना पड़ा। यदि सम्मिलित रूप से विदेशी आक्रमणों का सामना किया गया होता तो निश्चित रूप से भारत का मानचित्र आज कुछ और होता। उस समय सामन्तवाद का बोलबाला था। राजा को सर्वोपरि सत्ता के रूप में समझा गया और उचित-अनुचित आज्ञा पर मर मिटना अपना धर्म समझा गया। जनता में राजनीतिक चेतना का ह्रास हो चुका था और वह अन्त:कलह, ईर्ष्या तथा द्वेष से बुरी तरह ग्रस्त हो चुकी थी। राजनीतिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का यह काल पतन का काल कहा जाना चाहिए।

नोट

धार्मिक परिस्थितियाँ–इस काल में वैदिक और पौराणिक धर्म के विविध रूपों के साथ बौद्ध और जैन धर्म भी अपने वास्तविक आदर्शों से दूर हट गए। शंकराचार्य (वि. 845-877) के प्रबल प्रहारों से बौद्ध धर्म को अत्यधिक आघात पहुंचा और वह अब जंत्र-मंत्र-तन्त्र की सिद्धियों के चक्र में ही पड़कर रह गया। उसने महायान वज्रयान और मन्त्रयान आदि कई रूप धारण किये। इन सम्प्रदायों का व्यावहारिक पक्ष बड़ा ही अनिष्टकारी सिद्ध हुआ। इन सम्प्रदायों में अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति और उनका प्रदर्शन ही सिद्धि समझा गया। सिद्धि लाभ के लिए गुप्त मंत्रों का जाप, आचारविहीन गुप्त क्रियाओं–विशेषकर निम्न वर्ग की नारियों से भोग-विलास आदि को अपनाया गया। इनकी योगिनियों के द्वारा मनुष्य की कामुकता को खूब बढ़ावा मिला। चमत्कार प्रदर्शनार्थ निरीह जनता को ठगने की प्रवृत्ति बढ़ी। नैतिक स्तर गिरा और धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार होने लगा।

बौद्धों के अतिरिक्त वैष्णवों के पांचरात्र, शैवों के पाशुपत, कालमुख कापालिक और रसेश्वरादि सम्प्रदायों में भी बौद्ध सम्प्रदायों की पूजा-पद्धति का अनुकरण होने लगा। शाक्तों में आनंद भैरवी, त्रिपुर सुन्दरी, ललितादि की अर्चना की यही प्रणाली है। जैन सम्प्रदाय में भी इसी तांत्रिक वामाचार पद्धति का प्रचार हुआ। इस प्रकार समाज का बहुत बड़ा क्षेत्र उस वामाचार एवं विकृत धर्म का क्रीड़ा-क्षेत्र बना। यह सारी प्रक्रिया समाज के निम्न वर्ग में चलती रही। बीच-बीच में समाज को इन वामाचारियों के चंगुल से बचाने के भी प्रयास होते रहे। नाथ योगियों ने बहुत-कुछ हद तक वज्रयानियों की तांत्रिक उपासना पद्धति को अपनाया किन्तु आगे चलकर गुरु गोरखनाथ ने इस सम्प्रदाय में योग की प्रतिष्ठा की जिसमें संयम और आचार के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार तमिलनाडु के वैष्णव भक्त आलवार और शैवभक्त नायन्मार भक्ति के लोकहितकारी रूप को लेकर आये।

शंकर, रामानुज और निंबार्क आदि आचार्यों ने अपने-अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया किन्तु लोक-व्यवहार के लिए शिव और नारायण की उपासना में पद्धति चलाई। साथ ही नैष्ठिक हिन्दुओं में आचार-विचार, व्रत, पूजादि की वैसी वृद्धि हुई जैसी जैनों में। पुराने धर्म को मानने वालों ने वाम मार्ग की निंदा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी और दूसरी ओर वाममार्गियों ने अपनी पगड़ी उछालने में अति कर दी थी। नि:संदेह उस समय का धार्मिक वातावरण अत्यंत दूषित हो गया था। इस समय पुरोहितों और गुह्य भावना की प्रधानता थी।

अपभ्रंश में लिखित चौरासी सिद्धों और नाथपंथियों का साहित्य बौद्ध धर्म के विकृत सम्प्रदायों की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का परिचय है। शंकर आदि आचार्यों के आंदोलन का प्रभाव आदिकालीन साहित्य पर विशेष रूप से नहीं पड़ा, भक्तिकालीन साहित्य पर पड़ा है।

इसी समय, इस्लाम धर्म भी अपने अनुयायियों की विजय प्राप्ति तथा आतंक के फलस्वरूप पनपने लग गया था पर इसका प्रभाव आदिकाल साहित्य पर नहीं पड़ा।

सामाजिक परिस्थितियाँ–जिस युग में धर्म और राजनीति की दीन-हीन दशा हो उसमें उच्च सामाजिकता की विशेष आशा नहीं की जा सकती है। अब जाति, गुण और कर्म के आधार पर न होकर वर्ण के आधार पर मानी जाने लगीं। एक जाति की अनेक उपजातियां होने लगीं। छुआछूत के नियम भी बड़े कड़े होते गये। हिन्दू जाति की पाचन शक्ति का प्राय: ह्रास हो चुका था। अलबरूनी इस संबंध में लिखता है- ''उन्हें (हिन्दुओं को)इस बात की इच्छा नहीं होती कि जो वस्तु एक बार भ्रष्ट हो गई है उसे शुद्ध करके फिर ले लें।'' उस समय के रूढ़िग्रस्त धर्म के समान समाज भी रूढ़िग्रस्त हो चुका था। उस समय सामन्ती वीरता और वंश-कुलीनता का बोलबाला था। राजपूत जाति की एक उल्लेखनीय विशेषता थी–वीरता और आत्मोत्सर्ग। राजपूत नारियां भी इस दिशा में किसी से पीछे नहीं रहीं, जौहर

नोट

उनके आत्म-बलिदान और शौर्य का प्रतीक है। स्वयंवर-प्रथा उस युग की एक अन्य सामाजिक विशेषता थी। बड़े आश्चर्य की बात है कि कभी-कभी स्वयंवर जैसे पवित्र धार्मिक कृत्यों पर खून की नदियाँ बह जाया करती थीं। राजपूत दृढ़प्रतिज्ञ स्वामिभक्त तथा ईमानदार थे किन्तु वे कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी नहीं थे। जहाँ उनमें युग के प्रति रुचि थी वहाँ उनमें भोग-विलास के प्रति भी खूब आसक्ति थी। उस समय के जनसामान्य में मनोबल की कमी थी। इस सामाजिक अवस्था का चित्र तत्कालीन हिन्दी साहित्य में पूर्णरूप से चित्रित हुआ है। तत्कालीन काव्यों के अध्ययन से उस समय की सामाजिक दशा के ह्रासोन्मुख होने का पता चलता है। राजाओं का जीवन विलासमय था। ऐश्वर्याभिभूत नृपति वर्ग का अधिकांश समय अन्त:पुर में अपनी महिषियों उपपत्नियों तथा रक्षिताओं के साथ रंगरेलियों में बीतता था। राजा बहुपत्नीक थे। राजकुमारों को राजनीति, व्याकरण तर्कशास्त्र, काव्यों, नाटक, वात्स्यायन-रचित कामशास्त्र, गणित, नवरस, मंत्र, तंत्र एवं वशीकरणादि की नानाविधियों की शिक्षा दी जाती थी। स्त्री के संबंध में उस समय के समाज की धारा कोई उच्च नहीं थी। उसे केवल भोग और विलास की सामग्री-मात्र समझा गया। बीसलदेव रासो की नायिका के करुण क्रन्दन में कदाचित् मध्ययुगीन रसिक पुरुष की वासना से अभिभूत तत्कालीन नारी-समाज का चीत्कार-ध्वनित हो उठा है-

अस्त्रीक जन्म कोई दीघउ महेस।

अवर जन्म धारई धणा रे नरेश।

साहित्यिक परिस्थितियाँ–नि:सन्देह यह युग भीतरी कलहों और बाह्य संघर्षों का युग था। फिर भी इसमें संस्कृति का निर्माण होता रहा। ज्योतिष, दर्शन और स्मृति आदि विषयों पर टीकाएं और टीकाओं पर भी टीकाएं लिखी जाती रहीं। नाटक, कविता आदि के क्षेत्र में जहां पहले भवभूति और राजशेखर जैसे श्रेष्ठ साहित्यकार हुए वहाँ अब पांडित्य-प्रदर्शन और अलंकार-चमत्कार दिखाना ही कविकर्म समझा जाने लगा। बारहवीं शताब्दी में श्री हर्ष का 'नैषध-चरित' इस बात का प्रमाण है। धार का शासक भोज जहां स्वयं उच्चकोटि का विद्वान था वहां कवियों का आश्रयदाता और पालक भी था। भोज के 'सरस्वती कण्ठाभरण' और 'श्रृंगार प्रकाश' संस्कृत काव्यशास्त्र की अमर निधियाँ हैं। राजा भोज की राजसभा में पद्मगुप्त और धनिक जैसे विद्वान् मौजूद थे, जयदेव जैसे सुकवि, कुन्तक, महिम भट्ट, क्षेमेन्द्र, हेमचन्द्र और विश्वनाथ जैसे तत्वविद् आचार्य और सोमदेव जैसे काव्यकार इसी समय में हुए। पर आदिकाल के हिन्दी साहित्य पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कल्हण (सन् 1149) ने राजतरंगिणी लिखकर एक नई दिशा में पग रखा। इस काल में निर्मित संस्कृत साहित्य को देखकर कहा जा सकता है कि शनै: शनै: उसमें नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का ह्रास होने लग गया था। उस समय अपभ्रंश और देशी भाषा में रचित रचनाओं में भी प्राय: यही बात है। इनमें अधिकतर धार्मिक विचार हैं। लगता है जैसे उन्हें दैनिक जीवन के घात-प्रतिघातों और राजनीतिक उथल-पुथल से कोई सरोकार नहीं था।

इस काल में वज्रयानी और सहजयानी सिद्धों, नाथपंथी योगियों, जैन धर्म के अनुयायी विरक्त मुनियों एवं गृहस्थ उपासकों और वीरता तथा श्रृंगार का चित्रण करने वाले चारणों, भाटों आदि की रचनाएँ विशेष रूप से हुई। कुछ ऐसे कवि भी हुए जिन्होंने अन्य विषयों में कविताएँ कीं। इन सबका पृथक्-पृथक् रूप से आगे वर्णन किया जायेगा।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ–आदिकाल हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के परस्पर मिलन का काल है। हर्षवर्धन के समय हिन्दू संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति के चरम शिखर पर आरूढ़ हो चुकी थीं। उसे राष्ट्रव्यापी एकता तथा जातीय गौरव प्राप्त हो चुके थे। संगीत, चित्र, मूर्ति एवं भवन-निर्माण आदि कलाओं में जातीय गौरव सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा था। विशेषत: सभी ललित कलाएँ धर्म से अनुप्राणित थी। भुवनेश्वर, पुरी, खजुराहो, सोमनाथ बेलोर, कांची, तंजौर तथा आबू के भव्य मंदिर आदिकाल की अद्भुत विभूतियां हैं। अरब इतिहासकार अलबरूनी तथा महमूद गजनवी इन मन्दिरों की भव्यता, विशालता तथा धर्मानुप्राणता को देखकर आश्चर्यचकित रह गये थे।

यद्यपि अरब और फारस देशों में आठवीं-नवीं शताब्दी में सूफी मत का उदय हो चुका था, किन्तु भारत में उसके उदार स्वरूप का प्रवेश तब तक न हो सका था क्योंकि भारत में आने वाले मुस्लिम आक्रांता वर्ग तसव्वुफ की उदार भावना के समर्थक न थे। अत: दोनों संस्कृतियाँ तनाव की स्थिति में एक-दूसरे

को संदेह व शंका की दृष्टि से देखती रहीं। इस काल में अब हिन्दू संस्कृति धीरे-धीरे मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित होने लगीं। अब भारत के उत्सव, मेलों, त्योहारों, वेशभूषा, आहार, विहार तथा मनोरंजन आदि पर मुस्लिम रंग चढ़ने लगा। यहाँ के गायन, वादन तथा नृत्य पर मुस्लिम छाप स्पष्ट है। भारतीय संगीत में सारंगी, तबला तथा अलगोजा जैसे वाद्यों का समावेश इसका स्पष्ट प्रमाण है। मुस्लिम बादशाहों के अनुकरण पर हिन्दू नरेशों के राजदरबारों में मुस्लिम कलाएँ प्रवेश पाने लगीं। मूर्तिकला को छोड़कर अन्य भारतीय ललित कलाओं में मुस्लिम कला की कलम गहरे रूप से प्रकट होने लगीं।

नोट

2.4. सारांश (Summary)

- उत्तरी भारत में दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों में प्रतिहारों का राज्य बना रहा फिर भी उसके दूर के प्रान्त स्वतंत्र हो गये। इन नये राज्यों में विशिष्ट थे चेदि (दक्षिणी बुंदेलखंड), जुझौती (उत्तरी बुंदेलखंड), मालवा, गुजरात, सांभर और गौड़। 9वीं शताब्दी में बुखारा के तुर्क आक्रमणकारियों से डरकर हिन्दू राजाओं ने काबुल से हटकर अटक के समीप उदभांडपुर (ओहिंद) को अपनी राजधानी बनाया। कुछ समय के बाद शांहि इसके स्वामी हो गए।
- 10वीं शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य महमूद गजनवी के हाथ आया। उसने उक्त शांहि राज्य को बड़ी कठिनता से जीता। फिर पंजाब और कांगड़ा को लिया और अन्तर्वेद पर चढ़ाई करके मथुरा और कन्नौज लूटे तथा कन्नौज को करद राज्य बनाकर ग्वालियर और कालिंजर को लूटा। इसके अनन्तर सौराष्ट्र पर चढ़ाई करके सोमनाथ मन्दिर से अपार धनराशि लूटी।
- जिस युग में धर्म और राजनीति की दीन-हीन दशा हो उसमें उच्च सामाजिकता की विशेष आशा नहीं की जा सकती है। अब जाति, गुण और कर्म के आधार पर न होकर वर्ण के आधार पर मानी जाने लगीं। एक जाति की अनेक उपजातियां होने लगीं। छुआछूत के नियम भी बड़े कड़े होते गये। हिन्दू जाति की पाचन शक्ति का प्रायः ह्रास हो चुका था।
- निःसन्देह यह युग भीतरी कलहों और बाह्य संघर्षों का युग था। फिर भी इसमें संस्कृति का निर्माण होता रहा। ज्योतिष, दर्शन और स्मृति आदि विषयों पर टीकाएं और टीकाओं पर भी टीकाएं लिखी जाती रहीं। नाटक, कविता आदि के क्षेत्र में जहां पहले भवभूति और राजशेखर जैसे श्रेष्ठ साहित्यकार हुए वहाँ अब पांडित्य-प्रदर्शन और अलंकार-चमत्कार दिखाना ही कविकर्म समझा जाने लगा।
- बारहवीं शताब्दी में श्री हर्ष का 'नैषध-चरित' इस बात का प्रमाण है। धार का शासक भोज जहां स्वयं उच्चकोटि का विद्वान था वहां कवियों का आश्रयदाता और पालक भी था। भोज के 'सरस्वती कण्ठाभरण' और 'श्रृंगार प्रकाश' संस्कृत काव्यशास्त्र की अमर निधियाँ हैं।

2.5. शब्दकोश (Keywords)

भावात्मक	–	भाव से युक्त
लोकहितकारी	–	लोकहित करने वाला
आचारविहीन	–	आचार से रहित

2.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।
2. राजा भोज की राजसभा में कौन-कौन से विद्वान और कवि थे? वर्णन कीजिये।
3. 'आदिकाल हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों के परस्पर मिलने का काल है।' इस पर टिप्पगी कीजिए।

नोट

4. सम्राट हर्षवर्धन का निधन कब हुआ था?

5. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :**

1. साहित्य मानव-समाज की भावात्मक स्थिति और ..... की अभिव्यक्ति है।
2. सम्राट हर्षवर्धन का काल है-सन् 605 से .....।
3. ..... में प्रतिहार मिहिर भोज में उत्तरी भारत को फिर समेटा और सुव्यवस्थित किया।
4. किसी भी काल के ..... को समझने के लिए उस परिवेश को ठीक प्रकार से समझना आवश्य होता है।

6. **बहुविकाल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

1. ..... में तत्कालीन अरब सेनापति ने सिंध से कच्छ, दक्खिनी मारवाड़, उज्जैन और उत्तरी गुजरात को ध्वस्त कर लाट में प्रवेश किया।

(क) 739 ई. (ख) 839 ई.

(ग) 939 ई. (घ) इनमें से कोई नहीं

2. ..... शताब्दी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में गाहड़वालों के शक्तिशाली राज्य थे।

(क) 10वीं–11वीं (ख) 11वीं–12वीं

(ग) 14वीं–15वीं (घ) इनमें से कोई नहीं

3. ..... में अजमेर के बीसलदेव चौहान ने तोमरों से दिल्ली ले ली और हांसी से लेकर हिमालय तक अपना राज्य फैला लिया।

(क) 1150 (ख) 1250

(ग) 1350 (घ) 1450

4. ..... में बुखारा के तुर्क आक्रमणकारियों से डरकर हिंदू राजाओं ने काबुल से हटकर अटक के समीप उदभांडपुर को अपनी राजधानी बनाया।

(क) 7वीं शताब्दी (ख) 9वीं शताब्दी

(ग) 11वीं शताब्दी (घ) 12वीं शताब्दी

2.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य– डॉ. भोला नाथ तिवारी
2. भक्तिकालीन साहित्य– डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
3. रीतिकाल साहित्य– डॉ. नगेन्द्र
4. आधुनिक साहित्य– डॉ. राजनाथ वर्मा

3. आदिकालीन साहित्य परंपरा : जैन, सिद्ध, नाथ साहित्य, रासो काव्य एवं लौकिक साहित्य

नोट

रूपरेखा

3.1 उद्देश्य (Objectives)

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

3.3 आदिकालीन साहित्य परंपरा

- 3.1.1 सिद्ध-साहित्य
- 3.1.2 जैन-साहित्य
- 3.1.3 नाथ-साहित्य
- 3.1.4 रासो-काव्य
- 3.1.5 लौकिक साहित्य
- 3.1.6 अमीर खुसरो
- 3.1.7 विद्यापति

3.4 सारांश (Summary)

3.5 शब्दकोश (Keywords)

3.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

3.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आदिकालीन साहित्य परंपरा के विषय में जानने हेतु।
- सिद्ध साहित्य तथा जैन साहित्य को समझने हेतु।
- नाथ साहित्य और रासो काव्य के संदर्भ में जानने हेतु।
- लौकिक साहित्य को समझने हेतु

3.2. प्रस्तावना (Introduction)

आदिकालीन साहित्य परंपरा सिद्ध-साहित्य, जैन-साहित्य, नाथ साहित्य तथा रासो काव्य का प्रचार करने के लिए एक विशेष काल माना जाता है। इस काल में इन साहित्य का खूब प्रचार-प्रसार किया गया। सिद्धों ने बौद्ध-काल के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा, वह हिंदी के सिद्ध-साहित्य की सीमा में आता है। पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने भी अपने मत का प्रचार हिंदी-कविता के माध्यम से किया। इसी प्रकार नाथपंथी रचनाओं की अनेक विशेषताएँ संत-काव्य में यथावत, विद्यमान हैं रासो काव्यों की रचना आदिकाल में हुई थी। कुछ रासो ग्रंथ हैं, खुमाण रासो, बिसलदेव रासो, हम्मीर रासो, परमाल रासो, पृथ्वीराज रासो।

3.3. आदिकालीन साहित्य परंपरा

3.1.1 सिद्ध-साहित्य

नोट

सिद्धों ने बौद्ध-धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा, वह हिंदी के सिद्ध-साहित्य की सीमा में आता है। राहुल सांकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनसे सिद्ध सरहपा से यह साहित्य आरंभ होता है। इन सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा एवं कुक्कुरिपा हिंदी के मुख्य सिद्ध कवि हैं। यहाँ संक्षेप में इनके व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय देकर हम साहित्य के विकास में इनकी भूमिका को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

सरहपा–ये सरहपाद, सरोजवज्र, राहुलभद्र आदि कई नामों से प्रख्यात हैं। जाति से ये ब्राह्मण थे। इनके रचना-काल के विषय में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। राहुल जी ने इनका समय 761 ई. माना है, जिससे अधिकांश विद्वान् सहमत हैं। इनके द्वारा रचित बत्तीस ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें से 'दोहाकोश' हिंदी की रचनाओं में प्रसिद्ध है। इन्होंने पाखंड और आडंबर का विरोध किया है तथा गुरु-सेवा को महत्त्व दिया है। ये सहज भोग-मार्ग से जीव को महासुख की ओर ले जाते हैं। इनकी भाषा सरल तथा गेय है एवं काव्य में भावों का सहज प्रवाह मिलता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

नाद न बिंदु न रवि न शशि मण्डल,
चिअराअ सहाबे मूकल।
अजुरे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक,
निअहि बोहिमा जाहु रे लांक।
हाथेरे कांकाण मा लोउ दापण,
अपणे अपा बुझतु निअन्मण।

सरहपा की इस कविता से स्पष्ट है कि उनकी भाषा तो हिंदी ही है, केवल उस पर यत्र-तत्र अपभ्रंश का प्रभाव है। भाव और शिल्प की जो परंपरा संत-साहित्य में जाकर नए रूप में उभरी, उसका बीज-रूप सरहपा के काव्य में द्रष्टव्य है।

शबरपा–इनका जन्म क्षत्रिय कुल में 780 ई. में हुआ था। सरहपा से इन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। शबरों का-सा जीवन व्यतीत करने के कारण ये शबरपा कहे जाने लगे। 'चर्यापद' इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। ये माया-मोह का विरोध करके सहज जीवन पर बल देते हैं और उसी को महासुख की प्राप्ति का मार्ग बतलाते हैं। इनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

हेरि ये मेरि तइला बाड़ी खसमे समतुला
षुकड़ए सेरे कपासु फुटिला।
तइला वाड़िर पासेर जोहणा वाड़ी ताएला
फिटेल अंधारि रे आकाश फुलिआ।

लुइपा–ये राजा धर्मपाल के शासन-काल में कायस्थ-परिवार में उत्पन्न हुए थे। शबरपा ने इन्हें अपना शिष्य बनाया था इनकी साधना का प्रभाव देखकर उड़ीसा के तत्कालीन राजा तथा मंत्री इनके शिष्य हो गए थे। चौरासी सिद्धों में इनका सबसे ऊँचा स्थान माना जाता है। इनकी कविता में रहस्य-भावना की प्रधानता है। एक उदाहरण देखिए–

क्राआ तरुवर पंच विडाल, चंचल चीए पइठो काल।
दिट करिअ महासुह परिमाण, लुइ भरमई गुरु पूच्छि अजाण।।

डोम्भिपा–मगध के क्षत्रिय-वंश में 840 ई. के लगभग इनका जन्म हुआ था। विरूपा से इन्होंने दीक्षा ली थी। इनके द्वारा रचित इक्कीस ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें 'डोम्बि-गीतिका', 'योगचर्या', 'अक्षरद्विकोपदेश' आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता का एक उदाहरण इस प्रकार हैं–

गंगा जउना माझेरे बहर नाइ।

तांहि बुड़िली मातंगि पोइआली ले पार करई।

बाहतु डोम्बी बाह लो डोम्बी वाटत भइल उछारा।

सद्गुरु पाऊ पए जाइब पुणु जिणउरा।।

नोट

कण्हपा–इनका जन्म कर्नाटक के ब्राह्मण-वंश में 820 ई. में हुआ था। बिहार के सोमपुरी स्थान पर ये रहते थे। जालंधरपा को इन्होंने अपना गुरु बनाया था। कई सिद्धों ने इनकी शिष्यता स्वीकार की थी। इनके लिखे चौहत्तर ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें अधिकांश दार्शनिक विषयों पर हैं। रहस्यात्मक भावनाओं से परिपूर्ण गीतों की रचना करके ये हिंदी के कवियों में प्रसिद्ध हुए। इन्होंने शास्त्रीय रूढ़ियों का भी खंडन किया है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए–

आगम वेअ पुराणे, पंडित मान बहंति।

पक्क सिरिफल अलि, जिस वाहेरित भ्रमयंति।।

कुक्कुरिपा–इनका जन्म कपिलवस्तु के एक ब्राह्मण-वंश में माना जाता है। इनके जन्म-काल का पता नहीं चल सका है। चर्पटीया इनके गुरु थे। इनके द्वारा रचित सोलह-ग्रंथ माने जाते हैं। ये भी सहज जीवन के समर्थक थे। इनकी कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है–

हांउ निवासी खमण भतारे, मोहोर विगोआ कहण न जाइ।

फेटलिउ गो माए अंत उड़ि चाहि, जा एथु बाहाम सो एथु नाहिं।

इन प्रमुख सिद्ध कवियों के अतिरिक्त अन्य सिद्ध कवि भी जन-भाषा में अपनी वाणी का प्रचार पद्य में करते थे; किंतु उसमें कवित्व का उतना अंश नहीं, जिसके आधार पर उसे साहित्य के विकास में योगदाता माना जा सके जिन कवियों की पहले चर्चा की गई है, उनका साहित्य ही हिंदी के सिद्ध-साहित्य के लिए गौरव का विषय है। इन कवियों ने हिंदी-साहित्य में कविता की जो प्रवृत्तियाँ आरंभ कीं, उनका प्रभाव भक्तिकाल तक चलता रहा। रूढ़ियों के विरोध का अक्खड़पन, जो कबीर आदि की कविता में मिलता है, इन सिद्ध कवियों की देन है। योग-साधना के क्षेत्र में भी इनका प्रभाव पहुँचा। सामाजिक जीवन के जो चित्र इन्होंने उभारे, वे भक्तिकालीन काव्य के लिए सामाजिक चेतना की पीठिका बन गए। कृष्ण-भक्ति के मूल में जो प्रवृत्ति-मार्ग है, उसकी प्रेरणा के सूत्र भी हमें इनके साहित्य में मिलते हैं।

3.1.2 जैन-साहित्य

जिस प्रकार हिंदी के पूर्वी क्षेत्र में सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का प्रचार हिंदी-कविता के माध्यम से किया, उसी प्रकार पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने भी अपने मत का प्रचार हिंदी-कविता के माध्यम से किया। इन कवियों की रचनाएँ आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती हैं। आचार-शैली के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है। फागु और चरित-काव्य शैली की समानता के लिए प्रसिद्ध है। 'रस' शब्द संस्कृत-साहित्य में क्रीड़ा और नृत्य से संबंधित था। भरत मुनि ने इसे 'क्रीडनीयक' कहा है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के रचना-काल तक 'रास' में गायन का भी समावेश हो गया था। अभिनवगुप्त ने 'रास' को एक प्रकार का रूपक माना है। लोक-जीवन में श्री कृष्ण की लीलाओं के लिए 'रास' शब्द रूढ़ हो गया था और आज भी सामान्य जनता उसी अर्थ में इसका प्रयोग करती है। जैन-साधुओं ने रास को एक प्रभावशाली रचना-शैली का रूप दिया। जैन-तीर्थंकरों के जीवन-चरित तथा वैष्णव अवतारों की कथाएँ जैन-आदर्शों के आवरण में 'रास' नाम से पद्यबद्ध की गई। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्रि के समय ताल देकर 'रास' का गायन करते थे। चौदहवीं शताब्दी तक इस पद्धति का प्रचार रहा। अत: जैन-साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ बन गए। वीर गाथाओं में 'रास' को ही 'रासो' कहा गया है, किंतु उनकी विषय-भूमि जैन रास-ग्रंथों से भिन्न हो गई है।

पूर्वोक्त प्रमुख शैलियों में लिखित आदिकालीन हिंदी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जाता है–

नोट

श्रावकाचार–देवसेन नामक प्रसिद्ध आचार्य ने 933 ई. में इस काव्य की रचना की थी। ये एक अच्छे कवि तथा उच्च कोटि के चिंतक थे। इन्होंने अपभ्रंश में भी 'दब्ब-सहाव-पयास' नामक काव्य लिखा था। हिंदी में लिखित इनकी अन्य रचनाएँ 'लघुनयचक्र' तथा 'दर्शनसार' हैं, जो काव्य की सीमा में नहीं आतीं। 'श्रावकाचार' में 250 दोहों में श्रावक-धर्म का प्रतिपादन किया गया है। कवि ने गृहस्थ के कर्त्तव्यों पर भी विस्तार से विचार किया है। इसकी रचना दोहा छंद में हुई है। एक उदाहरण इस प्रकार है–

जो जिण सासण भाषियउ, सो मइ कहिमउ सारु।
जो पालइ सइ भाउ करि, सो सरि पावइ पारु।।

भरतेश्वर-बाहुबली रास–मुनि जिनविजय ने इस ग्रंथ को जैन-साहित्य की रास-परंपरा का प्रथम ग्रंथ माना है। इसकी रचना 1184 ई. में शालिभद्र सूरि ने की थी। ये अपने समय के प्रसिद्ध जैन आचार्य तथा अच्छे कवि थे। इस ग्रंथ में भरतेश्वर तथा बाहुबली का चरित-वर्णन है। ये दोनों चरित-नायक संस्कृत, प्राकृत, तथा अपभ्रंश में भी काव्य-रचना का विषय रहे हैं। प्रस्तुत कृति में इनकी जो कथा वर्णित है, उसमें इन्हें अयोध्यावासी ऋषभ जिनेश्वर के यहाँ सुनंदा और सुमंगला से उत्पन्न बताया गया है। भरत आयु में बड़े थे एवं पराक्रमी भी अधिक थे। वे अयोध्या के राजा बनाए गए और बाहुबली को तक्षशिला का राज्य मिला। कवि ने दोनों राजाओं की वीरता, युद्धों आदि का विस्तार से वर्णन किया है, किंतु हिंसा और वीरता के पश्चात् विरक्ति और मोक्ष के भाव प्रतिपादित करना कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है। अत: वीर और शृँगार रसों का निर्वेद में अंत हुआ है। २०५ छंदों में रचित यह एक सुंदर खंडकाव्य है। इसकी भाषा में नाटकीयता, उक्ति-वैचित्र्य तथा रसात्मकता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। आगे की 'रास' या 'रासो' रचनाओं को इस ग्रंथ ने अनेक रूपों में प्रभावित किया है। इसकी कविता का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है–

बोलह बाहुबली बलवंत। लोह खण्डि तउ गरवीउ हंत।
चक्र सरीसउ चूनउ करिउं। सयलहं गोत्रह कुल सहरउं।।

चंदनबालारास–यह पैंतीस छंदों का एक लघु खंडकाव्य है, जिसकी रचना 1200 ई. के लगभग आसगु नामक कवि ने जालौर में की थी। इसकी कथा-नायिका चंदनबाला चंपा नगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री थी। एक बार कौशांबी के राजा शतानीक ने चंपा नगरी पर आक्रमण किया, जिसमें उसका सेनापति चंदनबाला का अपहरण कर ले गया और एक सेठ को बेच दिया। सेठ की स्त्री ने उसे अपार कष्ट दिया। चंदनबाला अपने सतीत्व पर अटल रहकर सब दु:ख सहती रही और अंत में महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुई। इस लघु कथानक पर आधारित यह जैन-रचना करुण रस की गंभीर व्यंजना करती है। भाव-सौंदर्य के जितने चित्र इसके रचयिता ने अंकित किए हैं, सभी ने उसकी काव्य-निष्ठा व्यंजित है।

स्थूलिभद्ररास–1209 ई. में रचित इस काव्य को जिनधर्मसूरि की कृति माना जाता है। स्थूलिभ्रद और कोशा वेश्या के विषय में अन्य रचनाएँ भी मिलती है, किंतु इस कृति की सभी घटनाओं से उनका प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। अवांतर घटनाओं के माध्यम से लौहघट के रूप में स्थूलिभद्र का संयम चित्रित करके कवि ने काव्य को विशिष्ट बना दिया है। कोशा वेश्या के पास भोग-लिप्त रहने वाले स्थूलिभद्र को कवि ने जैन धर्म की दीक्षा लेने के बाद मोक्ष का अधिकारी सिद्ध किया है। काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है, फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप हिंदी है। धार्मिक दृष्टि से प्रेरित होने पर भी इसका भाव-भूमि और अभिव्यंजना काव्यानुकूल है।

रोवंतगिरिरास–यह विजयसेन सूरि की काव्य-कृति है। 1231 ई. के लगभग लिखित इस काव्य में तीर्थंकर नेभिनाथ की प्रतिमा तथा रवंतगिरि तीर्थ का वर्णन है। यात्रा तथा मूर्ति-स्थापना की घटनाओं पर आधारित यह 'रास' वास्तुकलात्मक सौंदर्य का भी आकर्षण प्रस्तुत करता है। प्रकृति के रमणीक चित्र इस काव्य के भाव तथा कलापक्षों का शृंगार करते हैं। एक उदाहरण देखिए–

कोयल कलयलो मोर केकारओ
सम्मए महुयर महुर गुंजारवो।
जलद जाल बंबाले नीझरणि रमाउलू रेहइ,
उज्जिल सिहरू अलि कज्जल सामलु।।

नेमिनाथरास–इस काव्य की रचना सुमति गणि ने 1213 ई. में की थी। अट्ठावन छंदों की इस रचना में कवि ने नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में प्रस्तुत किया है। नेमितनाथ के प्रसंग में श्रीकृष्ण का वर्णन इस काव्य का विषय है और इन दोनों के माध्यम से विभिन्न भावों की व्यंजना हुई है। रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिंदी है।

नोट

3.1.3 नाथ-साहित्य

सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान योग-साधना की प्रतिक्रिया के रूप में आदिकाल में नाथपंथियों की हठयोग-साधना आरंभ हुई। राहुल जी ने नाथ-पंथ को सिद्धों की परंपरा का ही विकसित रूप माना है। इस पंथ को चलाने वाले मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) तथा गोरखनाथ माने गए हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने नाथ-पंथ के चरमोत्कर्ष का समय बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अंत तक माना है। उनका मत है कि नाथ-पंथ से ही भक्तिकाल के संत-मत का विकास हुआ था, जिसके प्रथम कवि कबीर थे। इस मंतव्य का समर्थन कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से हो जाता है–नाथपंथी रचनाओं की अनेक विशेषताएँ संत-काव्य में यथावत् विद्यमान हैं।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''नाथ-पंथ या नाथ-संप्रदाय के सिद्ध-मत, सिद्ध-मार्ग, योग-मार्ग, योग-संप्रदाय, अवधूत-मत एवं अवधूत संप्रदाय नाम भी प्रसिद्ध हैं।'' उनके इस कथन का यह अर्थ नहीं कि सिद्ध-मत और नाथ-मत एक ही हैं। उन्होंने तो नाम ख्याति की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिसका आशय इतना ही है कि इन दोनों मार्गों को एक ही नाम से पुकारा जाता था और उसका कारण यह था कि मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) तथा गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) सिद्धों में भी गिने जाते थे। यह प्रसिद्ध है कि मत्स्येंद्रनाथ नारी-साहचर्य के आचार में जा फंसे थे; जिससे उनके शिष्य गोरखनाथ ने उद्धार किया था। वस्तुतः इस लोक-चर्चा के मूल में ही सिद्ध-मत एवं नाथ-मत का अंतर छिपा हुआ है। सिद्ध-गण नारी-भोग में विश्वास करते थे, किंतु नाथपंथी उसके विरोधी थे। सिद्धों की रचनाओं पर पीछे विचार किया जा चुका है। यहाँ हम नाथ-साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

गोरखनाथ–गोरखनाथ नाथ-साहित्य के आरंभकर्ता माने जाते हैं। वे सिद्ध मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य थे। किंतु उन्होंने सिद्धों के मार्ग का विरोध किया था। गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे। उनके पश्चात् मत्स्येंद्रनाथ हुए। जिनके आचरण का विरोध उनके शिष्य गोरखनाथ ने किया। राहुल सांकृत्यायन ने गोरखनाथ का समय 845 ई. माना है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी उन्हें नवीं शती का मानते हैं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल तेरहवीं शती का बतलाते हैं। डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ग्यारहवीं शती का मानते हैं तथा डॉ. रामकुमार वर्मा शुक्ल जी के मत से सहमत है। नवीन खोजों के अनुसार यही धारणा अधिक प्रबल हुई है कि गोरखनाथ ने ईसा की तेरहवीं शती के आरंभ में अपना साहित्य लिखा था। उनके ग्रथों की संख्या चालीस मानी जाती है। किंतु डॉ. बड़थ्वाल ने केवल चौदह रचनाएँ ही उनके द्वारा रचित मानी हैं, जिनके नाम हैं–सबदी, पद, प्राण संकली, सिष्यादरसन नरवै बोध, अभैमात्रा, जोग, आतम-बोध, पंद्रह तिथि, सप्तवार, मछींद्र गोरखबोध रोमावली, ग्यानतिलक, ग्यानचौंतीसा एवं पंचमात्रा। डॉ. बड़थ्वाल ने 'गौरखबानी' नाम से उनकी रचनाओं का एक संकलन भी संपादित किया है, जिसकी कई रचनाएँ साहित्य की सीमा में आती है।

गोरखनाथ से पहले अनेक संप्रदाय थे, जिन सबका उनके नाथ-पंथ में विलय हो गया था। शैव एवं शाक्त के अतिरिक्त बौद्ध, जैन तथा वैष्णव योगमार्गी भी उनके संप्रदाय में आ मिले थे। गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरु-महत्मा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनःसाधना, कुंडलिनी-जागरण, शून्य-समाधि आदि का वर्णन किया है। इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता मिलती है। यही कारण है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन रचनाओं को साहित्य में सम्मिलित नहीं किया था। किंतु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी इस पक्ष में नहीं हैं। पूर्वोक्त विषयों के साथ जीवन की अनुभूतियों का सघन चित्रण होने के कारण इन रचनाओं को साहित्य में सम्मिलित करना ही उचित है। इसी साहित्य का विकास भक्तिकाल में ज्ञानमार्गी संत-काव्य के रूप में हुआ। अतः उसकी साहित्यिकता स्वीकार करना ही अधिक न्यायसंगत है।

नोट

गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। हठयोगियों के 'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। इन दोनों के योग को ही 'हठयोग' कहते हैं। गोरखनाथ ने ही षट्चक्रोंवाला योग-मार्ग हिंदी-साहित्य में चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करनेवाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था। गोरखनाथ ने लिखा है कि धीर वह है, जिसका चित्त विकार-साधन होने पर भी विकृत नहीं होता–

नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।

मूर्त जगत् में अमूर्त के स्पर्श को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं–

अंजन मांहि निरंजन भेट्या, तिल मुख भेट्या तेलं।
मूरति मांहि अमूरति पर्स्या, भया निरंतरि खेलं।।

गोरखनाथ की कविताओं से स्पष्ट है कि भक्तिकालीन संत-मार्ग के भावपक्ष पर ही उनका प्रभाव नहीं पड़ा, भाषा और छंद भी प्रभावित हुए हैं। इस प्रकार उनकी रचनाओं में हमें आदिकाल की वह शक्ति छिपी मिलती है, जिसने भक्तिकाल की कई प्रवृत्तियों को जन्म दिया।

अन्य कवि–नाथ-साहित्य के विकास में जिन अन्य कवियों ने योग दिया, उनमें चौरंगीनाथ, गोपीचंद, चुणकरनाथ, मरथरी, जलंध्रीपाव आदि प्रसिद्ध हैं। इन कवियों की रचनाओं में उपदेशात्मकता तथा खंडन-मंडन का प्राधान्य है। तेरहवीं शती में इन सबने अपनी वाणी का प्रचार किया था। ये सभी हठयोगी प्राय: गोरखनाथ के भावों का अनुकरण करते थे, अत: इनकी रचनाओं में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं मिलती। गोरखनाथ की ही हठयोग-साधना में ईश्वरवाद व्याप्त था। इन हठयोगियों ने भी उसका प्रचार किया, जो रहस्यवाद के रूप में प्रतिफलित हुआ और जिसका भक्तिकाल में कबीर आदि ने अनुकरण किया।

3.1.4 रासो-काव्य

जैन साहित्य के संदर्भ में यह संकेत किया जा चुका है कि हिंदी-साहित्य के आदिकाल में रचित जैन 'रास-काव्य' वीरगाथाओं के रूप में लिखित रासो-काव्यों से भिन्न है। दोनों की रचना-शैलियों का अलग-अलग भूमियों पर विकास हुआ है। जैन रास-काव्यों में धार्मिक दृष्टि के प्रधान होने से वर्णन की वह पद्धति प्रयुक्त नहीं हुई, जो वीरगाथापरक रासो-ग्रंथों में मिलती है। इन काव्यों की विषयवस्तु का मूल संबंध राजाओं के चरित तथा प्रशंसा से है। फलत: इनका आकार रचनाकारों की मृत्यु के पश्चात् भी बढ़ता रहा है। रासो-काव्यों को देखने से पता चलता है कि उनके रचयिता जिस राजा के चरित्र का वर्णन करते थे, उसके उत्तराधिकारी राजगण अपने आश्रित अन्य कवियों से उसमें अपने चरित भी सम्मिलित करा देते थे। यही कारण है कि इन ग्रंथों में मध्यकालीन राजाओं का भी वर्णन मिलता है तथा भाषा में भी उत्तरवर्ती भाषा-रूपों की झलक पाई जाती है। राजस्थान के कतिपय वृत्त-संग्रहकर्ताओं ने अधिकांश रासो-काव्यों को इन्हीं बातों के कारण अप्रामाणिक रचनाएँ माना है। भाषा वैज्ञानिकों से उन्हें समर्थन भी मिल गया है। परंतु इतिहास के मर्म को समझने वाले विद्वान उन वृत्त-संग्राहकों के कथनों में विश्वास नहीं करते। सत्य यही है कि रासो-काव्यों की रचना आदिकाल में ही हुई थी। उनमें जो अंश उत्तरवर्ती राजाओं से संबंधित हैं, वे प्रक्षिप्त हैं। इसी मान्यता के आधार पर हम रासो-ग्रंथों को आदिकाल का साहित्य स्वीकार करके यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे।

खुमाण रासो–आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसको नवीं शताब्दी की रचना माना है, क्योंकि इसमें नवीं शती के चित्तौड़-नरेश खुमाण के युद्धों का चित्रण है। राजस्थान के वृत्त-संग्राहकों ने इसको सत्रहवीं शताब्दी की रचना बताया है, क्योंकि इसमें सत्रहवीं शताब्दी के चित्तौड़-नरेश राजसिंह तक के राजाओं का वर्णन मिलता है और इसी आधार पर वे इसको आदिकाल की रचना नहीं मानना चाहते। वास्तविकता यह है कि इस काव्य का मूल रूप नवीं शताब्दी में ही लिखा गया था। तत्कालीन राजाओं के सजीव वर्णन, उस समय की परिस्थितियों के यथार्थ ज्ञान तथा भाषा के 'आर्रभिक हिंदी-रूप' के प्रयोग से इसी तथ्य के प्रमाण मिलते हैं।

वृत्त-संग्राहकों के पास इतिहास को समझने की पैनी दृष्टि नहीं थी, इसलिए राजस्थान में रहते हुए भी वे आदिकाल की संपत्ति को भक्तिकाल और रीतिकाल के भंडार में डालने का दुराग्रह करके यश अर्जित करते रहे हैं, जबकि वह संपत्ति उन कालों की प्रवृत्तियों से किसी भी रूप में मेल नहीं खाती। इन लोगों ने रचनाकारों के नामों के संबंध में भी भ्रम पैदा किया है। अधिकांश विद्वानों ने नवीं शती के खुमाण नरेश के समकालीन दलपत विजय को 'खुमाण रासो' का रचयिता माना है जबकि वृत्त-संग्रहकर्ताओं ने यह सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है कि उसका रचयिता सत्रहवीं शती ईस्वी का दलपत विजय नाम का कोई जैन साधु था। रचना-शैली तथा विषय-वस्तु से सिद्ध है कि यह काव्य किसी जैन साधु की रचना नहीं हो सकता। यदि जैन साधु ने इसे लिखा होता तो निश्चय ही इसमें धर्म-भावना किसी-न-किसी रूप में व्याप्त मिलती।

इस ग्रंथ की प्रमाणिक हस्तलिखित प्रति पूना के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह पाँच हजार छंदों का विशाल काव्य-ग्रंथ है। राजाओं के युद्धों और विवाहों के सरल वर्णनों से इस काव्य की भाव भूमि का विस्तार हुआ है। संदर्भानुसार नायिकाभेद, षट्ऋतु आदि के चित्रण भी मिलते हैं। राजाओं की प्रशंसा काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य है। वीर रस के साथ-साथ शृंगार की धारा भी आदि से अंत तक चली है। वस्तु-वर्णनों में पर्याप्त रमणीयता है। इसमें दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं तथा इसकी भाषा राजस्थानी हिंदी है। राजाओं के वर्णनों पर आधारित होने पर भी इसमें काव्यात्मक सरस वर्णनों का प्राचुर्य है। एक उदाहरण देखिए–

पिउ चित्तौड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।
जोवै बाट बिरहिणी खिण-खिण अणवै खीज।।
संदेसो पिण साहिबा, पाछो फिरिय न देह।
पंछी घाल्या पिंज्जरे, छूटण रो संदेह।।

प्राचीन काल में मुद्रण के अभाव के कारण लिपिकर्ता जैसा लिखते थे, वैसा ही ग्रंथ की भाषा का रूप हो जाता था। धार्मिक साहित्य में धार्मिक भावना के कारण शब्दों के मूल रूप की रक्षा का प्रयत्न किया जाता था, किंतु रासो-काव्यों के प्रति वैसा कोई आग्रह नहीं होता था। अतः उनकी भाषा पर लिपिकर्ताओं की भाषा के रूपों के प्रभाव पड़ते रहते थे। इस काव्य की भाषा के साथ भी यही हुआ है। वस्तुतः इस ग्रंथ के मूल रूप तक पहुँचने के लिए प्रमाणिक पाठ-संपादन की आवश्यकता है।

बीसलदेव रासो–इस ग्रंथ की रचना नरपति नाल्ह कवि ने 1155 ई. में की थी, जैसा कि निम्नांकित उद्धरण से स्पष्ट है–

बारह सै बहोत्तराहां मंझारि। जेठ वदी नवमी बुधिवारि।
नाल्ह रसायण आरंभई। सारदा तूठी ब्रह्म कुमारि।
कासमीरां मुख मंडनी। रास प्रसागों वीसलदेराइ।

प्रथम पंक्ति से संवत् 1272 वर्ष भी माना गया है, किंतु अधिकांश विद्वान् 1292 वि. ही स्वीकार करते हैं। कुछ वृत्त-संग्रहकर्त्ताओं ने इस ग्रंथ को भी आदिकाल की रचना नहीं माना। यह संभव है कि इसमें भी कुछ परिवर्तन होते रहे हों, किंतु उससे इसकी प्राचीनता समाप्त नहीं हो जाती। डॉ. मोतीलाल मेनारिया सोलहवीं शताब्दी के नरपति नामक एक गुजराती कवि को इसका रचयिता बतलाते है, किंतु डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने कई प्राचीन प्रतियों के आधार पर सिद्ध किया है कि यह कृति चौदहवीं शताब्दी ईस्वी में लिखी गई थी। नवीन खोजों में एक प्राचीन प्रति मिली है, जिससे इस काव्य की रचना-काल 1016 ई. सिद्ध होता है। उसमें यह पंक्ति मिलती है–''संवत् सहस तिहत्तर जानि, नाल्ह कबीसर सरसीय वाणि।''

'बीसलदेव रासो' मूलतः गेय काव्य था, अतः इसके रूप में परिवर्तन होता रहा है। डॉ. मेनारिया का मत है कि वह काव्य गेय नहीं था। शायद वे गेयता का अर्थ 'लोकगीतों की तरह गाया जाना' लगाते हैं और इसी आधार पर यह कहते हैं कि राजस्थान में कभी भी यह गेय नहीं रहा। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 128 छंदों की एक प्रति का संपादन किया है। यह पाठ 'बीसलदेव रासो' का मूल रूप बताया जाता है। इसकी भाषा आदिकालीन आरंभिक हिंदी का सहज स्वरूप सिद्ध होती है।

नोट

'बीसलदेव रासो' हिंदी के आदिकाल की एक श्रेष्ठ काव्य-कृति है। इसमें भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव तृतीय के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा सरस शैली में प्रस्तुत की गई है। राजमती की बातों से रुष्ट होकर स्वाभिमानी राजा उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती उसके विरह में दु:खी रहती है। वह राजभवन की दीवारों को कोसती हुई वन में रहने की कामना करती है। सामंती जीवन के प्रति गहरी अरुचि का सजीव चित्र इस काव्य में मिलता है। 'संदेशरासक' के समान ही 'बीसलेदव रासो' की भाव-भूमि प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति से सरस है। 'मेघदूत' और 'संदेशरासक' की संदेश-परंपरा भी इसमें मिलती है। राजमती एक पंडित के द्वारा अपने पति के पास संदेश भेजती है। जब वह लौट आता है तब राजमती शृंगार करके उससे मिलती है। शृंगार के वियोग और संयोग पक्षों के अत्यंत मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं। राजमती में एक कुलीना गृहिणी का स्वाभिमान है, जो विरह के चित्रों को कांतिमय बनाता है। संयोग के समय भी यही कांति काव्य-सौंदर्य की वृद्धि करती है। राजमती की वाणी व्यंग्यमयी हो उठती है, जिससे उसके पति का हृदय हिल जाता है। पति के हृदय को बेधनेवाला राजमती का एक कुलीनता-संस्कार ही उसकी समस्त विरह-वेदना का आधार है, वही उसे इस विवशता तक पहुँचाता है–

अस्त्रीय जनम काई दीधउ महेस।
अवर जनम थारई घणा रे नटेस।
राणि न सिरजीय धउलीय गाइ।
वणषण्ड काली कोइली।
हउं बइसती अंबा नइ चंपा कीं डाल।
भषती दाष बीजोरड़ी।
इणि दुष झूरइ अवलाजी बाल।

इस प्रकार इस काव्य के वर्णनों में एक संस्कार-दृष्टि मिलती है, जो नारी-गरिमा की स्थापना करती है। कवि ने प्रकृति के रमणीय चित्रों से भी भाव-चित्रण को सौंदर्य दिया है। बारह मासों तथा ऋतुओं के प्राकृतिक चित्र संयोग और वियोग में उद्दीपन का काम करते हैं। विरह की विभिन्न दशाओं के वर्णन में समस्त प्रकृति सहायक हुई है तथा अनुभूतियों को भी उसने सुकुमारता प्रदान की है।

'बीसलदेव रासो' की शृंगार-परंपरा का आदिकाल में ही अंत नहीं हो जाता। विद्यापति से होती हुई यही परंपरा भक्तिकाल में प्रेमाख्यानक काव्यों तक पहुँची, कृष्ण-भक्तों को भी उसने प्रभावित किया तथा रीतिकाल में जाकर उसका सरस शृंगार-काव्य के रूप में चरम विकास हुआ।

हम्मीर रासो–'प्राकृत-पैंगलम' में इस काव्य के कुछ छंद मिले थे और उन्हीं के आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसके अस्तित्व की कल्पना की थी। उनका अनुमान था कि इसमें हम्मीर और अलाउद्दीन के युद्धों का वर्णन तथा हम्मीर की प्रशंसा चित्रित होगी। किंतु राहुल जी ने उन पद्यों को जज्जल नामक किसी कवि की रचना घोषित किया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि 'हम्मीर' शब्द अमीर का विकृत रूप है, जो किसी पात्र का नाम न होकर एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। अत: शार्ङ्गधर-कृत इस 'हम्मीर रासो' का अस्तित्व संकट में पड़ा हुआ है। अभी तक इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है।

परमाल रासो–उत्तर प्रदेश में 'आल्हखंड' के नाम से जो काव्य प्रचलित है, वही 'परमाल रासो' के मूल रूप का विकसित रूप माना जाता है। यह रासो लोक-गेय काव्य था, अत: इसके मूल की सुरक्षा नहीं हो सकी। इसमें अनेक अंश बाद में जोड़े गए हैं तथा अनेक अंशों में वर्णन और भाषा संबंधी परिवर्तन किए गए हैं। धीरे-धीरे 'आल्हा' लोकगीत की एक शैली ही बन गया है। अत: आधुनिक विषयों पर भी 'आल्ह' लिखे जाने लगे हैं।

प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में मौखिक रूप में उपलब्ध 'आल्हखंड' के आधार पर 'परमाल रासो' के साहित्यिक स्वरूप के विषय में कुछ भी कहना कठिन है। 1865 ई. में चार्ल्स इलियट ने जिस 'आल्हखंड' का प्रकाशन कराया था, वह मौखिक परंपरा पर ही आधारित है। इसी प्रति के आधार पर

डॉ. श्यामसुंदर दास ने 'परमाल रासो' का पाठ-निर्धारित किया और उसे नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित कराया। इस नए रूप में उपलब्ध 'परमाल रासो' यद्यपि सर्वथा प्रमाणिक कृति तो नहीं है, तथापि आदिकाल में रचित मूल 'परमाल रासो' के ऐतिहासिक अस्तित्व को समझने में सहायक अवश्य है।

'परमाल रासो' का रचयिता जगनिक नामक कवि माना जाता है, जो महोबा के राजा परमर्दिदेव का आश्रित था। उसने इस काव्य में आल्हा और ऊदल नामक दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लड़ाइयों का वर्णन किया है। इसी आधार पर इसका रचना-काल तेरहवीं शती का आरंभ माना जाता है। इसमें वीर-भावना का जितना प्रौढ़ रूप मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। आज भी जब इसे गायक संगीत के साथ गाते हैं, तब दुर्बलों में भी तलवार चलाने की स्फूर्ति आ जाती है। विवाह और शत्रु-प्रतिशोध वीरता के प्रदर्शन का आधार रहे हैं। युद्धों के अत्यंत प्रभावशाली वर्णनों की इस काव्य में भरमार है। भावों के अनुसार ही भाषा भी चली है और उसमें एक विशेष शब्द-ध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो गई है। गेयता का गुण इस काव्य को विकासशील लोकगाथा-काव्य की श्रेणी में ले जाता है, किंतु इसकी रचना लोक-गाथा के रूप में न होकर शुद्ध काव्य के रूप में ही हुई है।

भाषा की दृष्टि से इस काव्य का मूल्यांकन कर पाना संभव नहीं, क्योंकि मूल रूप का कोई भी अंश अब शुद्ध रूप में सुरक्षित नहीं है। उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। छंद-विधान की दृष्टि से इस काव्य की एक विशेष शैली है, जिसे आल्ह-शैली कहना ही उचित है। इसकी वर्णन-शक्ति और प्रभावोत्पादकता को समझाने में निम्नांकित पंक्तियाँ कुछ सहायक हो सकती हैं–

बारह बरस लौ कूकर जीवै, अरु तेरह लौ जियै सयार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन कौ धिक्कार।।

पृथ्वीराज रासो–आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि ''(चंद) हिंदी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी का प्रथम महाकाव्य है।'' उन्होंने चंदबरदायी को दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान का सामंत और राजकवि माना है। महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार चंदबरदायी का जन्म लाहौर में हुआ था। इनके जन्म-काल के संबंध में कई धारणाएँ हैं। शुक्ल जी ने इनका जन्म-वर्ष 1168 ई. माना है तथा लिखा है कि ''रासो के अनुसार ये भट्ट जाति के जगात नामक गोत्र के थे। इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब थी, जहाँ लाहौर में इनका जन्म हुआ था। इनका और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही दिन यह संसार भी छोड़ा था।'' शुक्ल जी ने हरप्रसाद शास्त्री द्वारा प्राप्त चंद का एक वंश-वृक्ष भी प्रस्तुत किया है। वह वंश-वृक्ष शास्त्री जी को नानूराम भाट से प्राप्त हुआ था, जो स्वयं को चंद का वंशज मानता था। उसके कथनानुसार चंद के चार पुत्र थे, जिनमें से चतुर्थ पुत्र जल्ल था। जिस समय पृथ्वीराज को मुहम्मद गोरी बंदी बनाकर अपने देश ले जा रहा था, उस समय चंद भी महाराज के साथ गया था तथा अपने पुत्र जल्ल को 'पृथ्वीराज रासो' सौंप गया था। इस संबंध में यह उक्ति प्रसिद्ध है–''पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चलि गज्जन नृप काज।'' कहा जाता है कि जल्ल ने चंद के अधूरे महाकाव्य को पूर्ण किया था–

रघुनाथ चरित हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
प्रथिराज सुजस कवि चंद कृत, चंद नंद उद्धरिय तिमि।।

यह प्रसिद्ध है कि चंद ने स्वामी के हितार्थ अपना बलिदान किया था। वह बहुत प्रतिभाशाली, दूरदर्शी, वीर तथा स्वामिभक्त कवि था। पृथ्वीराज उसे सदा अपने सखा के समान साथ रखते थे एवं उसकी हर बात मानते थे।

पृथ्वीराज रासो के संस्करण–सभा ने 1584 ई. में लिखित प्रति के आधार पर 'रासो' का संपादन कराया था। इस संस्करण में 69 समय (खंड) तथा 16306 छंद हैं। द्वितीय रूप में उपलब्ध 'पृथ्वीराज रासो' 7000 छंदों का काव्य माना जाता है। इसका प्रकाशन नहीं हुआ, किंतु अबोहर एवं बीकानेर में इसकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं, जो सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी में लिखी गई हैं। तीसरा लघु संस्करण 3500 छंदों का है, जिसमें केवल 19 समय हैं। इस संस्करण की हस्तलिखित प्रतियाँ भी बीकानेर में सुरक्षित हैं। चौथा संस्करण सबसे छोटा है, जिसमें केवल 1300 छंद हैं। इसी को डॉ. दशरथ शर्मा आदि कुछ विद्वान मूल रासो मानते हैं।

नोट

प्रमाणिकता–इन चारों संस्करणों को देखकर यह प्रश्न सहज रूप में उत्पन्न होता है कि इनमें से प्रमाणिक संस्करण कौन-सा है? और इसी से लगा हुआ वह विवाद भी बढ़ जाता है. जिसके अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' को एक जाली ग्रंथ माना गया है। हिंदी-साहित्य के इतिहास में यह ग्रंथ इस दृष्टि से सर्वाधिक विवादास्पद रहा है। विद्वानों में कई वर्ग बन गए हैं। डॉ. श्यामसुंदरदास, मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, मिश्रबंधु, कर्नल टॉड आदि विद्वानों ने यह माना है कि 'पृथ्वीराज रासो' का जो संस्करण सभा से प्रकाशित हुआ है, वही प्रामाणिक है। दूसरा वर्ग रामचंद्र शुक्ल, कविराजा, श्यामलदान, गौरीशंकर, हीराचंद ओझा, डॉ. बूलर, मुंशी देवीप्रसाद आदि विद्वानों का है, जो 'रासो' को सर्वथा अप्रामाणिक ग्रंथ घोषित करते हैं। आश्चर्य है कि शुक्ल जी अप्रमाणिक मानते हुए भी उसे अपने इतिहास में आदिकाल के अंतर्गत स्थान देते हैं। तृतीय वर्ग के विद्वान–मुनि जिनविजय, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि–यह मानते हैं कि पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चंदबरदायी ने ही 'पृथ्वीराज रासो' लिखा था, किंतु मूल रूप आजकल उपलब्ध नहीं है। चौथा मत नरोत्तमदास स्वामी का है। उन्होंने सबसे अलग यह बात कही है कि चंद ने पृथ्वीराज के दरबार में रहकर मुक्तक रूप में 'रासो' की रचना की थी। उनके इस मत से की 'रासो' मूलत: प्रबंधकाव्य नहीं था–अन्य कई विद्वान सहमत नहीं हैं।

वस्तुत: आरंभ में यह ग्रंथ विवादास्पद नहीं था। कर्नल टॉड ने इसकी वर्णन-शैली तथा काव्य-सौंदर्य पर रीझकर इसके लगभग 30 हजार छंदों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया था। तासी भी इसकी प्रमाणिकता में संदेह नहीं करते थे। बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ने इस ग्रंथ का मुद्रण भी आरंभ कराया था। सन् 1875 में डॉ. बूलर ने 'पृथ्वीराज विजय' ग्रंथ के आधार पर इसे अप्रमाणिक रचना घोषित किया। फलत: राजस्थान के कुछ इतिवृत्त-खोजियों–कविराजा, मुरारिदान, श्यामलदान, गौरीशंकर, हीराचंद ओझा आदि ने इस काव्य को अप्रमाणिक सिद्ध करने के सायास तर्क जुटाए। इन विद्वानों के तर्कों को निराधार सिद्ध करने का प्रयत्न किया डॉ. दशरथ शर्मा ने। वस्तुत: यह विवाद इतना उलझ गया है कि अब तक कुछ विद्वान इसे अप्रमाणिक कृति सिद्ध करने में जुटे हुए हैं। वे एतदर्थ नए-नए तर्क खोजते रहते हैं। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं, जो उनके द्वारा खोजे गए तर्कों को निराधार सिद्ध करने के लिए सामग्री जुटाते रहते हैं।

अप्रमाणिकता के लिए तर्क–जो लोग 'रासो' को अप्रमाणिक रचना मानते हैं, उनके तर्क निम्नलिखित हैं–

1. 'रासो' में उल्लिखित घटनाएँ और नाम इतिहास से मेल नहीं खाते। इसमें परमार चालुक्य और चौहान क्षत्रियों को अग्निवंशी माना गया है, जबकि वे सूर्यवंशी प्रमाणित हुए हैं।
2. पृथ्वीराज का दिल्ली जाना, संयोगिता-स्वयंवर आदि घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खाती।
3. अनंगपाल, पृथ्वीराज तथा बीसलदेव के राज्यों के संदर्भ भी अशुद्ध हैं।
4. पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूरी था, जो 'रासो' में कमला बताया गया है।
5. पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह मेवाड़ के राणा समरसिंह के साथ बताया गया है, जो अशुद्ध है।
6. पृथ्वीराज द्वारा गुजरात के राजा भीमसिंह का वध भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
7. 'रासो' में पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का वर्णन है, जो इतिहास से मेल नहीं खाता।
8. पृथ्वीराज के हाथों गोरी की मृत्यु की सूचना भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
9. पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
10. 'रासो' में दी गई तिथियाँ अशुद्ध हैं। सभी तिथियों में इतिहास की तिथियों से प्राय: 90-100 वर्षों का अंतर है।

यदि उपर्युक्त तथ्यों को ही अंतिम प्रमाण मान लिया जाए, तब तो 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रमाणिक रचना कहा ही जा सकता है। किंतु दूसरे पक्ष के तर्क भी इस संबंध में विचारणीय हैं–

1. डॉ. दशरथ शर्मा का मत है कि इसका मूल रूप प्रक्षेपों में छिपा हुआ है। इधर जो लघुतम प्रतियाँ मिली हैं, उनमें इतिहास संबंधी अशुद्धियाँ नहीं हैं।
2. घटनाओं में 90-100 वर्षों का जो अंतर है, वह संवत् की भिन्नता के कारण है। मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने 'अनंद संवत्' की कल्पना की है और उसके अनुसार तिथियाँ भी शुद्ध सिद्ध होती हैं।
3. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'पृथ्वीराज रासो' में बारहवीं शताब्दी की भाषा की संयुक्ताक्षरमयी अनुस्वारांत प्रवृत्ति मिलती है, जिससे यह बारहवीं शताब्दी का ग्रंथ सिद्ध होता है।
4. 'रासो' इतिहास-ग्रंथ न होकर काव्य-रचना है अत: उसमें इतिहास का सत्य खोजना और उसके न मिलने पर उसे अप्रामाणिक घोषित करना अनुचित है।
5. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह मत भी है कि 'पृथ्वीराज रासो' की रचना शुक-शुकी-संवाद के रूप में हुई थी। अत: जिन सर्गों में यह शैली नहीं मिलती, उन्हें प्रक्षिप्त मानना चाहिए। यदि यह तर्क मान लिया जाए, तो वे ही अंश प्राय: प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं, जिनमें इतिहास-विरुद्ध तथ्य हैं।
6. जिन लोगों ने 'रासो' में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग देखकर उसे जाली ग्रंथ माना है उसके विरुद्ध यह तर्क दिया जाता है कि चंद लाहौर का निवासी था। वहाँ उस समय मुसलमानों का प्रभाव आ चुका था, अत: उसकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का मिश्रण होना सहज है।

वस्तुत: विद्वानों ने बाल की खाल खींचने की चेष्टा में अनेक ऐसे तर्क प्रस्तुत किए हैं, जो इस काव्य की प्रमाणिकता के लिए उचित कसौटी नहीं बन सकते। 'पृथ्वीराज रासो' ही नहीं, 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', 'बीजक' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों पर भी यदि अनेक प्रकार के तर्क दिए जाएँ तो उनकी प्रमाणिकता भी किसी-न-किसी सीमा तक संदेह का विषय बन सकती है। 'रामचरितमानस' में तो प्रक्षिप्त अंश स्वीकार किए भी जाते हैं। कई ऐसे पद भी मिलते हैं, जो सूर और मीरा दोनों के नाम से प्रसिद्ध है। अत: प्रक्षिप्तांशों या इतिहास-विरोधी कथनों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक मानना उचित नहीं है। चंद ने पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं का जैसा सजीव वर्णन किया है, उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि वह पृथ्वीराज का समकालीन कवि था। अत: 'रासो' को अप्रामाणिक मानना उचित नहीं है। यदि इस विवाद में कोई सत्यांश झलकता भी है, तो वह इतना ही कि 'पृथ्वीराज रासो' में पर्याप्त प्रक्षिप्त अंशों का भी समावेश हुआ है।

'पृथ्वीराज रासो' में वस्तु-वर्णन का भी आधिक्य है। कवि ने बड़ी तन्मयता के साथ नगरों, वनों, सरोवरों, किलों आदि का वर्णन किया है। युद्ध-क्षेत्र के दृश्य तो अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय देते ही है, कवि ने समय और क्रिया को एक साथ बिंबों में बाँधकर रंग और ध्वनियों को भी रूपायित कर दिया है। भाव, वस्तु और ध्वनि की सम्मिलित प्रभावान्विति के उदाहरण 'पृथ्वीराज रासो' में भरे पड़े हैं।

काव्योत्कर्ष–चंदबरदायी ने इस ग्रंथ में अनेक घटनाओं का समावेश किया है तथा कुछ घटनाएँ बाद में भी चारणों ने जोड़ी हैं, जिससे ऐसा लगता है कि यह काव्य एक घटना-कोश है. परंतु समस्त घटना-चक्र के भीतर कवि ने अपनी रस-दृष्टि का नियोजित रूप में विस्तार किया है। अत: इसे 'महाभारत' की तरह एक विशाल महाकाव्य मान सकते हैं। इस काव्य में दो रस प्रमुख हैं–शृंगार और वीर। ये दोनों रस पृथ्वीराज चौहान के चरित्र के दो पार्श्व उन्मुक्त करते हैं। वह जितना वीर है, उतना ही शृंगार-प्रेमी भी है। कवि ने एक ओर तो युद्धों के वर्णन में वीरता और पराक्रम की अद्‌भुत सृष्टि की है, दूसरी ओर रूप-सौंदर्य और प्रेम के भी सरस चित्र उतारे हैं। नारी दोनों रसों के केंद्र में हैं। उसे पाने के लिए युद्ध होते हैं और पा लेने पर जीवन का विलास-पक्ष अपनी पूरी रमणीयता के साथ उभरता है। ध्यान देने की बात यह है कि प्रेम और शौर्य के सभी चित्रों में कवि ने कुछ नैतिक मर्यादाओं का निर्वाह किया है, जिनके कारण रस की सात्त्विकता सुरक्षित रही है।

नोट

एक उदाहरण देखिए–

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहूँ दिसि।
सकल सूर सामंत समर बल जंत्र-मंत्र तिसि।
उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग्ग मनहु वीर नट।
कढ़त तेग मन बेग लगत मनहु बीजु झट्ट घट्ट।।

नारी सौंदर्य का भी एक चित्र देखिए–

मनहुं कला ससिभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस ससि ता समीप अमृत रस पिन्निय।
बिगसि कमल स्त्रिग भ्रमर नैनु खंजन म्रिग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब मोती नख सिख अहिघुट्टिय।
छत्रपति गयंद हरि हंस गति बिह बनाय सचै सचिय।
पद्मिनी रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय।।

वीर और श्रृंगार रसों के पोषण के लिए आवश्यकतानुसार अन्य रसों की भी योजना की गई है और उनके वर्णन में भी कवि ने उतनी ही तन्मयता दिखलायी है।

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के संबंध में भी विवाद रहा है। वस्तुत: यह काव्य पिंगल शैली में लिखा गया है जो ब्रजभाषा का वह रूप है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। कवि ने तत्कालीन सभी प्रचलित शब्दों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है। शब्द-चयन रसानुकूल है, अत: वीर रस के चित्रणों में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। जहाँ तक भाषा की शक्ति का प्रश्न है, कवि ने अभिधेय भाषा को भी पर्याप्त प्रभावशाली रूप दिया है। लाक्षणिक तथा ध्वन्यात्मक शब्दावली ने भी प्राय: भाषा-सौंदर्य की वृद्धि की है। अलंकारों का चंद ने सहज प्रयोग किया है। शायद ही कोई अलंकार ऐसा हो जिसे उन्होंने छोड़ा हो। लगभग अड़सठ प्रकार के छंदों में लिखा गया यह महाकाव्य सभी दृष्टियों से आदिकाल की एक श्रेष्ठ कृति सिद्ध होता है।

3.1.5 लौकिक साहित्य

ढोला मारू रा दूहा–यह संदेश रासक के समान लोककाव्य है और बीसलदेव रासो की तरह विरह गीत है। इस काव्य की कथा इस प्रकार है–सयानी होने पर मारू जी अपने बचपन के पति ढोला की चर्चा सुनती हैं और विरह में व्याकुल हो जाती हैं। वह अपने पति का पता लगाने के लिए कई संदेशवाहक भेजती हैं, लेकिन कोई वापस लौटकर नहीं आता। सभी संदेशवाहक उसकी सौत मालवजी द्वारा मरवा दिये जाते हैं। अंत में मारवणी लोकगीतों के गायक एक ढाढी को यह जिम्मेदारी सौंपती है और उसे अपने उद्देश्य में सफलता मिलती है। ढाढी के प्रयत्न से ढोला और मारवणी का पुनर्मिलन होता है। बीच में मारवणी की हत्या करा दी जाती है और अंत में फिर मारवणी मालवजी तथा ढोला को इकट्ठा मिला दिया जाता है। इस ग्रन्थ का मुख्य संदेश मारवणी का ढोला के प्रति विरह-निवेदन है।

काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी यह काव्य अनुपम बन पड़ा है। इसमें संदेश-रासक तथा बीसलदेव रासो से अधिक स्थानीय रंग है। इस ग्रन्थ में मारवाड़ देश वास्तविक रूप से प्रतिबिम्बित हो उठा है। संदेश रासक में संदेश-कथन एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति से किया गया है। बीसलदेव रासो में इस कार्य के लिए दरबार के एक पंडित का उपयोग किया गया है, लेकिन ढोला में क्रोंच पक्षी से लेकर ढाढियों तक से अपनी विरह-वेदना कही गई है। अत: इसमें अधिक मार्मिकता आ सकी है। जायसी के पद्मावत में संदेश-प्रणाली निश्चित रूप से ढोला से प्रभावित है। ढोला लोकगीत के सबसे अधिक निकट है। अत: इसमें साधारणीकरण की मात्रा प्रचुर रूप में है। प्रस्तुत काव्य में श्रृंगार के संयोगकालीन वर्णन मर्यादित हैं और उनमें सांकेतिकता से काम लिया गया है। मिलन के उपरान्त प्रेमी-दंपति मत्त-गत दंपति के समान रतिशैया की ओर जाते हैं। इस दिशा में उक्त काव्य संदेश रासक की कोटि में आता है। ढोला-मारू रा दूहा में विप्रलंभ श्रृंगार

का अतीव उच्च एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन है। नख-शिख वर्णन परंपरायुक्त है। वियोग-वर्णन में हृदय की सच्चाई का स्वाभाविक एवं प्रभावशाली वर्णन है। विरह-वर्णन में कहीं भी हास्यास्पद ऊहात्मकता नहीं है।

मारवणी का ढाढी को दिया गया संदेश अनुपम बन पड़ा है। इसमें नारी हृदय की वेदना सचमुच इठला रही है–

ढाढी, एक संदेसड़उ, प्रीतम कहिया जाइ।
सा घण बलि कुइला भई भसम ढंढोलिसि आइ।।
ढाढी जे प्रीतम मिलई, यूँ कहि दाखवियाह।
उंजर नहिं छई प्राणियउ, था दिस झल रहियाह।।

धनि जलकर कोयला हो गई है, अब आकर उसकी भस्म ढूँढ़ना। अब पंजर में प्राण नहीं हैं केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर झुक-झुककर जल रही है। जायसी की 'सो धन जरि' से इसकी कितनी समानता है।

मारवणी की मन:स्थिति का एक और चित्र देखिए–जब ढोला के आने की खबर मिलती है तो उसका हृदय हर्षोद्रेक से हिमगिरि जैसा विशाल हो गया है। वह अनुभव करती है कि अब यह तन पंजर में समायेगा ही नहीं–

हियड़ा हेमांगिरि भयऊ, तन पंजरे न माई।

इस प्रकार मारवाड़ देश में जहाँ एक ओर चारण काव्यों का प्रणयन हो रहा था वहीं दूसरी ओर जनसाधारण के कवि स्वान्त: सुखाय लोक-सामान्य जीवन को सहज में ही अपने काव्य में उँड़ेल रहे थे। ढोला इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। सूफी कवि जायसी का पद्मावत ढोला के बहुत से अंशों से प्रभावित है।

डॉ. रामकुमार वर्मा इस ग्रन्थ के काल आदि के संबंध में लिखते हैं–"यह सोलहवीं शताब्दी की रचना है और इसके रचयिता कुशल लाभ कहे जाते हैं–इसे 'ढोला मालवजी री बात' के नाम से भी अभिहित किया जाता है।"

3.1.6 अमीर खुसरो

जीवन-वृत्त–अमीर खुसरो इनका उपनाम है, इनका असली नाम अब्दुल हसन था। इनका जन्म सन् 1312 में पटियाली जिला एटा में हुआ। इन्होंने अपनी आँखों से गुलाम वंश का पतन, खिलजी वंश का उत्थान तथा तुगलक वंश का आरंभ देखा। इनके सामने ही दिल्ली के शासन पर ग्यारह सुल्तान बैठे जिनमें से सात की इन्होंने सेवा की। आप बड़े ही प्रसन्नचित्त, मिलनसार तथा उदार थे। इन्हें जो कुछ धन प्राप्त होता था उसे बांट देते थे। इनमें सांप्रदायिक कट्टरता किसी भी प्रकार नहीं थी। **डॉ. ईश्वरीप्रसाद** इनके संबंध में लिखते हैं–"ये कवि, योद्धा और क्रियाशील मनुष्य थे।" इनके ग्रन्थों के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि इनके एक लड़की और तीन पुत्र थे। जब सं. 1324 में इनके गुरु निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु हुई तो ये उस समय गयासुद्दीन तुगलक के साथ बंगाल में थे। मृत्यु का समाचार सुनते ही शीघ्र दिल्ली पहुँचे और औलिया की कब्र के निकट निम्नांकित दोहा पढ़कर बेहोश होकर गिर पड़े–

गोरी सोवे सेज पर, मुखर पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।।

अंत में कुछ दिनों में इनकी भी उसी वर्ष मृत्यु हो गई। ये अपने गुरु के कब्र की नीचे गाड़ दिए गए। सन् 1605 ई. में ताहिरा बेरां नामक अमीर ने वहाँ पर मकबरा बनवा दिया।

ग्रन्थ–अमीर खुसरो अरबी, फारसी, तुर्की और हिंदी के विद्वान थे तथा इन्हें संस्कृत का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान था। इन्होंने कविता की 99 पुस्तकें लिखीं जिनमें कई लाख शेर थे। पर अब इनके केवल 20-22 ग्रन्थ प्राप्य हैं। इन ग्रन्थों में **किस्सा चाह दरवेश** और **खालिक बारी** विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका तुर्की-अरबी-फारसी और हिंदी का पर्यायकोश नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने फारसी से कहीं अधिक हिंदी भाषा में लिखा है। इनके साहित्य में भी समय-समय पर प्रक्षेपों का समावेश होता रहा है। इनकी कुछ पहेलियाँ, मुकरियाँ और फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं जिनसे इनकी विनोदी प्रकृति का भली-भाँति परिचय मिल जाता है। उदाहरणार्थ–

पहेली– *एक थाल मोती से भरा सबके सिर पर औंधा धरा।*
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।। (आकाश)

दो– *सुखने–पान सड़ा क्यों? घोड़ा अड़ा क्यों?* (फेरा न था)

ढकोसला– *खीर पकाई जतन से चर्खा दिया चला।*
आया कुत्ता खा गया बैठी तू ढोल बजा।।

नोट

इनकी मिली-जुली भाषा की ग़ज़ल का नमूना देखिए–जिसे मुकेश और सुधा मल्होत्रा ने अपने सुरीले सुर में प्रस्तुत किया है।

हाल मिस की मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाय बतियाँ।
किताबें हिज्राँ नदारम जमाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ।।

साहित्यिक देन–अमीर खुसरो ने साहित्य के लिए एक नवीन मार्ग का अन्वेषण किया और वह था जीवन को संग्राम और आत्मानुशासन की सुदृढ़ और कठोर शृंखला से मुक्त करके आनन्द और विनोद के स्वच्छंद वायुमंडल में विहार करने की स्वतंत्रता देना। यही खुसरो की मौलिक विशेषता है। इनके साहित्य में हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रथम प्रयत्न है तथा उसमें भाषा संबंधी एकता का आदर्श भी उपस्थित किया गया है। आचार्य श्यामसुंदरदास का कहना है कि खुसरो के पूर्ववर्ती साहित्य में राजकीय मनोवृत्ति है उसे जन-साहित्य नहीं कहा जा सकता किन्तु हम इनकी कविता में युग-प्रवर्त्तक का आभास पाते हैं। इनके साहित्य से भाषाशास्त्र में प्रचलित एक मजेदार भ्रम का निवारण हो जाता है, वह यह कि हिंदी का जन्म उर्दू से नहीं हुआ बल्कि उर्दू तो हिंदी की एक शैली मात्र है, अत: इनके साहित्य का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्व है। तत्कालीन सुल्तानों का इतिहास भी इनके साहित्य में सुरक्षित है। उनका फारसी भाषा में निबद्ध मसनवी खिज्रनामा इस दिशा में अत्यंत विश्वसनीय तथा महत्त्वपूर्ण है। खुसरो ने अपने समय की उन ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश किया है, जो कि अन्य समसामयिक इतिहास-ग्रन्थों में नहीं मिलती हैं। उनके ग्रन्थों के ऐतिहासिक हवाले अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय हैं क्योंकि वे केवल समसामयिक ही नहीं थे, बल्कि उन घटनाओं के स्वरूप-निर्माण में उनका निजी योग भी है। उन्होंने केवल ऐतिहासिक घटनाओं का परंपरागत ब्यौरा मात्र ही प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी सजीव अंकन किया है।

खुसरो प्रसिद्ध गवैये भी थे। ध्रुवपद के स्थान पर कौल या कव्वाली (काव्यावलि) बनाकर इन्होंने बहुत से नये राग निकाले थे, जो अब तक प्रचलित हैं। कहा जाता है कि बीन को घटाकर इन्होंने सितार बनाया था। संगीतज्ञ होने के नाते इनके साहित्य में संगीतात्मकता की मात्रा भी दृष्टिगोचर होती है। इनमें उक्ति-वैचित्र्य की प्रधानता है। आचार्य शुक्ल इनके साहित्य तथा भाषा के संबंध में लिखते हैं–"खुसरो के समय में बोलचाल की स्वाभाविक भाषा घिसकर बहुत-कुछ उसी रूप में आ गई थी जिस रूप में खुसरो में मिलती है। कबीर की अपेक्षा खुसरो का ध्यान बोलचाल की भाषा की ओर अधिक रहा है। खुसरो का लक्ष्य जनता का मनोरंजन था, पर कबीर धर्मोपदेशक थे, अत: बानी पोथियों की भाषा का सहारा कुछ-न-कुछ खुसरो की अपेक्षा अधिक लिये हुए है।" **डॉ. रामकुमार वर्मा** इनके काव्य का विवेचन करते हुए लिखते हैं–"उसमें न तो हृदय की परिस्थितियों का चित्रण है और न कोई संदेश ही। वह केवल मनोरंजन की सामग्री है। जीवन की गंभीरता से ऊबकर कोई भी व्यक्ति उससे विनोद पा सकता है। पहेलियों, मुकरियों और सुखनों के द्वारा उन्होंने कौतूहल और विनोद की सृष्टि की है। कहीं-कहीं तो उस विनोद में अश्लीलता भी आ गई है। उन्होंने दरबारी वातावरण में रहकर चलती हुई बोली से हास्य की सृष्टि करते हुए हमारे हृदय को प्रसन्न करने की चेष्टा की है। खुसरो की कविता का उद्देश्य यहीं समाप्त हो जाता है।" आगे चलकर डॉ. वर्मा इनके संबंध में लिखते हैं–"चारणकालीन रक्तरंजित इतिहास में जब पश्चिम के चारणों की डिंगल कविता उद्धृत स्वरों में गूंज रही थी और उसकी प्रतिध्वनि और भी उग्र थी, पूर्व में गोरखनाथ की गंभीर धार्मिक प्रवृत्ति आत्मशासन की शिक्षा दे रही थी, उस काल में अमीर खुसरो की विनोदपूर्ण प्रकृति हिंदी साहित्य के इतिहास की एक महान् निधि है। मनोरंजन और रसिकता का अवतार यह कवि अमीर खुसरो अपनी मौलिकता के कारण सदैव स्मरणीय रहेगा।"

मनोरंजन के खजाने से मालामाल सूफियों में अग्रणी कवि अमीर खुसरो ने अपनी सहज मनोवृत्ति के कारण जनसामान्य को उन्मुक्त हृदय से मालामाल कर दिया। अरबी, फारसी, तुर्की, ब्रजभाषा और हिंदी में खड़ी बोली के सर्वप्रथम सफल प्रयोक्ता अमीर खुसरो द्वारा अनेक भाषाओं के सुखद मिश्रण को भाषा विज्ञानी भाषा संकर की संज्ञा देना चाहेंगे किन्तु इनके द्वारा प्रणीत ग़ज़लों (गायक व गायिका स्व. मुकेश व मधुर स्वर-संपन्न सुधा मल्होत्रा) के शृंगारात्मक ताने-बाने में फारसी और ब्रजभाषा के मणिकांचन योग से निश्चय से एक ऐतिहासिक तथ्य ध्वनित होता है कि भारत जैसे भाषा-बहुल देश में, प्रकृति द्वारा अनेकविध भौगोलिक वातावरण में पुष्ट भाषाएँ भी सौहार्द्र और समरसता को सहेजकर सर्वदा सौंदर्य विद्यायिनी हो सकती हैं।

खुसरो सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली कवि एवं साहित्य और संगीत के क्षेत्रों में एक सर्वथा-समर्थ आविष्कर्ता थे। विचित्र वीणा से सितार, मृदंगम से तबला के सुधी स्रष्टा तथा परम संगीतज्ञ की अमर रचना–"मैं पग में घुंघरू बांध, मिलन चली पिया को कि घुंघरू टूट गये। कव्वालियों (काव्य अवलियों) के प्रणेता एवं आशु कवित्व के महनीय गुणों से संपन्न सुखरो का महिमाशाली व्यक्तित्व और कृतित्व हिंदी साहित्य में सदा अविस्मरणीय रहेंगे।" उनकी एक चुलबुल मुर्की या मुकरी का नमूना द्रष्टव्य है–

वह आये तो शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।

मीठे लागे वाके बोल, क्यों सखि साजन? न सखी ढोल।।

उनकी कृति खलक बारी (शब्दकोश) तुर्की, अरबी, फारसी और हिंदी भाषाओं का पर्यायवाची कोश भाषा विज्ञान के तुलनात्मक क्षेत्र में एक विशिष्ट योगदान के रूप में उल्लेखनीय रहेगा।

खुसरो के व्यक्तित्व और कृतित्व से एक बड़ा मजेदार तथ्य उजागर हो जाता है कि हिंदी की प्रकृति व स्वभाव आरंभ से ही सांप्रदायिकता की भावना से सर्वथा मुक्त रहे हैं और सामाजिक संस्कृति का यही तकाजा था। यद्यपि खुसरो का राजदरबारों से संबद्ध साहित्य फारसी भाषा में प्रणीत हुआ है, जहाँ कवि ने हिन्दू-मुसलमानों के संप्रदायों के साक्षात् द्वन्द्व व कलह का वर्णन किया है, वहाँ भी दोनों जातियों के वीर योद्धाओं का संग्राम चित्रित हुआ है। उसमें किसी जाति अथवा संप्रदाय के प्रति वैमनस्य, घृणा या द्वेष को भड़काने का प्रयास लक्षित नहीं होता है।

जयचन्द प्रकाश तथा जसमयंक जसचन्द्रिका–ये दोनों रचनाएँ अभी तक प्राप्त नहीं हुई हैं। इनकी चर्चा केवल 'राठौड़ां री ख्यात' में मिलती है। प्रथम रचना के लेखक केदार नामक कवि बताए जाते हैं। इस महाकाव्य में महाराज जयचन्द के पराक्रम और प्रताप का वर्णन था। जसमयंक जसचन्द्रिका के लेखक मधुकर कवि बताए जाते हैं। दोनों ग्रन्थों की विषयवस्तु मिलती-जुलती है। सुना जाता है कि दयालदास ने इन्हीं रचनाओं के आधार पर कन्नौज का वृत्तान्त लिखा था। अतः किसी समय में इन ग्रन्थों का अस्तित्व अवश्य था।

बसंत विलास का रचयिता अभी तक अज्ञात है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने अनेक प्रमाणों के आधार पर इस रचना का समय ईसा की तेरहवीं सदी निर्धारित किया है। यद्यपि इसमें चौरासी दोहे हैं किन्तु उनमें कामिनियों के प्रेमी जीवन पर बसंत और उसके मादक प्रभाव का चित्रण किया गया है। इस ग्रन्थ में स्त्री-पुरुष और प्रकृति तीनों में प्रवाहमान अजस्त्र मदोन्मत्तता का जैसा स्वरूप मिलता है वैसा रीतिकालीन शृंगारी-कवि में भी नहीं मिलता है। इसमें कालिदास के ऋतु संहार तथा हाल की गाथा सतसई की परंपरा को निभाया गया है और राउलबेल की शृंगार-परंपरा को चरम सीमा पर पहुँचा दिया गया है। उदाहरणार्थ–

इणि परि कोइलि कूजइ पूजइँ युवति मजोर।।

विधुर वियोगिनि धूजई कूजई मयण किसोर।।

एक ओर हृदय को सालता हुआ कोयल का कूजन और दूसरी ओर पति संयुक्ताओं का विलासमय कामपूजन वियोगिनी विधुर प्रेमदाओं को कंपायमान कर देते हैं और वे मनोज की मधुर अनुभूति करने लगती हैं।

भक्ति और रीतिकालीन शृंगारी प्रवृत्ति के अध्ययन के लिए यह रचना अतीव उपयोगी है। हिंदी भाषा के क्रमिक विकास की दृष्टि से भी यह रचना उपादेय है।

3.1.7 विद्यापति

नोट

जीवन-वृत्त–विद्यापति का जन्म सं. 1425 में बिहार के दरभंगा जिले में विसपी गाँव में हुआ था। ये विद्वान वंश से संबंध रखते थे। इनके पिता गणपति ठाकुर ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'गंगा भक्ति तरंगिनी' अपने मृत संरक्षक मिथिला के महाराज गणेश्वर की स्मृति में समर्पित की थी। ये तिरहुत के महाराज शिवसिंह के आश्रय में रहते थे। महाराज शिवसिंह के अतिरिक्त रानी लखिमा देवी भी इनकी बड़ी भक्त थीं। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' में अपने आश्रयदाता शिवसिंह और कीर्तिसिंह की वीरता का बड़े ही ओजस्वी और प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है। आज से लगभग 40-50 वर्ष पहले बंगाली लोग विद्यापति को बंगला का कवि समझते थे किन्तु जब उनके जीवन की घटनाओं की जाँच-पड़ताल बाबू रामकृष्ण मुकर्जी और डॉ. ग्रियर्सन ने की तब से बंगाली अपने अधिकार को अव्यवस्थित पाते हैं।

ग्रन्थ–विद्यापति एक महान पंडित थे। उन्होंने अपनी रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा में लिखी हैं। संस्कृत पर इनका असामान्य अधिकार था और इन्होंने अपनी अधिकतर रचनाएँ संस्कृत में ही लिखीं। विद्यापति संक्रमण-काल के कवि थे। एक ओर वे वीरगाथा काल का प्रतिनिधित्व करते हैं तो दूसरी ओर वे हिंदी में भक्ति और शृंगार की परंपरा के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। कीर्तिलता और कीर्तिपताका में उनका वीर कवि का रूप है। पदावली में उनका शृंगारी रूप है और शैव सर्वस्व सार में वे भक्तिभाव में झूमते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार भाव और भाषा की दृष्टि से इनकी रचनाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। भाषा के आधार पर इनकी रचनाएँ ये हैं–

(क) संस्कृत–(1) शैव सर्वस्वसार, (2) शैव सर्वस्वसार प्रमाणभूत पुराण संग्रह, (3) भूपरिक्रमा, (4) पुरुष परीक्षा, (5) लिखनावली, (6) गंगा वाक्यावली, (7) दान वाक्यावली, (8) विभाग सार, (9) गया पत्तलक, (10) वर्ण कृत्य, (11) दुर्गा भक्ति तरंगिणी।

(ख) अवहट्ट–कीर्तिलता और कीर्तिपताका।

(ग) मैथिली–पदावली।

व्यक्तित्व–हिंदी साहित्य में विद्यापति की अक्षुण्ण कीर्ति का आधार उनके तीन ग्रन्थ हैं–पदावली, कीर्तिलता और कीर्तिपताका। विद्यापति पदावली में इन्होंने राधा-कृष्ण की प्रणय लीलाओं का अत्यंत हृदयहारी वर्णन किया है। इस संबंध में इनके आदर्श कवि जयदेव रहे हैं। जयदेव का गीत-गोविन्द इनका उपजीव्य ग्रन्थ है। भाव और शैली दोनों दृष्टियों से विद्यापति जयदेव के ऋणी हैं। पदावली में इनका शृंगारी रूप पूर्णत: उभर आया है। वैसे तो शृंगार के दोनों पक्षों–संयोग और वियोग का वर्णन इस ग्रन्थ में उपलब्ध होता है पर जो तन्मयता संयोग शृंगार के चित्रण में दृष्टिगोचर होती है वह वियोग-पक्ष में नहीं। वस्तुत: विद्यापति संयोग-पक्ष के सफल गायक हैं और प्रेम के परम पारखी हैं। इन्होंने आलंबन विभाव में नायक कृष्ण और नायिका राधा का मनोहर चित्र खींचा है। उनके बीच में ईश्वरीय भावना की अनुभूति नहीं मिलती। एक और नवयुवक चंचल नायक है और दूसरी ओर यौवन और सौंदर्य की संपत्ति लिए राधा नायिका–

कि आरे नव जौवन अभिरामा।

जत देखल तत कहएन पारिअ छओ अनुपम इकठामा।।

अंग्रेजी कवि बायरन के समान विद्यापति का भी यह सिद्धांत वाक्य है कि "यौवन के दिन ही गौरव के दिन हैं।" डॉ. रामकुमार, "विद्यापति का संसार ही दूसरा है। वहाँ सदैव कोकिलाएँ ही कुंजन करती हैं। फूल खिला करते हैं पर उनमें कांटे नहीं होते। राधा रातभर जागा करती है। उसके नेत्रों में ही रात समा जाती है। शरीर में सौंदर्य के सिवाय कुछ भी नहीं है। पथ है उसमें भी गुलाब है, शैया है उसमें भी गुलाब है, शरीर है उसमें भी गुलाब। सारा संसार ही गुलाबमय है। उनके संसार में फूल फूलते हैं, कांटों का अस्तित्व नहीं है। यौवन-शरीर के आनन्द ही उसके आनन्द हैं।"

राधा तथा कृष्ण के प्रेम की तन्मयता का अनुपम चित्र निम्नांकित पंक्तियों में दर्शनीय है–राधा के मुख से बार-बार राधा शब्द निकलता रहा है और कृष्ण के मुख से कृष्ण-कृष्ण की रट लग रही है। राधा के हृदय में कृष्ण इस रूप से बस चुके हैं कि वह कृष्णमय हो चुका है और एतदर्थ वह राधा-राधा की पुकार कर रहा है और उधर दूसरी ओर कृष्ण का हृदय इतना राधामय हो चुका है कि उससे कृष्ण प्यारे की निरन्तर धुन लग रही है। यह है प्रेम की पराकाष्ठा–

अनुखन माधव माधव सुमरित,

सुन्दरि भेल मधाई।

सद्य:स्नाता का एक नयनाभिराम चित्र देखिये।

कामिनी करए सनाने हेरतहि हृदय हनए बच बाने।

चिकुर गरए जलधारा जनि मुख सनि उर रोअए अंधारा।।

राधा का नख-शिख सौंदर्य भी दर्शनीय है–

चाँद सार लए मुख घटना करु लोचन चकित चकोरे।।

अमित धोय आंचर धनि पोछलि दहउं दिति भेल उंजोरे।।

कुछ विद्वानों ने विद्यापति द्वारा चित्रित राधा-कृष्ण के प्रणय के लीला-पदों को देखकर इन्हें भक्त कवि कहा है किन्तु हमारे विचारानुसार विद्यापति राधा और कृष्ण के भक्त न होकर शैव-भक्त थे। विद्यापति को कृष्णभक्त-परंपरा में न समझना चाहिए। आचार्य शुक्ल का इस संबंध में कहना है कि "आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने गीत-गोविन्द के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी।" सच यह है कि विद्यापति ने राधा-कृष्ण संबंधी पदों की रचना श्रृंगार काव्य की दृष्टि से की है। डॉ. रामकुमार के शब्दों में , "विद्यापति पदावली संगीत के स्वरों में गूंजती हुई राधा-कृष्ण के चरणों में समर्पित की गई है। उन्होंने प्रेम के साम्राज्य में अपने हृदय के सभी विचारों को अन्तर्हित कर दिया है। उन्होंने श्रृंगार पर ऐसी लेखनी उठाई है जिससे राधा और कृष्ण के जीवन का तत्त्व प्रेम के सिवाय कुछ भी नहीं रह गया है।" वे आगे चलकर और स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं–"विद्यापति के बाह्य संसार में भगवद् भजन कहाँ, इस वय:सन्धि में ईश्वरसन्धि कहाँ, सद्य:स्नाता में ईश्वर से नाता कहाँ, अभिसार में भक्ति का सार कहाँ? उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नहीं।" कुछ भी हो, विद्यापति की पदावली में भाषा के माधुर्य और भावों के माधुर्य का एक अद्‌भुत समन्वय हुआ है। भले ही उनमें प्रेम के बाह्य संसार पर अधिक बल है किन्तु फिर भी वह अत्यंत मनोरम है।

विद्यापति का व्यक्तित्व विविधमुखी है। उसमें पांडित्य, कला, रसिकता और भावुकता का अद्‌भुत समन्वय है। संक्रान्तिकालीन कवि होने के कारण उनके साहित्य में विगत तथा अनागत युगों के साहित्य की प्रवृत्तियाँ सहज में प्रतिबिम्बित हो उठी हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उनके साहित्य को तीन भागों में बांटा जा सकता है–(क) श्रृंगारिक, (ख) भक्ति संबंधी, (ग) विविध विषयक नीति वीरगाथात्मक आदि। उनके श्रृंगारी साहित्य के सिंहावलोकन के पश्चात् यह नि:संकोच रूप से कहा जा सकता है कि भले ही वे शिव-भक्त हों किन्तु कम-से-कम वे कृष्णभक्त नहीं हैं। पदावली में चित्रित राधा-माधव की केलि-लीलाओं के पीछे किसी भी प्रकार का कोई भक्ति, धार्मिकता सांकेतिकता प्रतीकवाद या रहस्यवाद नहीं है। विद्यापति द्वारा गृहीत राधा-माधव साधारण नायिका-नायक है तथा उनकी लीलाओं और प्रेम-व्यापारों का चित्रण विशुद्ध लौकिक स्तर पर हुआ है। उनकी मिलन-कालीन क्रीड़ाओं में मांसलता और स्थूलता इतने उत्कृष्ट रूप में उभरी हुई है कि उनमें किसी प्रकार के रूपक या उज्ज्वल रस एवं मधुर रस की कल्पना-यथार्थ से आँखें मूंदना है तथा कवि के पदावली संबंधी प्रणयन के उद्देश्य को न समझना है। सच तो यह है कि पदावली पर हठात् अध्यारोपित रूपक या रहस्यवाद निभाने पर भी नहीं निभ सकता है। चैतन्य महाप्रभु एक महाप्राणी थे। उनके सामने शूद्र और चांडाल, श्लील और अश्लील सब समान थे। यदि वे भावविभोर होकर पदावली के गीतों को गुनगुनाते थे, तो इससे पदावली या विद्यापति की कृष्ण-भक्ति परायणता कदापि सिद्ध नहीं होती है। भक्त लोग तो गलदश्रु भाव से गीत-गोविन्द के गीतों को भगवदाराधना

नोट

के निमित्त गाते हैं और खोजने वाले तांत्रिकों के अति-कामुकता से अभिभूत सिद्ध-साहित्य में अतीन्द्रियता और रहस्यमयता को उद्घोषित करने तक का साहस कर दिया करते हैं, किन्तु न ही तो गीत-गोविन्द और न ही सिद्ध-साहित्य में किसी प्रकार की कोई आध्यात्मिकता है। पदावली में केवल राधा-कृष्ण के नामों के ग्रहण से किसी अतीन्द्रिय प्रेम या भक्ति की कल्पना का तात्पर्य यह होगा कि हमें समूचे हिंदी के रीति-साहित्य में भी इसी प्रकार के प्रेम और भक्ति की कल्पना करनी होगी जो कि नितांत अवैज्ञानिक तथा असंगत है।

कीर्तिलता—इस रचना का हिंदी साहित्य में दो दृष्टियों में महत्त्व है—साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा भाषा संबंधी परिवर्तन के कारण। इस ग्रन्थ में अपने आश्रयदाता कीर्तिसिंह की वीरता का वर्णन और यशोगान है। यह एक अपूर्व ऐतिहासिक काव्य है। पृथ्वीराज रासो से यह अपने ऐतिहासिक महत्त्व के कारण भिन्न हो जाता है। कवि ने अपने समसामयिक राजा का गुणगान बड़ी अलंकृत भाषा में किया है फिर भी कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पित घटनाओं एवं संभावनाओं से धूमिल नहीं होने दिया है। इस ग्रन्थ में उस समय का पूर्ण प्रतिबिम्ब है। कवि ने उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी परिस्थितियों का चित्र-सा उतार दिया है। हिन्दू, मुसलमान-खान, वेश्याओं तथा सैनिकों के सजीव एवं पक्षपातरहित चित्रण से ग्रन्थ के साहित्यिक सौंदर्य में और भी अभिवृद्धि हुई है। विद्यापति ने अपने चरित-नायक के चरित्र-चित्रण में बड़े चातुर्य से काम लिया है। ग्रन्थ में जहाँ कीर्तिसिंह का उज्ज्वल वीर रूप स्पष्ट है वहाँ जौनपुर के सुल्तान फिरोजशाह के सामने उसका अति नम्र रूप भी प्रकट हुआ है। लेखक ने कहीं भी ऐतिहासिक तथ्यों को विकृत करने का प्रयत्न नहीं किया है।

कीर्तिलता के काव्य रूप की चर्चा करते हुए डॉ. द्विवेदी लिखते हैं—"ऐसा जान पड़ता है कि कीर्तिलता बहुत-कुछ उसी शैली में लिखी गई थी, जिसमें चन्दबरदायी ने पृथ्वीराज रासो लिखा था। यह भृंग और भृंगी के संवाद-रूप में है। इसमें संस्कृत और प्राकृत के छन्दों का प्रयोग है। संस्कृत और प्राकृत के छन्द रासो में बहुत आये हैं। रासो की भाँति कीर्तिलता में भी गाथा (गाहा) छन्द का व्यवहार प्राकृत भाषा में हुआ है। यह विशेष लक्ष्य करने की बात है कि संस्कृत और प्राकृत पदों में तथा गद्य में भी तुक मिलाने का प्रयास किया गया है जो अपभ्रंश परम्परा के अनुकूल ही है।" इसमें अपभ्रंश की पद्धतियाँ, बंध-शैली का प्रयोग हुआ है। विद्यापति ने अपने इस काव्य को कथा-काव्य न कहकर काहाणी कहा है। कथा-काव्य में राज्य-लाभ के साथ ही कन्याहरण, गंधर्व-विवाह एवं बहुविवाह का प्राधान्य रहता है। कीर्तिलता केवल राज्य-लाभ तक ही सीमित है। यही कारण है कि कीर्तिलता में इतनी अधिक कल्पित घटनाओं और संभावनाओं का आयोजन नहीं हो पाया जितना पृथ्वीराज रासो में है। उसमें रोमांस के प्रकरण निकल जाने से बहुत कल्पित घटनाओं के लिए स्थान नहीं रहा है, साथ-साथ स्वाभाविकता भी बनी रही है। संभवत: कथा-काव्य और काहाणी का अंतर बहुत कुछ संस्कृत साहित्य के कथा और आख्यायिका का-सा है। कीर्तिलता में बीच-बीच में गद्य का प्रयोग भी हुआ है। कारण इस ग्रन्थ से पूर्ववर्ती कथा-काव्यों में तथा संस्कृत में चम्पू काव्यों में उक्त प्रयोग प्रचलित था।

भाषा के विकास की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। कीर्तिलता में परिनिष्ठित साहित्यिक अपभ्रंश से कुछ आगे बढ़ी हुई भाषा के दर्शन होते हैं। विद्यापति ने उसे अवहट्ट कहा है। इसमें तत्कालीन मैथिली भाषा का सम्मिश्रण है। कीर्तिलता में गद्य में तत्सम शब्दों के व्यवहार की अधिकता है तथा पद्य में तद्भव शब्दों का एकछत्र राज्य है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई भाषा में देखने को मिलती है। आदिकाल की प्रामाणिक रचनाओं में कीर्तिलता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यापति की कीर्तिलता में अपनी भाषा को देसिलबअना नाम दिया है। विद्यापित की कीर्तिलता में भाषाविषयक यह गर्वोक्ति प्रसिद्ध है—

बालचन्द विज्जाबइ भाषा, दुहु नहि लग्गई दुज्जन हासा।

ओ परमेसर सिर सोहइ ई त्रिच्चय नाअर मन मोहइ।।

विद्यापति के साहित्य के संक्षिप्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वीर कवि, भक्त कवि और शृंगारी कवि सभी रूपों में परिपूर्ण दिखाई देते हैं। एक ओर उनकी कीर्तिलता और कीर्तिपताका चारण काव्य की वीरगाथाओं का स्मरण दिलाती है तथा दूसरी ओर उनकी पदावली कृष्ण कवियों विशेषत: रीतिकालीन कवियों की शृंगारपरक सुकोमल भाव सामग्री की मूल प्रेरक सिद्ध होती है। विद्यापति हिंदी साहित्य में पदशैली के प्रवर्त्तक और सूर के पथ-प्रदर्शक जान पड़ते हैं। इनमें भाषा की सुकुमारता और भाव मधुरिमा का मणिकांचन योग है। विद्यापित अपने समय के बड़े सफल कवि थे। यही

कारण है कि इनके प्रशंसकों ने उन्हें नाना उपाधियों से विभूषित किया है–अभिनय जयदेव, कवि शेखर सरस कवि, खेलन कवि, कवि कंठहार और कवि रंजन आदि। अस्तु विद्यापित ने मध्य युग के प्राय: समस्त काव्य को प्रभावित किया है।श्रृंगार-काव्य की सारी मान्यताएँ इसमें दृष्टिगोचर होती हैं। कल्पना, साहित्यिकता और भाषा की भंगिमा में ये अनुपम हैं। डॉ. रामरत्न भटनागर इनके संबंध में लिखते हैं–"जयदेव के गीतों में जिस माधुर्य भाव की प्रतिष्ठा है उनमें जो भावसुकुमारता और विदग्धता है, जो पद-लालित्य है, वह तो विद्यापति में है ही, परन्तु साथ ही सामन्ती कला के तीव्र आकर्षक रंग भी उस पर चढ़े हैं और कवि की सभाचातुरी, वचनविदग्धता और भावविभोरता ने उसके काव्य को जयदेव के काव्य से कहीं अधिक मार्मिक बना दिया है। यही कारण है कि परवर्ती युग में कवियों और साधकों ने जयदेव के स्थान पर राधा-कृष्ण का नेतृत्व उन्हें दे दिया।" विद्यापति तथा जयदेव के काव्य संबंधी दृष्टिकोणों में भी पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। गीत-गोविन्दकार जयदेव विद्यापति के परम अनुकरणीय रहे हैं। इन दोनों की साहित्यिक परिस्थितियों और व्याख्यात्मक दृष्टिकोणों में साम्य का होना अनिवार्य था। यदि जयदेव के काव्य में हरिस्मरण, विलास-कला (काम-कला), काव्य-कला (नायिका भेद) और संगीत-कला का समन्वित रूप है, तो विद्यापति की पदावली में रस-रीति (कामानन्द संभोग कलाएँ), काव्य-कला (नायिका-भेद) और संगीत का विचित्र सम्मिश्रण हे। जयदेव में भक्ति का झीना आवरण फिर भी जहाँ-तहाँ बना रहा है (यद्यपि वह है अवास्तविक) किन्तु विद्यापति की पदावली किसी प्रकार के धर्म या भक्ति की ग्रंथि से ग्रस्त नहीं है। अत: उसमें राधा-माधव की सहकेलियों का और भी उन्मुक्त गान हुआ है।

सच पूछा जाये तो नि:सन्देह कहना होगा, कि विद्यापति का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी था। उन्होंने संस्कृत, अपभ्रंश मैथिली, भोजपुरी आदि भाषाओं में साधिकार साहित्य सृजा। अब तक भी उक्त सभी संदर्भों में विस्तृत खोजों की अपेक्षा है, तभी उनका विविध आयामी साहित्य वृहत् परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकेगा। उनकी एक पुरुष परीक्षा नायक पोथी मिली है जो कदाचित् कामशास्त्र व सामुद्रिक-शास्त्र से संबद्ध है। विद्यापति की सर्व-लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वे अपने जीवन काल में ही लोगों द्वारा संपूज्य हो गये थे विशेषत: मिथिला और भोजपुर के जनपदीय आंचलिक क्षेत्रों में। अब तक भी उक्त जनपदों में कई स्थानों पर विद्यापति के मंदिरों का मिलना तथा घर-घर में उनकी प्रतिष्ठा इस तथ्य का प्रमाण है।

यद्यपि वे परम शैव-भक्त थे किन्तु उन्होंने अपने सर्वप्रिय प्रेम के प्रतीक-स्वरूप, श्रृंगार रस के अधिष्ठाता कृष्ण व ललित भावात्मिका राधा के ऐहिक अद्वैत प्रेम के वे थिरकते मनोहारी चित्र अंकित किये हैं जो हिंदी साहित्य की शाश्वत चिरनिधि हैं। गीत-गोविन्दकार जयदेव के परवर्ती कवि होने के नाते, नि:संदेह विद्यापति उसकी अतुल भाव-संपदा से प्रभावित हुए होंगे और संभवत: अपभ्रंश-रचित प्रणय के मनोरम चित्रों ने भी उन्हें जिस किसी मात्रा में प्रभावित किया होगा किन्तु सब कुछ होते हुए भी विद्यापति ने राधा-कृष्ण की उदात्त प्रणय लीला के वे अवदात स्वर उद्घोषित किये हैं जिन्होंने रीतिकालीन कवि समुदाय के लिए राधा-कृष्ण के सहज-प्रणयात्मक लोभनीय चित्रांकन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। बड़े मजे व आश्चर्य की बात यह है कि विद्यापति के राधा कृष्णात्मक ऐहिकतापरक पदों को सुन कर चैतन्य महाप्रभु गलद् अश्रुभाव से सहज-समाधिस्थ होकर उन पदों की आध्यात्मिकता से प्रभावित होकर घंटों तक आनन्दविभोर रहते थे। संभवत: परमात्मा में ऐकान्तिक भाव से तल्लीन परमहंस समाधिस्थ जनों के समक्ष ऐहिकता व आयुष्मिकता की विभाजक रेखायें स्वत: समाप्त हो जाती हैं। संस्कृत-साहित्य में यदि जयदेव के गीत-गोविन्द में, हरिस्मरण, कामकला, कुतूहल, विलास कला-कौशल के साथ लयात्मक गायन का समन्वय है, तो हिंदी में विद्यापति की पदावली उक्त सभी विशेषताओं से अभिमंडित है। राधा-कृष्ण के परकीया प्रेम की पार्श्व-भूमि की सीमित परिधि में अंकित नानाविध नायिकाओं के अभिराम चित्र मन को हरने की एक अद्भुत क्षमता रखते हैं।

इस संदर्भ में **प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी**, आचार्य शुक्ल के द्वारा विद्यापति की पदावली की आध्यात्मिकता पर किये गये तीक्ष्ण व्यंग्य का निराकरण करते हुए लिखते हैं, "आचार्य शुक्ल इस अनुभव तक नहीं पहुँचते कि विद्यापति के ये पद अपनी श्रृंगार भावना के साथ सच्चे रूप में ऐहिक हैं और उनकी तन्मयता की गहरी अनुभूति ही उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर रूपांतरित कर देती है। विद्यापति में वैष्णव-भाव

की तादात्म्य भाव दोनों एक साथ मिलते हैं। काम भाव और शरीर का सौंदर्य उनके यहाँ उत्सव रूप में है।" उपर्युक्त पंक्तियों से यह तो स्पष्ट है कि विद्यापति द्वारा चित्रित राधा-कृष्णाश्रित प्रेम ऐहिक है। उसमें शरीर पक्ष की प्रधानता है। कवि की तन्मयात्मक अनुभूति ने उसे सर्वत्र शालीन बनाये रखा है, शायद वैष्णवी मर्यादा से वे यही इंगित करना चाहते है किन्तु याद रखना होगा कि केवल तन्मयता पदावली में निहित भौतिक प्रेम को आध्यात्मिक स्तर पर रूपान्तरित नहीं कर सकती है। हाँ, विद्यापति में भावों की सांद्रता और संप्रेषणीयता के अद्‌भुत गुण हैं। तन्मयता एक श्रेष्ठ व उत्तम काव्य का एक अनिवार्य घटक है।

विद्यापति का परवर्ती साहित्य के प्रति दाय

विद्यापति को संस्कृत साहित्य के शृंगार-वर्णन की परम्परा परम्परागत सम्पत्ति के रूप में मिली और उसका उन्होंने यथासंभव सदुपयोग भी किया। जयदेव, विद्यापति के अत्यंत अनुकरणीय रहे हैं, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। जयदेव ने काव्य-कला, काम-कला, संगीत-कला तथा हरि-स्मरण का संतुलित रूप गीत-गोविन्द में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है किन्तु इस कार्य में उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली। गीत-गोविन्द की संगीत लहरी में नायिका-भेद तथा केलिरह (काव्य कलाएँ) मुख्य रूप से गुंजरित हो उठी हैं। जहाँ हरि-स्मरण की क्षीण ध्वनि विलीन हो जाती है। विद्यापति में जयदेव काव्य की उपर्युक्त सब प्रवृत्तियाँ हैं, किन्तु उनके साहित्य में रस-रीतिवाद का सर्वप्राधान्य है। यद्यपि विद्यापति ने किसी निश्चित रूपरेखा के अनुसार पदावली में नायिका-भेद-प्रभेद प्रस्तुत नहीं किया है, किन्तु राधा-कृष्ण के परकीया प्रेम के सीमित वृत्त में नायिका-भेद का जो भाग सहज में समाविष्ट हो सकता था, वह सब कुछ पदावली में है। अतः विद्यापति ने परवर्ती कवियों, कृष्ण भक्ति साहित्य तथा रीतिकालीन साहित्य के लिए राधा-कृष्ण के ब्याज से नायिका भेद वर्णन की प्रवृत्ति का परोक्ष रूप से मार्ग प्रशस्त कर दिया। रीतिकाल में रीतिबद्ध कवियों के लक्षण-ग्रंथों में यह प्रवृत्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। रीतिकाल में रस-रीतिपरक, अर्थात् विलासिता तथा कामानन्द से संबद्ध साहित्य के प्रणयन की प्रेरणा विद्यापति द्वारा मिलना कोई अकल्पनीय नहीं है। रीति कवि के लिए राधा और कृष्ण के नाम पर लौकिक शृंगार की अभिव्यक्ति का मार्ग विद्यापति के द्वारा पहले से प्रशस्त कर दिया गया था। राधा-कान्ह के सुमिरन का बहाना करके प्रणयलीलाओं के उन्मुक्त मांसल चित्र उपस्थित करने वाले रीतिकालीन कवि तथा विद्यापति के दृष्टिकोण, उद्देश्य तथा परिस्थितियों में पर्याप्त साम्य है। हाँ, इस दिशा में विद्यापति में फिर भी थोड़ी-बहुत कलात्मकता बनी रही है जबकि 'रीति' कवि में उसका सर्वथा अभाव है।

विद्यापति की कीर्तिलता से वीर रसात्मक तथा पुरुष परीक्षा जैसे ग्रन्थों से नीति और उपदेशमय ग्रन्थों की शैली का हिंदी के परवर्ती युगों में अनुसरण होता रहा।

विद्यापति का काव्य और व्यक्तित्व विविधमुखी है। एक ओर जहाँ विद्यापति के द्वारा मिथिला भाषा के कवि गोविन्दास तथा लोचन आदि कवि प्रभावित हुए वहीं दूसरी ओर कृष्णभक्त व काव्यकार भक्तवर सूरदास आदि भी इस प्रभाव से अछूते न रहे। हालांकि सूर में भक्ति भावना, कलात्मकता और संयम अधिक है। इसके अतिरिक्त रीतिकाल का साहित्य कई दिशाओं में विद्यापति से अत्यधिक प्रभावित हुआ है।

3.4. सारांश (Summary)

- जैन-तीर्थंकरों के जीवन-चरित तथा वैष्णव अवतारों की कथाएँ जैन-आदर्शों के आवरण में 'रास' नाम से पद्यबद्ध की गई। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्रि के समय ताल देकर 'रास' का गायन करते थे। चौदहवीं शताब्दी तक इस पद्धति का प्रचार रहा। अतः जैन-साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ बन गए। वीर गाथाओं में 'रास' को ही 'रासो' कहा गया है, किंतु उनकी विषय-भूमि जैन रास-ग्रंथों से भिन्न हो गई है।
- नाथ-पंथ से ही भक्तिकाल के संत-मत का विकास हुआ था, जिसके प्रथम कवि कबीर थे। इस मंतव्य का समर्थन कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से हो जाता है—नाथपंथी रचनाओं की अनेक विशेषताएँ संत-काव्य में यथावत् विद्यमान हैं।

नोट

- गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। हठयोगियों के 'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। इन दोनों के योग को ही 'हठयोग' कहते है। गोरखनाथ ने ही षट्चक्रोंवाला योग-मार्ग हिंदी-साहित्य में चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करनेवाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था।
- 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के संबंध में भी विवाद रहा है। वस्तुत: यह काव्य पिंगल शैली में लिखा गया है जो ब्रजभाषा का वह रूप है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। कवि ने तत्कालीन सभी प्रचलित शब्दों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है। शब्द-चयन रसानुकूल है, अत: वीर रस के चित्रणों में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं।
- **ढोला मारू रा दूहा**–यह संदेश रासक के समान लोककाव्य है और बीसलदेव रासो की तरह विरह गीत है। इस काव्य की कथा इस प्रकार है–सयानी होने पर मारू जी अपने बचपन के पति ढोला की चर्चा सुनती हैं और विरह में व्याकुल हो जाती हैं।
- **जीवन-वृत्त**–अमीर खुसरो इनका उपनाम है, इनका असली नाम अब्दुल हसन था। इनका जन्म सन् 1312 में पटियाली जिला एटा में हुआ।
- **जीवन-वृत्त**–विद्यापति का जन्म सं. 1425 में बिहार के दरभंगा जिले में विसपी गाँव में हुआ था। ये विद्वान वंश से संबंध रखते थे।

3.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **विद्वान**–अधिक ज्ञान रखने वाला व्यक्ति, बुद्धिमान
2. **विवाद**–झगड़ा, कलह
3. **रचयिता**–रचने वाला, बनाने वाला

3.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. सिद्ध-साहित्य के मुख्य सिद्धों के विषय में उल्लेख कीजिए।
2. जैन-साहित्य से क्या तात्पर्य है? विस्तार से बताइए।
3. रासो-साहित्य से क्या अभिप्राय है? विस्तार से उल्लेख कीजिए।
4. लौकिक साहित्य पर प्रकाश डालें।
5. अमीर खुसरो कौन थे? उनके जीवन वृत्त एवं साहित्यिक योगदानों का उल्लेख करें।
6. हिंदी साहित्य में विद्यापति के अक्षुण्ण कीर्ति के आधार क्या है? विवेचना करें।
7. जैन साहित्य का संक्षेप में उल्लेख करें।
8. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. राहुल जी ने सरहपा का समय 761ई. माना है, जिससे अधिकांश ..... सहमत हैं।
   2. ..... सिद्धों में लुइपा सबसे ऊँचा स्थान माना जाता है।
   3. कृष्ण-भक्ति के मूल में जो प्रवृत्ति-मार्ग है, उसकी प्रेरणा के सूत्र भी इनके .... में मिलते हैं।

नोट

9. बहुविकाल्पीय प्रश्न

1. ..... के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई हैं।

(क) फागु-शैली (ख) रास-शैली

(ग) चरित्र शैली (घ) आचार-शैली

5. श्रावकाचार में कितने दोहों में भावका-धर्म का प्रतिपादन किया गया है?

(क) 300 (ख) 250

(ग) 800 (घ) 600

6. काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है, फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप ..... है।

(क) संस्कृत (ख) मैथिली

(ग) ब्रज (घ) हिंदी

10. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे।
2. युद्धों के अत्यंत प्रभावशाली वर्णनों की परमाल रासो काव्य में भरमार नहीं हैं।
3. पृथ्वीराज रासो में वस्तु-वर्णन का भी वर्णन है।

3.7. संदर्भ पुस्तकें (Review Readings)

1. हिंदी साहित्य – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
3. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
4. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा

4. निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि एवं प्रमुख विशेषताएँ, प्रमुख संत कवि एवं उनका योगदान

रूपरेखा

4.1 उद्देश्य (Objectives)
4.2 प्रस्तावना (Introduction)
4.3 निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि
4.4 प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान
4.5 संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ
4.6 सारांश (Summary)
4.7 शब्दकोश (Keywords)
4.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
4.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

4.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि जानने में।
- प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान समझने में।
- संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ जानने में।

4.2. प्रस्तावना (Introduction)

शंकराचार्य एवं उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन, नाथपंथ, सूफी धर्म एवं इस्लाम संत काव्य का वैचारिक आधार है, उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म, जीव, जगत एवं भाषा के स्वरूप को संत कवियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया। संतों का साधना पक्ष और भक्ति भावना शंकर के अद्वैत दर्शन की देन है। रामानंद ने भक्ति का द्वार शूद्रों एवं निम्न वर्गों के लिए खोल दिया था। इसका प्रभाव भी संत काव्य पर दिखाई पड़ता है।

4.3. निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि

संत काव्य का वैचारिक आधार है शंकराचार्य एवं उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन, नाथपंथ, सूफी धर्म एवं इस्लाम। उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म, जीव, जगत एवं माया के स्वरूप को संत कवियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया। संतों का साधना पक्ष और भक्ति भावना शंकर के अद्वैत दर्शन की देन है। दोनों ही जीव को विशुद्ध ब्रह्म मानते हैं तथा जो भिन्नता दिखाई पड़ती है वह माया के कारण है। आत्मा की सर्वरूपता, सर्वशक्तिमत्ता भी अद्वैत दर्शन के अनुरूप है।

नाथपंथियों से उन्होंने शून्यवाद, योगसाधना, गुरु की प्रतिष्ठा का तत्व लिया। इस्लाम के प्रभाव से उन्होंने एकेश्वरवाद ग्रहण किया, मूर्तिपूजा का खण्डन किया और अवतारवाद का विरोध किया।

सूफियों से उन्होंने प्रेम भाव ग्रहण किया और दाम्पत्य प्रतीकों का प्रयोग भक्ति भावना की अभिव्यक्ति हेतु किया। सिद्धों की गूढ़ उक्तियाँ, उलटबांसियाँ, वैदिक परंपराओं एवं बाह्याचार का विरोध संत काव्य में भी मिलता है। रामानंद ने भक्ति का द्वार शूद्रों एवं निम्न वर्गों के लिए खोल दिया था। इसका प्रभाव भी संत काव्य पर दिखाई पड़ता है।

नोट

4.4. प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान

1. **कबीर–**'बीजक' नाम से उनकी रचनाओं का संकलन धर्मदास द्वारा किया गया है। जिसके तीन भाग हैं–साखी, सबद, रमैनी। कबीर का जन्म 1398 ई. और मृत्यु 1518 ई. में हुई। कबीर जाति के जुलाहे थे, काशी में रहते थे तथा रामानंद उनके गुरु थे। कबीर की पत्नी का नाम लोई, पुत्र का नाम कमाल एवं पुत्री का नाम कमाली था। उनकी कविता में उपदेशों की प्रवृत्ति है, रहस्यवादी भावना है तथा प्रतीकों का प्रयोग उनकी भाषा में है।

   कबीर निरक्षर थे। स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है–

   मसि कागद छूयौ नहीं कलम गह्यौ नहिं हाथ।

   उनकी रचनाओं का संकलन बाद में उनके शिष्यों ने किया। 'कबीर बीजक' में तो उनकी रचनाएँ संकलित हैं ही इसके अतिरिक्त बाबू श्यामसुंदर दास ने उनकी रचनाओं का संकलन 'कबीर ग्रंथावली' में किया है।

   उन्होंने मूर्ति पूजा, माला, तिलक, छापा, तीर्थाटन, गंगास्नान, रोजा, हिंसा, जाति प्रथा, ऊँच-नीच की भावना आदि का खंडन किया। यथा–

   1. *माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।*
      कर का मनका डारि के मन का मनका फेर।।
   2. *ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।*
      सुबरन कलश सुरा भरा साधू निन्दत सोय।।
   3. *पाहन पूजै हरि मिलैं तौ मैं पूजूँ पहार।*
      घर की चाकी क्यों नहिं पूजैं पीसि खाय संसार।।

   हिंदुओं और मुसलमानों को फटकारते हुए कहा–

   अरे इन दोउन राह न पाई
   हिंदू अपनी करैं बड़ाई गागर छुअन न देंई।
   वेश्या के पायन तर सोवैं यह देखौ हिंदुआई।।
   मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी-मुर्गा खाई।
   खालाकेरी बेटी ब्याहैं घर ही में करैं सगाई।।

   वे शास्त्र पर नहीं आँखों देखी बात पर यकीन करते हैं–

   तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।
   मैं कहता सुरझावन हारी तू राखा उरझोय रे।।

   गुरु की महत्ता पर उन्होंने सर्वाधिक बल दिया है। इसके अतिरिक्त नैतिकता, सदाचार, परोपकार, क्षमा, सत्य भाषण, संतोष आदि को उन्होंने श्रेष्ठ मानव के लिए आवश्यक माना है।

   कबीर ने जीवन को ब्रह्म का अंश माना है जो माया के कारण अपने स्वरूप को भूला हुआ है। माया के नष्ट होते ही जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन हो जाता है–

   जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।

   फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कथेहु गियानी।।

यहाँ घड़ा माया का प्रतीक है जो घड़े के जल (जीवात्मा) को बाहर के जल (परमात्मा) से अलग किए हुए है। जैसे ही घड़ा (माया) फूटता है दोनों जल मिलकर एक हो जाते हैं। वे कहते हैं कि सतगुरु ही व्यक्ति को माया के बंधन से छुड़ाता है तथा ईश्वर का साक्षात्कार कराता है। कबीर ने गुरु महिमा का पाठ नाथ पंथियों से सीखा है।

सतगुरु की महिमा अनत अनत किया उपगार।

लोचन अनत उघाड़िया अनत दिखावणहार।।

कबीर के काव्य में हठयोग साधना एवं कुंडलिनी योग का जो विवरण मिलता है उसका संबंध भी नाथपंथ से है। पारिभाषिक शब्दावली उन्होंने नाथपंत से ग्रहण की है। कुंडलिनी साधना वाले उनके पदों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साधनात्मक रहस्यवाद माना है। ऐसा एक पद उद्धृत है–

अवधू गगन मंडल घर कीजै।

अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीजै।।

कुंडलिनी मूलाधार चक्र में सुषुप्तावस्था में रहती है। योगी साधना द्वारा इसे जाग्रत करता है और यह षट चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार चक्र में पहुँचती है जहाँ ब्रह्मरंध से झरने वाले अमृत रस का पान करती है।

कबीर का रहस्यवाद भावात्मक कोटि का भी है। जहाँ जीवात्म का उस निर्गुण परमात्मा से भावात्मक संबंध जोड़ती हुई विरह, मिलन, जिज्ञासा, की अनुभूति करती है वहाँ भावात्मक रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। कबीर ने जीवात्मा को प्रेयसी एवं परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित करते हुए उनके विरह एवं मिलन के चित्र प्रस्तुत किए हैं–

कै विरहिन कूं मीचु दै कै आपा दिखलाय।

रात दिना का दाक्षणा मो पै सह्या न जाय।।

मिलन की अनुभूति का वर्णन कबीर ने विवाह के सांग-रूपक द्वारा इस पद में किया है–

दुलहिनि गावहु मंगलचार।

मोरे घर आए हो राजा राम भरतार।

तन रत करि मैं मन रत करिहूँ पंचतत्त बाराती।

रामदेव मोरे पाहुने आए, मैं जोवन मैमाती।

सरीर सरोवर वेदी करिहूँ ब्रह्मा वेद उचारि।।

रामदेव संग भांवरि लैहो धनि-धनि भाग हमार।।

सुर तैंतीसूं कौतिग आए मुनिवर सहस अठासी।

कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरिस एक अविनासी।।

भावात्मक रहस्यवाद को उद्घाटित करने वाले इन पदों में कबीर ने शृंगार रस की योजना की है।

कबीर भले ही पढ़े-लिखे न हों पर उनका काव्य काव्यगत रमणीयता से रहित नहीं है। अलंकार, प्रतीक, भाषा, आदि सभी दृष्टियों से वह उच्चकोटि का काव्य है।

कबीर के काव्य में 'प्रतीकों' का भी भरपूर प्रयोग है। उनकी उलटबांसियाँ सिद्धों से प्रभावित हैं जो विपरीत कथन के कारण लोगों को चमत्कृत करती हैं–

समुंदर लागी आग नदियाँ जलि कोइला भई।

देख कबीरा जाग मंछी रुखा चढ़ि गई।

यहाँ समुद्र-मूलाधार चक्र का प्रतीक है, नदियाँ चित्रवृत्तियों का प्रतीक हैं तथा 'मछली' कुंडलिनी के लिए प्रयुक्त है। निम्न पद में भी प्रतीकों का प्रयोग उन्होंने किया है–

नोट

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।
तेरे ही नाल सरोवर पानी।।
जल में उतपति जल में वास जल में नलिनी तोर निवास।
ना तल तपति न ऊपर आगि तोर हेतु कहु कासनि लाग।
कहैं कबीर जे उदिक समान ते नहिं मुए हमारेहि जान।।

इस पद में 'कमलिनी' जीवात्मा का तथा 'जल' परमात्मा का प्रतीक है। जीव एवं ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन इसमें अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से कबीर ने किया है।

कबीर के काव्य में रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अनेक अलंकार प्रचुरता से उपलब्ध हो जाते हैं। वस्तुत: काव्य रचना करना उनका लक्ष्य नहीं था। कविता तो उनके लिए साधन थी जिसके माध्यम से वे अपनी बात जनता तक पहुँचाना चाहते थे। कबीर भले ही आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व पैदा हुए हों, किंतु उनकी शिक्षाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं।

2. **रामानंद**–जन्म 1368 ई. तथा मृत्यु 1468 ई.। कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, शिक्षा काशी में हुई। भक्तमाला के अनुसार, रामानंद के बारह शिष्य थे; जिनके नाम हैं–अनन्तानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, भावानंद, पीपा, कबीर, सेन, धन्ना, रैदास, सुरसुरी और पद्मावती। **रामानंद के शिष्यों में कबीर, पीपा, अनंतदास, धन्ना प्रसिद्ध हैं। इनके गुरु का नाम राघवानंद था। इन्होंने रामावत-संप्रदाय का प्रवर्तन किया।** तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, वेदादि का विरोध करते हुए उन्होंने अंत:साधना पर बल दिया। **रामानंद के गुरु राघवानंद जी ने 'सिद्धांत पंच मात्रा'** नामक ग्रंथ की रचना की।

3. **रैदास (1398-1448)**–जाति के चमार थे, काशी के निवासी थे। जन्मकाल के संबंध में निश्चयपूर्वक कहना संभव नहीं है। कुछ विद्वान इन्हें प्रसिद्ध कवयित्री मीरा का गुरु भी बताते हैं। रैदास का एक अन्य नाम रविदास भी है। संतबानी सीरीज के अंतर्गत इनकी रचनाओं का संकलन **'रविदास की बानी'** शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनके लिखे हुए 40 पद गुरु ग्रंथ साहब में भी संकलित हैं। रैदास का नाम रामानंद के 12 शिष्यों में है, किंतु रैदास की रचनाओं में कहीं भी रामानंद का उल्लेख नहीं है। निर्गुण ब्रह्म उनके लिए भी जिज्ञासा का विषय है। उनकी भाषा सरल ब्रजभाषा है जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली, उर्दू-फारसी के शब्द भी मिल जाते हैं। उनकी कविता का एक नमूना प्रस्तुत है–

अब कैसे छूटे राम नाम रट लागी।
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी जाकी अंग-अंग वास समानी।
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भगति करै रैदासा।।

4. **गुरु नानक (1469-1538 ई.)–सिख संप्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हैं।** उनका जन्म 1469 ई. में तलवंडी में हुआ था जो अब ननकाना साहब के नाम से जाना जाता है। नानक के पद गुरु ग्रंथ साहब में संकलित हैं। **जपुजी, असा दीवार, रहिरास, सोहिला** उनकी रचनाओं के नाम हैं।

नानकदेव समन्वयशील एवं उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनके पिता का नाम **कालूचंद** और माता का नाम तृप्ता था। इनके दो पुत्र भी हुए–**लक्ष्मीचंद, श्रीचंद।** वे भ्रमणशील संत थे। निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति भावना उनके काव्य में विद्यमान है। **शांत रस की प्रधानता नानक की रचनाओं में है। उनकी भाषा पंजाबी एवं ब्रजभाषा मिश्रित है।** उनके पद राग-रागिनियों में निबद्ध हैं जिनमें करुण, शांत एवं श्रृंगार रस भी दिखाई पड़ता है।

5. **हरिदास निरंजनी**–ये निरंजनी संप्रदाय के कवि थे। इस संप्रदाय को नाथ पंथ एवं संत काव्य के बीच की कड़ी माना जा सकता है। इनके लिखे ग्रंथ हैं–**अष्टपदी, जोगग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजाजोग ग्रंथ, समाधिजोग ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ।** इन्होंने ब्रजभाषा में काव्य की रचना की है।

6. **दादूदयाल (1544-1603)**–इन्होंने दादू पंथ का प्रवर्तन किया। वे एक धर्म सुधारक एवं समाज सुधारक के रूप में प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि थे। इनके पंथ को **परमब्रह्म संप्रदाय** भी कहा जाता है। **रज्जब, सुंदरदास, प्रागदास, जनगोपाल** इनके प्रमुख शिष्य थे। उनकी रचनाओं का संकलन **'हरडेवाणी'** नाम से उनके शिष्यों–**संतदास** एवं **जगन्नाथ दास** ने प्रस्तुत किया है। **परशुराम चतुर्वेदी** द्वारा संपादित **दादूदयाल** में भी उनकी प्रमाणिक रचनाएँ संकलित हैं।

7. **मलूकदास**–इनका समय (1574-1682) मुगल काल में है। इनके लिखे ग्रंथों के नाम हैं–**ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, सुखसागर, भक्तवच्छावली, बारहखड़ी, स्फुटपद, राम अवतार लीला, ब्रजलीला** तथा **ध्रुवचरित।** आलसियों का **महामंत्र** इन्हीं का रचा हुआ है–

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गए सबके दाता राम।''

8. **सुंदरदास (1596-1689)**–ये दादूदयाल के शिष्य थे और प्रतिभाशाली कवि थे। इनके लिखे ग्रंथों में **ज्ञानसमुद्र** और **सुंदरविलास** प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं का संकलन **सुंदर ग्रंथावली** (दो भाग) में पुरोहित **हरिनारायण शर्मा** ने किया है। **सुंदरदास शृंगार** रस के परम विरोधी थे। **केशव** की **रसिकप्रिया** और **नन्ददास** की **रसमंजरी** की निंदा उन्होंने अपने एक छंद में की है। उनकी रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। उक्त प्रमुख कवियों के अतिरिक्त **लाल पंथ** के प्रवर्तक **लालदास** (1540-1648 ई.), बाबालाली संप्रदाय के प्रवर्तक बाबालाल (1590-1655 ई.), **संत रज्जब** (1567-1689 ई.), **बाबरी पंथ की बाबरी साहिबा** (1542-1605 ई.), **संत सदना, संत पीपा, संत सेन, संत धन्ना** (1415 ई.) भी संत कवियों में गिने जाते हैं। पंजाब में कुछ सिक्ख गुरुओं ने भी संत काव्य की रचना की है। इनमें प्रमुख हैं–गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव। गुरु अंगद ने नानक की रचनाओं का संकलन किया और ब्रजभाषा मिश्रित पंजाबी में सरस गेय पदों की रचना की। गुरु अर्जुन देव (1563-1606 ई.) एक अच्छे कवि थे। गुरु ग्रंथ साहिब में उनके 6,000 पद संकलित हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं–**सुखमनी, बावनअखरी** और **बारहमासा।**

9. **शेख फरीद (1472-1552 ई.)**–ये भी पंजाब के संत कवियों में उल्लेखनीय हैं। आदि ग्रंथ में इनके चार पद संकलित हैं। **संत वीरमान** की उपदेशपरक रचनाएँ **'बानी'** शीर्षक से संकलित की गई हैं। **अक्षर अनन्य** ने योग और वेदांत पर कई ग्रंथ लिखे तथा **दुर्गासप्तशती** का अनुवाद हिंदी पद्यों में किया।

4.5. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

1. संत काव्य भाव प्रधान है, कला प्रधान नहीं। वह ताजमहल की कुशल कारीगरी न होकर रम्य पर्वत श्रेणियों की भाँति सहज सुंदर है।
2. कविता करना इनका लक्ष्य न था। कविता तो इनके उपदेशों का साधन मात्र थी।
3. संत कवियों में प्रमुख कबीर भक्त और कवि बाद में हैं, समाज सुधारक पहले हैं।
4. **संत कवि निर्गुणोपासक थे।** वे ईश्वर को निर्गुण, निराकार, अजन्मा, अविनाशी एवं सर्वव्यापी मानते हैं। कभी-कभी वे इस निर्गुण को राम, गोविंद, हरि आदि नामों से भी पुकारते हैं।
5. संत काव्य में **ज्ञान की महत्ता को** प्रतिपादित किया गया है। यह ज्ञान वेद-पुराणों या कुरान से नहीं, अपितु चित्त की निर्मलता एवं हृदय की पावनता से प्राप्त किया जाता है। ज्ञान दशा में

नोट

ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। विवेकयुक्त ज्ञान दृष्टि ही व्यक्ति को अज्ञान, अंधविश्वास एवं पाखंड से मुक्त करती है। ज्ञान की अग्नि जब माया के जल में लगती है तो विषय-वासना का कीचड़ नष्ट हो जाता है–

अगिनि जु लागी नीर में बन्दू जलिया झारि।
उत्तर-दक्षिण के पंडिता रहे बिचारि-बिचारि।।

6. संत काव्य में **गुरु की महत्ता** का प्रतिपादन करते हुए उसे ईश्वर से भी बड़ा दर्जा दिया गया है। गुरु ही ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है, वही ज्ञान-नेत्र खोलता है। **'गुरुदेव कौ अंग'** शीर्षक से संकलित साखियों में कबीर ने गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है। गुरु की प्रतिष्ठा इन्होंने नाथ पंथ से ग्रहण की।
7. संत काव्य में **अद्वैतवादी दर्शन** को स्थान मिला है। इनकी दार्शनिक मान्यताएँ शंकर के अद्वैत दर्शन से प्रभावित हैं। ब्रह्म और जीवन की एकता का प्रतिपादन, माया के अस्तित्व को स्वीकार करना, ईश्वर को निर्गुण-निराकार बताना, आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता का प्रतिपादन–सब कुछ शंकर के अद्वैत दर्शन के अनुरूप हैं।
8. संत काव्य में **रहस्यवाद** की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। दांपत्य प्रतीकों के माध्यम से इन्होंने निर्गुण ब्रह्म के साथ माधुर्य भाव की भक्ति का समावेश करते हुए **भावात्मक रहस्यवाद** का विधान किया। कबीर का पद **'दुलहिनि गावहु मंगलचार'** इसी प्रकार का भावात्मक रहस्यवादी पद है। दूसरी ओर, कुंडलिनी योग से संबंधित पदों में उन्होंने **साधनात्मक रहस्यवाद** का विधान किया है। **'अवधू गगन मंडल घर कीजै'** पद में साधनात्मक रहस्यवाद की प्रवृत्ति है।
9. संत कवियों ने **बाह्याडंबरों** का खंडन किया। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, व्रत, रोजा, नमाज में इन्हें कोई विश्वास न था। हिंदू-मुसलमान दोनों को इन्होंने अंधविश्वासों, रूढ़ियों, धर्मान्धता के लिए फटकारा। वे धर्म के सामान्य तत्वों–सत्य, अहिंसा प्रेम, करुणा, संयम, सदाचार को मानव के लिए आवश्यक मानते हैं।
10. संत कवि जाति प्रथा के विरोधी थे। ऊँच-नीच, छुआछूत एवं वर्णाश्रम व्यवस्था को अभिशाप मानकर इन्होंने निर्भीकता से इनका खंडन किया। ब्राह्मण वर्ग इनके आक्रोश का शिकार बना। अधिकांश संत कवि स्वयं निम्न वर्ग से संबंधित थे अत: उच्च वर्ग की मुखर आलोचना संत काव्य में अस्वाभाविक न थी।
11. संत काव्य में शास्त्र का विरोध करते हुए स्वानुभूति पर बल दिया गया है। उनकी उक्ति में खरापन एवं निर्भीकता है जिसे जनता ने पसंद किया। उनके कथन अनुभूति प्रधान हैं। उनमें शास्त्रों की व्यर्थता प्रतिपादित की गई है।
12. संत कवियों का **नारी विषयक दृष्टिकोण** असंतुलित एवं अतिवादी है। वे नारी को नरक का द्वार एवं माया का प्रतिरूप बताते हैं। नारी निंदा करते हुए वे उसे 'विष का बेल' तक कह देते हैं। नारी के प्रति उनका यह दृष्टिकोण भी नाथपंथियों का प्रभाव है।
13. संत काव्य की **भाषा अपरिष्कृत** है। साहित्यिक भाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा का प्रयोग वे अपने वाक्य में करते थे। देशाटन के कारण उनकी भाषा में अनेक बोलियों एवं भाषाओं का मिश्रण दिखाई पड़ता है। ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी, फारसी, अरबी शब्दों के मिले-जुले रूप के कारण **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने उनकी भाषा को **सधुक्कड़ी भाषा** या **पंचमेल खिचड़ी भाषा** कहा है। अनगढ़ भाषा होने पर भी उनकी भाषा भाव संप्रेषण में पूर्ण सफल है। उसकी शक्ति एवं सामर्थ्य के कारण **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर को वाणी का डिक्टेटर तक कह दिया है।**
14. **संत काव्य में अलंकारों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए न होकर भावों के उत्कर्ष के लिए हुआ है।** वस्तुत: वे पिंगल शास्त्र के क ख ग से भी परिचित न थे। अत: काव्य

में अलंकारों का समावेश कर सकने की शक्ति एवं सामर्थ्य उनमें थी ही नहीं। यह बात अलग है कि उनका काव्य अलंकार विहीन नहीं है। उसमें अनायास ही उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास का समावेश हो गया है।

15. संत काव्य में **शांत रस** की प्रधानता है। **शृंगार रस** का पूर्ण परिपाक भी उसमें हुआ है। कबीर की उलटबांसियों में **अद्‌भुत रस** भी है।

4.6. सारांश (Summary)

- उपनिषदों द्वारा निरूपित ब्रह्म, जीव, जगत एवं माया के स्वरूप को संत कवियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया। संतों का साधना पक्ष और भक्ति भावना शंकर के अद्वैत दर्शन की देन है। दोनों ही जीवन को विशुद्ध ब्रह्म मानते हैं तथा जो भिन्नता दिखाई पड़ती है। वह माया के कारण है। आत्मा की सर्वरूपता, सर्वशक्तिमत्ता भी अद्वैत दर्शन के अनुरूप है।

4.7. शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रतिष्ठा**–इज्जत, मान-सम्मान
2. **पाखंड**–ढोंग दिखाना, झूठा दिखावा करना
3. **रूढ़ियाँ**–पुरानी परंपराएँ जो मानव विकास में बाधा बनती हैं

4.8. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि तथा प्रमुख संत कवि और उनके योगदान का उल्लेख कीजिए।
2. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं? वर्णन कीजिए।
3. निर्गुण भक्ति साहित्य की पृष्ठभूमि पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. दोनों ही जीव को विशुद्ध ब्रह्म मानते हैं तथा जो भिन्नता दिखाई पड़ती है वह .... के कारण है।
   2. कबीर की पत्नी का नाम लोई, पुत्र का नाम कमाल एवं पुत्री का नाम ..... था।
   3. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें ..... कहा है।
5. **बहुविकल्पीय प्रश्न–**
   1. कबीर ने गुरु महिमा का पाठ ..... से सीखा है।
      (क) सिद्ध पंथियों (ख) जैन पंथियों
      (ग) नाथ पंथियों (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
   2. संतवानी सीरीज के अंतर्गत इनकी रचनाओं का संकलन ..... शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।
      (क) गुरुदास की बानी (ख) रविदास की बानी
      (ग) कबीर की बानी (घ) रहीम की बानी
   3. किसकी उपदेशपरक रचनाएं बानी शीर्षक से संकलित की गई हैं?
      (क) संत वीरमान (ख) गुरु अमरदास
      (ग) गुरु रामदास (घ) गुरु अंगद

6. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. ज्ञान दशा में ही ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता है।
2. अवध–गगन मंडल घर कीजै पद में साघनात्मक रहस्यवाद की पद्धति है।
3. अनगढ़ भाषा होने पर भी कबीर की भाषा भाव संप्रेषण में पूर्ण सफल है।

नोट

4.9. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी

5. निर्गुण प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा

नोट

रूपरेखा

5.1 उद्देश्य (Objectives)
5.2 प्रस्तावना (Introduction)
5.3 हिंदी सूफी काव्य परंपरा तथा सूफी मत का वैचारिक आधार
5.4 सारांश (Summary)
5.5 शब्दकोश (Keywords)
5.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

5.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- हिंदी सूफी काव्य परंपरा के अंतर्गत हिंदी सूफी मत का वैचारिक आधार जानने हेतु।
- हिंदी प्रेमाख्यानों की परंपरा का वर्णन करने में।

5.2. प्रस्तावना (Introduction)

सूफी काव्य में उपलब्ध प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है। सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर भारतीय परंपरा में हैं। यह प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत की अनेक कथाओं में उपलब्ध होती हैं। प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत से प्रारंभ होकर आधुनिक भाषाओं तक पहुँची। अवधी भाषा के साथ-साथ बंगला भाषा में भी इस प्रकार के प्रेमाख्यानक मिलते हैं। सूफी काव्य परंपरा विदेशी नहीं है अपितु इसकी जड़ें भारतीय पौराणिक साहित्य में उपलब्ध हैं।

5.3. हिंदी सूफी काव्य परंपरा तथा सूफी मत का वैचारिक आधार

भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत संत काव्य एवं सूफी काव्य नामक दो शाखाएँ हैं। सूफी काव्य के लिए प्रचलित कुछ अन्य नाम हैं–प्रेममार्गी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा, प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा, रोमांसिक कथा काव्य परंपरा आदि। स्पष्ट ही इस शाखा में प्रेमतत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है। सूफी काव्य में उपलब्ध प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है। यह स्वच्छंद प्रेम है जिसे अंग्रेजी में 'रोमांस' कहा गया है। इस प्रेम भावना में स्वच्छंदता, सौंदर्यभावना, साहसपूर्ण क्रियाकलाप विद्यमान रहते हैं तथा यह मर्यादावादी दाम्पत्य प्रेम से हटकर है। स्वच्छंद प्रेम समाज की मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता। हिंदी के मध्यकालीन प्रेमाख्यान ग्रथों में इसी 'रोमांस' का चित्रण किया गया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन प्रेमाख्यानकों पर फारसी मसनवियों का प्रभाव माना है, किंतु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार का प्रेम चित्रण भारतीय परंपरा में भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में उर्वशी-पुरुरवा का आख्यान, महाभारत का नल-दमयंती आख्यान, तप्ता-संवरण आख्यान और पुराणों में वर्णित उषा-अनिरुद्ध, राधा-कृष्ण, प्रभावती-प्रद्युम्न आख्यान भी स्वच्छंद प्रेम की परिभाषा में आते हैं। स्वच्छंद प्रेम की यही परंपरा कालांतर में संस्कृत में वासवदत्ता, कादंबरी, दशकुमार चरित में दिखाई पड़ती

है। शूद्रक ने 9वीं शताब्दी में कथा काव्य के लक्षण निर्धारण में यह स्वीकार किया है कि उसमें नायिकाओं को पाने के लिए साहसपूर्ण संघर्ष करना अनिवार्य होता है। राम का चरित्र यदि यथार्थवादी भारतीय चरित्र है तो कृष्ण का चरित्र भी स्वच्छंदतावादी भारतीय चरित्र है। ऐसी स्थिति में सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों को पूर्णत: विदेशी प्रभाव से युक्त मानना उचित नहीं है।

नोट

प्राकृत भाषा में गुणाढ्य द्वारा रचित वृहत्कथा तथा क्षेमेंद्र के कथासरित्सागर की प्रेमकथाओं में प्रेम की उत्पत्ति सौंदर्य प्रेरणा से हुई है तथा नायक को नायिका के संरक्षकों का विरोध झेलना पड़ा है। यही नहीं अपितु कालिदास के मेघदूत का यक्ष, ऋग्वेद का पुरुरवा, कथासरित्सागर और दशकुमार चरित के नायक भी अत्यंत विरह कातर होकर नायिका के प्रणय की आकांक्षा करते दिखाए गए हैं, अत: नायक का विरह-विलाप भी अभारतीय पद्धति नहीं मानी जा सकती।

फारसी मसनवियों में नायिका का विवाह प्रतिनायक से हो जाता है और नायक आत्महत्या कर लेता है पर भारतीय प्रेमाख्यानकों में किसी दैवी शक्ति की सहायता से नायक को नायिका की प्राप्ति अवश्य ही हो जाती है। यही नहीं इनमें हंस, शुक आदि पक्षियों द्वारा संदेश ले जाना, शिव-पार्वती आदि से सहायता मिलना, नायिका को पाने के लिए उसके संरक्षकों से युद्ध करना जैसे वृत्तांत भी हैं, जो फारसी मसनवियों में न होकर भारतीय पौराणिक आख्यानों के अनुरूप हैं, अत: यह कहना उचित होगा कि सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर भारतीय परंपरा में हैं।

वस्तुत: यह प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत की अनेक कथाओं में उपलब्ध होती है। प्रणय-स्वप्नों की पूर्ति के लिए सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन, कन्याओं का हरण तथा विवाह में आर्य-अनार्य के भेद का लोप भी वैध था। भीम ने असुरकन्या हिडिंबा से, अर्जुन ने नागकन्या चित्रांगदा से और कृष्ण ने ऋक्षकन्या जांबवती से विवाह किया था। महाभारत का नल-दमयंती वृत्तांत (वन पर्व) प्रेमाख्यानक काव्य की सभी विशेषताओं से युक्त है और **डॉ. नगेंद्र** ने इसी को भारतीय प्रेमाख्यानों की आधारभूमि माना है।

तदनंतर हरिवंश पुराण में वर्णित कृष्ण-रुक्मिणी, प्रद्युम्न-प्रभावती और उषा-अनिरुद्ध आख्यानों में दी गई कथानक रूढ़ियाँ; यथा–देव मंदिर में पूजा हेतु गई नायिका से नायक की गुप्त भेंट, स्वप्न एवं चित्र दर्शन से प्रेम उत्पन्न होना, नायक द्वारा वेश बदलकर दरबार में जाना, नायक का बंदी हो जाना, दैवी सहायता से लक्ष्य प्राप्त होना आदि का उपयोग हिंदी प्रेमाख्यानों में किया गया है। प्राकृत में रचित 'वृहत्कथा' यद्यपि मूल रूप में अनुपलब्ध है तथापि इसकी विषय-वस्तु का ज्ञान हमें इसी के आधार पर रचित **'वृहत्कथामंजरी'** और **'कथासरित्सागर'** से प्राप्त हो जाता है। वृहत्कथा के नायक उदयन के पुत्र नरवाहन दत्त के साहस, शौर्य एवं प्रेम की कहानियाँ भी इन प्रेमाख्यानों की आधारभूमि रही हैं। उक्त कथानकों में जिन प्रमुख कथासूत्रों का प्रयोग हुआ है, उसी का आधार सूफी प्रेमाख्यानों में लिया गया है। ये कथासूत्र इस प्रकार हैं–

1. नायिका के नाम के अंत में 'वती' आता है। यथा–पद्मावती।
2. नायिका किसी द्वीप की निवासिनी होती है यथा–सिंहलद्वीप।
3. स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन या गुणकथन से नायक-नायिका में प्रेम होना।
4. नायक द्वारा ब्राह्मण, भिक्षु, योगी का तपस्वी वेश में नायिका की खोज हेतु निकलना।
5. मंदिर या पुष्पवाटिका में नायक-नायिका की प्रथम भेंट होना।
6. नायिका के संरक्षक से नायक का युद्ध होना।
7. किसी सिद्ध, योगी, वेताल या देवता की सहायता से नायक को नायिका की प्राप्ति होना।

इस प्रकार बने हुए कथासूत्र में घटनाओं की प्रचुरता है, भाव व्यंजना कम है, किंतु संस्कृत में रचित **वासवदत्ता** (सुबंधु), **कादंबरी** (बाणभट्ट), **दशकुमार चरित** (दंडी) में इन प्रवृत्तियों के साथ-साथ भाव-व्यंजना एवं अलंकृत शैली की प्रधानता है।

प्राकृत एवं अपभ्रंश के जैन कवियों द्वारा रचित प्रेम कथाओं–**भुवन सुंदरी, मलय सुंदरी, लीलावती, भविस्यत्त भविसयत्त-कहा, जसहर चरिउ** में गद्य के स्थान पर पद्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए नायक की सफलता किसी जैन तीर्थंकर या मुनि द्वारा दिखलाकर तथा नायक-नायिका को जैन धर्म में दीक्षित करते हुए संन्यास की ओर अग्रसर करके कथा का समापन शांत रस में कर दिया है।

निष्कर्ष यह है कि यह प्रेमाख्यानक परंपरा 'महाभारत' से प्रारंभ होकर आधुनिक भाषाओं तक पहुँची। अवधी भाषा के साथ-साथ बंगला भाषा में भी इस प्रकार के प्रेमाख्यानक मिलते हैं। पाश्चात्य विद्वानों बेनफी, कीलर और हर्टेल ने तो यहाँ तक कहा है कि भारतीय प्रेमाख्यानकों की एक शाखा सिकंदर के साथ यूनान, रोम, इटली, जर्मनी, स्पेन, इंग्लैंड तक पहुँची और इसी ने वहाँ रोमांटिसिज्म को आधारभूमि प्रदान की। इतना तो कहा ही जा सकता है कि सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा विदेशी नहीं है अपितु इसकी जड़ें भारतीय पौराणिक साहित्य में उपलब्ध हैं।

नोट

5.4. सारांश (Summary)

- भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत संत काव्य एवं सूफी काव्य नामक दो शाखाएँ हैं। सूफी काव्य के लिए प्रचलित कुछ अन्य नाम हैं–प्रेममार्गी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा, प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा, रोमांसिक कथा काव्य परंपरा आदि।
- स्वच्छंद प्रेम समाज की मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता। हिंदी के मध्यकालीन प्रेमाख्यान ग्रंथों में इसी 'रोमांस' का चित्रण किया गया है।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन प्रेमाख्यानकों पर फारसी मसनवियों का प्रभाव माना है, किंतु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार का प्रेम चित्रण भारतीय परंपरा में भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में उर्वशी-पुरुरवा का आख्यान, महाभारत का नल-दमयंती आख्यान, तप्ता-संवरण आख्यान और पुराणों में वर्णित उषा-अनिरुद्ध, राधा-कृष्ण, प्रभावती-प्रद्युम्न आख्यान भी स्वच्छंद प्रेम की परिभाषा में आते हैं।
- फारसी मसनवियों में नायिका का विवाह प्रतिनायक से हो जाता है और नायक आत्महत्या कर लेता है पर भारतीय प्रेमाख्यानकों में किसी दैवी शक्ति की सहायता से नायक को नायिका की प्राप्ति अवश्य ही हो जाती है। यही नहीं इनमें हंस, शुक आदि पक्षियों द्वारा संदेश ले जाना, शिव-पार्वती आदि से सहायता मिलना, नायिका को पाने के लिए उसके संरक्षकों से युद्ध करना जैसे वृत्तांत भी हैं, जो फारसी मसनवियों में न होकर भारतीय पौराणिक आख्यानों के अनुरूप हैं, अत: यह कहना उचित होगा कि सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर भारतीय परंपरा में हैं।

5.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **यथार्थवादी**–सत्य बोलने वाला
2. **निष्कर्ष**–परिणाम
3. **काव्य परंपरा**–इतिहास से चली आ रही काव्य की परंपरा, नियम आदि

5.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. सूफी मत के वैचारिक आधार से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. हिंदी प्रेमाख्यानों की परंपरा के विषय में बताइए।
3. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. सूफी ..... में उपलब्ध प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है।
   2. ..... भारतीय परंपरा में भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है।
   3. स्वच्छंद प्रेम की यही ..... कालांतर में संस्कृत में वासवदत्ता, कादंबरी, दशकुमार चरित में दिखाई पड़ती है।

नोट

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर किस प्रकार परंपरा में हैं?

   (क) चीनी (ख) यूरोपीय

   (ग) अफ्रीकी (घ) भारतीय

2. ..... ने असुरकन्या हिडिंबा से, अर्जुन ने नागकन्या चित्रांगदा से और कृष्ण ने ऋक्षकन्या जांबवती से विवाह किया था।

   (क) कर्ण (ख) भीम

   (ग) युधिष्ठिर (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

3. वृहत्कथा के नायक ..... के पुत्र नरवाहन दत्त के साहस, शौर्य एवं प्रेम की कहानियाँ भी इन प्रेमाख्यानों की आधारभूमि रही हैं।

   (क) उदयन (ख) दशकुमार

   (ग) कालिदास (घ) कबीर

5. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. नायिका किसी सिंहलद्वीप की निवासिनी नहीं होती है यथा–पद्मावती।
2. प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत से प्रारंभ होकर आधुनिक भाषाओं तक पहुँची।

5.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी

6. निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्य धारा

नोट

रूपरेखा

6.1 उद्देश्य (Objectives)
6.2 प्रस्तावना (Introduction)
6.3 निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा के प्रमुख कवित
6.4 निर्गुण काव्य की विशेषताएँ
6.5 निर्गुण का अर्थ: निर्गुण काव्यधारा में ज्ञानमार्गी धारा
6.6 निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि
6.7 प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान
6.8 संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ
6.9 सारांश (Summary)
6.10 शब्दकोश (Keywords)
6.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
6.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

6.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा के प्रमुख कवि को समझने में
- निर्गुण काव्य की विशेषताओं को समझने में
- निर्गुण का अर्थ: निर्गुण काव्य धारा में ज्ञानमार्गी धारा को जानने में

6.2. प्रस्तावना (Introduction)

ज्ञानाश्री शाखा की संत काव्यधारा में रामानंद का नाम सर्वोपरि है। भक्तिकाल में काव्य की दो प्रधान धाराएँ प्रचलित हुई–निर्गुण और सगुण। निर्गुण काव्य-धारा की भी दो शाखाएँ बनीं–ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा।

संत कवियों ने निर्गुण साधना को अपनाया। अवतारवाद की बात इन कवियों ने नहीं की। उनकी भाषा में काई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है। इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है।

6.3. निर्गुण ज्ञानामार्गी संत काव्यधारा के प्रमुख कवि

ज्ञानाश्रयी शाखा की संत काव्यधारा में रामानंद का माँग सर्वोपरि है। संत मत के प्रचार का श्रेय इन्हीं को है। इनके शिष्य कबीर ने ज्ञानाश्रयी शाखा को अमर बना दिया। इसके अतिरिक्त दादू दयाल, हरिदास लालदास, मलूकदास, धर्मदास, सुन्दरदास आदि के नाम उल्लेखनीय है। इसमें कोई दो राय नहीं कि संत कवियों ने जिस विचारधारा को लेकर रचना की उसका मूल सिद्ध तथा नाथ साहित्य में है। इसमें भी कोई असहमति नहीं है कि इन कवियों की रचना सरल भाषा में सहज रूप में है।

नोट

6.4. निर्गुण काव्य की विशेषताएँ

भक्तिकाल में काव्य की दो प्रधान धाराएँ प्रचलित हुई–निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा। निगुण र्ा काव्यधारा की भी दो शाखाएँ बनीं–ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा को संतों ने पोषित किया और नतीजा यह हुआ कि काव्य की यह धारा जन-जन में जीवन को पवित्र बनाने वाली सिद्ध हुई। डॉ. श्यामसुंदर दास का मत है–संत कवियों में अपनी निर्गुण भक्ति द्वारा जनता के हृदय में अपर्वू आशा उत्पन्न की। उसे कुछ अधिक समय तक विपत्ति की अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी। संत कवियों ने समाज में फैले हुए विभिन्न आम्बरों, रूढ़ियों, अद्य विश्वासों आदि का पर्दाफाश किया और जनता के सच्चे एवं अच्छे मार्ग की ओर अग्रसर किया।

ज्ञानाश्रयी शाखा या संत काव्यधारा में निम्नलिखित विशेषताएँ या प्रवित्तियों को देख सकते हैं–

1. निजी धार्मिक सिद्धांतों का अभाव
2. आचार पक्ष की प्रधानता
3. गुरु के प्रति श्रद्धा
4. निम्न जाति के कवि
5. सामाजिक कुरीतियों का विरोध
6. शिक्षा की कमी
7. काव्य रूप
8. भाषा

6.5. निर्गुण का अर्थ : निर्गुण काव्यधारा में ज्ञानामार्गी धारा

संत कवितयों ने निर्गुण साधना को अपनाया। अवतारवाद की बात इन कवियों ने नहीं की। लगभग सब संत अपढ़ थे परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे। प्राय: सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है। इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत कवियों के नाम है–नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

क्योंकि निर्गुण साधना का आलंबन निराकार है। फलस्वरूप वह जन साधारण के लिए सहज ग्राह्य नहीं हो पाती। बहुत से लोगों का मानना है कि निर्गुण ब्रह्मज्ञान का विषय तो हो सकता है किंतु भक्ति साधना का नहीं, क्योंकि साधना तो किसी साकार मूर्त और विशिष्ट के प्रति ही उन्मुख हो सकती है। सामान्य जनता का विश्वास और आचरण भी इसी तर्क की पुष्टि करता दिखाई देता है। ब्रह्म के दो रूप विद्यमान हैं–

सगुण और निर्गुण। सगुण रूप की अपेक्षा निर्गुण रूप दुर्लभ है, सगुण भगवान सुगम है–

सगुण रूप सुलभ अति,
निर्गुण जानि नहीं कोई,
सगुम अगम नाना चरित्र,
सुनि-सुनि मन भ्रम होई।

संत मत के अनुसार, आत्मा-परमात्मा का अंश है। ज्ञान पूर्ण भक्ति को कबीर दास, सत्यपुरुष, अलख निरंजन, स्वामी और शून्य आदि से पुकारते हैं। निर्गुण की उपासना मिथ्याडंबर का विरोध, गुरु की महत्ता, जाति-पांति के भेदभाव का विरोध, वैयक्तिक साधना पर जोर, रहस्यवादी प्रवृत्ति, साधारण धर्म प्रतिपादन, विरह की मार्मिकता, नारी के प्रति दोहरा दृष्टिकोण, भजन नामस्मरण, संतप्त, उपेक्षित, उत्पीड़ित मानव को परिज्ञान प्रदान करना आदि संत काव्य के मुख्य प्रयोगजन हैं।

संत शाखा के (आराध्य) 'राम' तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इसलाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों लेकिन समस्त जीवों और जगत में भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं।

नोट

संत शाखा की साधना 'मानने से नहीं', 'जानने' से आरंभ होती है। कबीर जैसे संत किसी के शिष्य नहीं, रामानन्द जैसे गुरु द्वारा चेताये हुए चेला हैं। उनके लिए राम रूप नहीं है, दशरथी राम नहीं, उनके राम तो नाम साधना के प्रतीक है। उनके राम किसी सम्प्रदाय, जाति या देश की सीमाओं में कैद नहीं है। प्रकृति के कण-कण में, अंग-अंग में रमण करने पर भी जिसे अनंग स्पर्श नहीं कर सकता, वे अलख, अविनाशी, परम तत्व ही राम है। उनके राम मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भेद-भाव के कारक नहीं है। वे तो प्रेम तत्व के प्रतीक हैं।

6.6. निर्गुण भक्ति सहित की वैचारिक पृष्ठभूमि

संत काव्य का वैचारिक आधार है शंकराचार्य एवं उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन, नाथपंथ, सूफी, धर्म एवं इस्लाम। उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म, जीव, जगत एवं माया के स्वरूप को संत कवियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया। संतों का साधना पक्ष और भक्ति भावना शंकर के अद्वैत दर्शन की देन है। दोनों ही जीव को विशुद्ध ब्रह्म मानते हैं तथा जो भिन्नता दिखाई पड़ती है वह माया के कारण है। आत्मा की सर्वरूपता, सर्वशक्तिमत्ता भी अद्वैत दर्शन के अनुरूप है। नाथ पंथियों से उन्होंने शून्यवाद, योगसाधना, गुरु की प्रतिष्ठा का तत्व लिया। इस्लाम के प्रभाव से उन्होंने एकेश्वरवाद ग्रहण किया, मूर्जिपूजा का खण्डन किया और अवतारवाद का विरोध किया।

6.7. प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान

1. **कबीरन–**'बीजक' नाम से उनकी रचनाओं का संकलन धर्मदास द्वारा किया गया है। जिसके तीन भाग हैं–साखी, सबद, रमैनी। कबीर का जन्म 1398 ई. और मृत्यु 1518 ई. में हुई। कबीर जाति के जुलाहे थे, काशी में रहते थे तथा रामानंद उनके गुरु थे। कबीर की पत्नी का नाम लोई, पुत्र का नाम कमाल एवं पुत्री का नाम कमाली था। उनकी कविता में उपदेशों की प्रवृत्ति है, रहस्यवादी भावना है तथा प्रतीकों का प्रयोग उनकी भाषा में है।

   कबीर निरक्षर थे। स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है–

   मसि कागद छूयौ नहीं कलम गह्यौ नहिं हाथ।

   उनकी रचनाओं का संकलन बाद में उनके शिष्यों ने किया। 'कबीर बीजक' में तो उनकी रचनाएँ संकलित हैं ही इसके अतिरिक्त बाबू श्यामसुंदर दास ने उनकी रचनाओं का संकलन 'कबीर ग्रंथावली' में किया है। उन्होंने मूर्ति पूजा, माला, तिलक, छापा, तीर्थाटन, गंगास्नान, रोजा, हिंसा, जाति प्रथा, ऊँच-नीच की भावना आदि का खंडन किया। यथा–

   1. *माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।*
      कर का मनका डारि के मन का मनका फेर।।
   2. *ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।*
      सुबरन कलश सुरा भरा साधू निन्दत सोय।।
   3. *पाहन पूजै हरि मिलैं तौ मैं पूजूँ पहार।*
      घर की चाकी क्यों नहिं पूजैं पीसि खाय संसार।।

नोट

हिंदुओं और मुसलमानों को फटकारते हुए कहा–

1. *अरे इन दोउन राह न पाई*
   हिंदू अपनी करैं बड़ाई गागर छुअन न देंई।
   वेश्या के पायन तर सोवैं यह देखौ हिंदुआई।।
   मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी-मुर्गा खाई।
   खालाकेरी बेटी ब्याहैं घर ही में करैं सगाई।।

वे शास्त्र पर नहीं आँखों देखी बात पर यकीन करते हैं–

तू कहता है कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।
मैं कहता सुरझावन हारी तू राखा उरझोय रे।।

गुरु की महत्ता पर उन्होंने सर्वाधिक बल दिया है। इसके अतिरिक्त नैतिकता, सदाचार, परोपकार, क्षमा, सत्य भाषण, संतोष आदि को उन्होंने श्रेष्ठ मानव के लिए आवश्यकता माना है।

कबीर ने जीवन को ब्रह्म का अंश माना है माया के कारण अपने स्वरूप को भूला हुआ है। माया के नष्ट होते ही जीवात्मा एपं परमात्मा का मिलन हो जाता है–

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कथेहु गियानी।

यहाँ घड़ा माया का प्रतीक है जो घड़े के जल (जीवात्मा) को बाहर के जल (परमात्मा) से अलग किए हुए है। जैसे ही घड़ज्ञ (माया) फूटता है दोनों जल मिलकर एक हो जाते हैं। वे कहते हैं कि सतगुरु ही व्यक्ति को माया के बंधन से छुड़ाता है तथा ईश्वर का साक्षात्कार कराता है। कबीर ने गुरु महिमा का पाठ नाथ पंथियों से सीखा है।

सतगुरु की महिमा अनत अनत किया उपगार।
लोचल अनत उघाड़िया अनत दिखावणहार।।

कबीर के काव्य में हठयोग साधना एवं कुंडलिनी योग का जो विवरण मिलाता है उसका संबंध भी नाथपंथ से है। पारिभाषिक शब्दावली उन्होंने नाथपंत से ग्रहण की है। कुंडलिनी साधना वाले उनके पदों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साधानात्मक रहस्यवाद माना है। ऐसा एक पद उद्धत है–

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीजै।।

कुंडलिनी मूलाधार चक्र में सुशुप्तावस्था में रहती है। योगी साधना द्वारा इसे जाग्रत करता है और यह षट चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार चक्र में पहुँचती है जहाँ ब्रह्मरंध से झरने वाले अमृत रस का पान करती है।

कबीर का रहस्यवाद भावात्मक कोटि का भी है। जहाँ जीवात्म का उस निर्गुण परमात्मा से भावात्मक संबंध जोड़ती हुई विरह, मिलन, जिज्ञासा, की अनुभूति करती है वहाँ भावात्मक रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। कबीर ने जीवात्मा को प्रेयसी एवं परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित करते हुए उनके विरह एवं मिलन के चित्र प्रस्तुत किए हैं–

कै विरहिन कूं मीचु दै कै आपा दिखलाया।
रात दिना का दाक्षणा मो पै सह्य न जाय।।

मिलन की अनुभूति का वर्णन कबीर ने विवाह के सांग-रूपक द्वारा इस पद में किया है–

दुलिहिति गावंहु मंगलचार।
मोरे घर आए हो राजा राम भरतार।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ पंचतत्त बाराती।

रामदेव मोरे पाहुने आए, मैं जोवन मैमाती।
सरीर सरोवर वेदी करिहूँ ब्रह्मा वेद उचारि।।
रामदेव संग भांवरि लैहो धनि-धनि हमार।।
सुरर तैंतीसूं कौतिग आए मुनिवर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरिस एक अविनासी।

नोट

भावात्मक रहस्यवाद को उद्घाटित करने वाले पदों में कबीर ने शृंगार रस की योजना की है। कबीर भले ही पढ़े-लिखे नहीं हों पर उनका काव्य काव्यगत रमणीयता से रहित नहीं है। अलंकार, प्रतीक, भाषा आदि सभी दृष्टियों से वह उच्चकोटि का काव्य है।

कबीर के काव्य में 'प्रतीको' का भी भरपूर प्रयोग है। उनकी उलटबांसियाँ सिद्धों से प्रभावित हैं जो विपरीत कथन के कारण लोगों को चमत्कृत करती हैं–

समुंदर लागी आग नदियाँ जलि कोइला भई।
देख कबीरा जाग मंछी रुखा चढ़ि गई।

यहाँ समुद्र-मूलाधार चक्र का प्रतीक है, नदियाँ चित्रवृत्तियों का प्रतीक हैं तथा 'मछली' कुंडलिनी के लिए प्रयुक्त हैं। निम्न पद में भी प्रतीकों का प्रयोग उन्होंने किया है–

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।
तेरे ही नाल सरोवर पानी।।
जल में उतपति जल में वास जल में नलिनी तोर निवांस
ना तल तपति न ऊपर आगि तोर हेतु कहु कासनि लाग।
कहैं कबीर जे उदिक समान ते नहिं मुए हमारेहि जान।।

इन पद मे 'कमलिनी' जीवात्मा का तथा 'जल' परमात्मा का प्रतीक है। जीव एवं ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन इसमें अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से कबीर ने किया है।

कबीर के काव्य में रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अनेक अलंकार प्रचुरता से उपलब्ध हो जाते हैं। वस्तुत: काव्य रचना करना उनका लक्ष्य नहीं था। कविता तो उनके लिए साधन थी जिसके माध्यम से वे अपनी बात जनता तक पहुँचाना चाहते थे। कबीर भले ही आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व पैदा हुए हों, किंतु उनकी शिक्षाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं।

2. **रामानंद**–जन्म 1368 ई. तथा मृत्यु 1468 ई.। कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, शिक्षा काशी में हुई। भक्तमाला के अनुसार, रामानंद के बाहर शिष्य थे; जिनके नाम हैं–अनन्तानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद, नरर्हानंद, भावानंद, पीपा, कबीर, सेन, धन्ना, रैदास, सुरसरी और पद्मावती। **रामानंद के शिष्यों में कबीर, पीपा, अनंतदास, धन्ना प्रसिद्ध हैं। इनके गुरु का नाम राघवानंद था। इन्होंने रामावत-संप्रदाय का प्रवर्तन किया।** तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, वेदादि का विरोध करते हैं उन्होंने अंत:साधना पर बल दिया। **रामानंद के गुरु राघवानंद जी ने 'सिधांत पंत्र मात्रा'** नामक ग्रंथ की रचना की।

3. **रैदास**–(1398-1448) जाति के चमार थे, काशी के निवासी थे। जन्मकाल के संबंध में निश्चयपूर्वक कहना संभव नहीं है। कुछ विद्वान इन्हें प्रसिद्ध कवयित्री मारा का गुरु भी बताते हैं। रैदास का एक अन्य नाम रविदास भी है। संतबानी सीरीज के अंतर्गत इनकी रचनाओं का संकलन **'रविदास की बानी'** शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनके लिखे हुए 40 पद गुरु ग्रंथ साहब में भी संकलित हैं। रैदास का नाम रामानंद के 12 शिष्यों में हैं, किंतु रैदास की रचनाओं में कहीं भी रामानंद का उल्लेख नहीं है। निर्गुण ब्रह्म उनके लिए भी जिज्ञासा का विषय है। उनकी भाषा सरल ब्रजभाषा है जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली, उर्दू-फारसी के शब्द भी मिल जाते हैं। उनकी कविता का एक नमूना प्रस्तुत है।

अब कैसे छूटे राम नाम रट लागी।
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी जाकी अंग-अंग वास समानी।
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भगति करै रैदासा।।

नोट

4. **गुरु नानक–(1398-1448 ई.)** सिख संप्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। उनका जन्म 1469 ई. में तलवंडी में हुआ था जो अब ननकाना साहब के नाम से जाना जाता है। नानक के पद गुरु ग्रंथ साहब में संकलित हैं। **जपुजी, असा दीवार, रहिरास, सोहिला** उनकी रचनाओं के नाम हैं।

   नानकदवे समन्वयशील एवं उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थें उनके पिता का नाम **कालूचंद** और माता का नाम तृप्ता था। इनके दो पुत्र भी हुए–**लक्ष्मीचंद्र, श्रीचंद।** वे भ्रमणशील संत थे। निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति भावना उनके काव्य में विद्यमान है। **शांत रस की प्रधानता नानक की रचनाओं में है। उनकी भाषा पंजाबी एवं ब्रजभाषा मिश्रित है।** उनके पद राग-रागिनियों में निबद्ध हैं जिनमें करुण, शांत एवं श्रृंगार रस भी दिखाई पड़ता है।

5. **हरिदास निरंजनी–**ये निरंजनी संप्रदाय के कवि थे। इस संप्रदाय को नाभ पंथ एवं संत काव्य के बीच की बड़ी माना जा सकता है। इनके लिखे ग्रंथ हैं–अष्टपदी, जोगग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजाजोग ग्रंथ, समाधिजोग ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ। इन्होंने ब्रजभाषा में काव्य की रचना की है।

6. **दादूदयाल–**(1544-1603) उन्होंने दादू पंथ का प्रर्वतन किया। वे एक धर्म सुधारक एवं समाज सुधारक के रूप में प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि थे। इनके पंथ को **परब्रह्म संप्रदाय** भी कहा जाता है। **रज्जब, सुंदरदास, प्रागदास, जनगोपाल** इनके प्रमुख शिष्य थे। उनकी रचनाओं का संकलन **'हरडेवाणी'** नाम से उनके शिष्यों–**संतदास** एवं **जगन्नाथ दास** ने प्रस्तुत किया है। **परशुराम चतुर्वेदी** द्वारा संपादित **दादूदयाल** में भी, उनकी प्रमाणिक रचनाएँ संकलित हैं।

7. **मलूकदास–**इनका समय (1574-1682) मुगल काल में है। इनके लिखे ग्रंथों के नाम हैं–**ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, सुखसागर, भक्तवच्छावली, बारहखड़ी, स्फुटपद, राम अवतार लीला, ब्रजलीला** तथा **ध्रुवचरित।** आलसियों को **महामंत्र** इन्हीं का रचा हुआ है–

   "अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
   दास मूलका कह गए सबके दाता राम।"

8. **सुंदरदास–**(1596-1689) ये दादूदयाल के शिष्य थे और प्रतिभाशाली कवि थे। इनके लिखे ग्रंथों में **ज्ञानसमुद्र** और **सुंदरविलास** प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं का संकलन **सुंदर ग्रंथावली** (दो भाग) में पुरोहित **हरिनारायण शर्मा** ने कियाहै। **सुंदरदास श्रृंगार** रस के परम विरोधी थे। **केशव** की **रसिकप्रिया** और **नन्ददास** की **रसमंजरी** की निंदा उन्होंने अपने एक छंद में की है। उनकी रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। उक्त प्रमुख कवियों के अतिरिक्त **लाल पंथ** के प्रवर्तक **लालदास** (1540-1648 ई.) बाबालाली संप्रदाय के प्रवर्तक बाबालाल (1590-1655 ई.), **संत रज्जब** (1567-1689 ई.), **बाबरी पंथ की बाबरी साहिबा** (1542-1605 ई.), **संत सदना, संत पीपा, संत सेन, संत धन्ना** (1415 ई.) भी संत कवितयों में गिन जाते हैं। पंजाब में कुछ सिक्ख गुरुओं ने भी संत काव्य की रचना की है। इनमें प्रमुख हैं–गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव। गुरु अंगद ने नानक की रचनाओं का संकलन किया और ब्रजभाषा मिश्रित पंजाबी में सरस गेय पदों की रचना की। गुरु अर्जुन देव (1563-1606 ई.) एक अच्छे कवि थे। गुरु ग्रंथ साहिब में उनके 6,000 पद संकलित हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं–**सुखमनी**, **बावनअखरी** और **बारहमासा**।

9. **शेख फरीद**–(1472–1552 ई.) भी पंजाब के संत कवितयों में उल्लेखनीय हैं। आदि ग्रंथ में इनके चार पर संकलित हैं। **संत वीरमान** की उपदेशपरक, रचनाएँ **'बानी'** शीर्षक से संकलित की गई हैं। अक्षर अनन्य ने योग और वेदांत पर कई ग्रंथ लिखे तथा **दुर्गासप्तशती** का अनुवाद हिंदी पद्यों में किया।

नोट

6.8. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

1. संत काव्य भाव प्रधान है, कला प्रधान नहीं। वह ताजमहल की कुशल कारीगरी न होकर रम्य पर्वत श्रेणियों की भाँति सहज सुंदर है।
2. कविता करना इनका लक्ष्य न था। कविता तो इनके उपदेशों का साधन मात्र थी।
3. संत कवियों में प्रमुख कबीर भक्त और कवि बाद में हैं, समाज सुधारक पहले हैं।
4. संत कवि निर्गुणोपासक थे। वे ईश्वर को निगुर्ण, निराकार, अजन्मा, अविनाशी एवं सर्वव्यापी मानते हैं। कभी-कभी वे इस निर्गुण को राम, गोविंद, हरि आदि नामों से भी पुकारते हैं।
5. संत काव्य में ज्ञान की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। यह ज्ञान वेद-पुराणों या कुरान से नहीं, अपितु चित्त की निर्मला एवं हृदय की पावनता से प्राप्त किया जाता है। ज्ञान दशा में ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। विवेकयुक्त ज्ञान दृष्टि ही व्यक्ति को अज्ञान, अंधविश्वास एवं पाखंड से मुक्त करती है। ज्ञान की अग्नि जब माया के जल में लगती है तो विषय-वासना का कीचड़ नष्ट हो जाता है।

   प्रभुजी तुम चंदन हम पानी जाकी अंग-अंग वास समानी।
   प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।।

6. संत काव्य में **गुरु की महत्ता** का प्रतिपादन करते हुए उसे ईश्वर से भी बड़ा दर्जा दिया गया है। गुरु ही ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है, वही ज्ञान-नेत्र खोलता है। **'गुरुदेव कौ अंग'** शीर्षक से संकलित साखियों में कबीर ने गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है। गुरु की प्रतिष्ठा इन्होंने नाथ पंथ से ग्रहण की।
7. संत काव्य में **अद्वैतवादी दर्शन** को स्थान मिला है। इनकी दार्शनिक मान्यताएँ शंकर के अद्वैत दर्शन से प्रभावित हैं। ब्रह्म और जीवन की एकता का प्रतिपादन, माया के अस्तित्व को स्वीकार करना, ईश्वर को निर्गुण-निराकार बताना, आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता का प्रतिपादन–सब कुछ शंकर के अद्वैत दर्शन के अनुरूप है।
8. संत काव्य में **रहस्यवाद** की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। दांपत्य प्रतीकों के माध्यम से इन्होंने निर्गुण ब्रह्म के साथ माधुर्य भाव की भक्ति का समावेश करते हुए **भावात्मक रहस्यवाद** का विधान किया। कबीर का पद **'दुलहिनि गावहु मंगलचार'** इसी प्रकार का भावात्मक रहस्यवादी पद है। दूसरी ओर, कुंडलिनी योग से संबंधित पदों में उन्होंने **साधनात्मक रहस्यवाद** का विधान किया है। **'अवधू गगन मंडल घर कीजै'** पद में साधनात्मक रहस्यवाद की प्रवृत्ति है।
9. संत कवियों ने **बाह्याडंबरों** का खंडन किया। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, व्रत, रोजा, नमाज में इन्हें कोई विश्वास न था। हिंदू-मुसलमानों दोनों को इन्होंने अंधविश्वासों, रूढ़ियों, धर्मान्धता के लिए फटकारा। वे धर्म के सामान्य तत्वों–सत्य, अहिंसा प्रेम, करुणा, संयम, सदाचार को मानव के लिए आवश्यक मानते हैं।
10. संत कवित जाति प्रथा के विरोधी थे। ऊँच-नीच, छुआछूत एवं वर्णाश्रम व्यवस्था को अभिशाप मानकर इन्होंने निर्भीकता से इनका खंडन किया ब्राह्मण वर्ग इनके आक्रोश का शिकार बना। अधिकांश संत कवि स्वंय निम्न वर्ग से संबंधित थे अत: उच्च वर्ग की मुखर आलोचना संत काव्य में अस्वाभाविक न थी।

नोट

11. संत काव्य में शास्त्र का विरोध करते हुए स्वानुभूति पर बल दिया गया है। उनकी उक्ति में खरापन एवं निर्भीकता है जिसे जनता ने पसंद किया। उनके कथन अनुभूति प्रधान हैं। उनमें शास्त्रों की व्यर्थता प्रतिपादित की गई है।
12. संत कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण असंतुलित एवं अतिवादी है। वे नारी को नरक का द्वार एवं माया का प्रतिरूप बताते हैं। नारी निंदा करते हुए वे उसे 'विष का बेल' तक कह देते हैं। नारी के प्रति उनका यह दृष्टिकोण भी नाथपंथियों का प्रभाव है।
13. संत काव्य की **भाषा अपरिष्कृत** है। साहित्यिक भाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा का प्रयोग वे अपने वाक्य में करते थे। देशाटन के कारण उनकी भाषा में अनेक बोलियों एवं भाषाओं का मिश्रण दिखाई पड़ता है। ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी, फारसी, अरबी शब्दों के मिले-जुले रूप के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी भाषा को **सुधक्कड़ी भाषा** या **पंचमेल खिचड़ी भाषा** कहा है। अनगढ़ भाषा होने पर भी उनकी भाषा भाव संप्रेषण में पूर्ण सफल है। उसकी शक्ति एवं सामार्थ्य के कारण **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर को वाणी का डिक्टेटर तक कह दिया है।**
14. **संत काव्य में अलंकारों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए न होकर भावों के उत्कर्ष के लिए हुआ है।** वस्तुत: वे पिंगल शास्त्र के क ख ग से भी परिचित न थे। अत: काव्य में अलंकारों का समावेश कर सकने की शक्ति एवं सामर्थ्य उनमें थी ही नहीं। यह बात अलग है कि उनका काव्य अलंकार विहीन नहीं है। उसमें अनायास ही उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास का समावेश हो गया है।
15. संत काव्य में शांत रस की प्रधानता है। **शृंगार रस** का पूर्ण परिपाक भी उसमें हुआ है। कबीर की उलटबांसियों में **अद्‌भुत रस** भी है।

6.9. सारांश (Summary)

- ज्ञानाश्रयी शाखा की संत काव्यधारा में रामानंद का नाम सर्वोपरि है।
- भक्तिकाल में काव्य की दो प्रधान धाराएँ प्रचलित हुई–निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा।
- निर्गुण काव्यधारा की भी दो शाखाएँ है–ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा।
- संत कवियों ने निर्गुण साधना को अपनाया।
- उनकी भाषा को 'सुधक्कड़ी' कहा गया है।

6.10. शब्दकोश (Keywords)

1. **उत्तेजना**–बढ़ावा
2. **अथाह**–बहुत गहरा

6.11. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. निर्गुण काव्य की विशेषताएँ लिखिए।
2. निर्गुण का क्या अर्थ है? निर्गुण काव्यधारा में ज्ञानामार्गी धारा की विवेचना करें।
3. सधुक्कड़ी किसे कहते हैं?
4. निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा के प्रमुख कवियों के नाम लिखें।
5. निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि तथा प्रमुख संत कवि और उनके योगदान का उल्लेख कीजिए।
6. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं? वर्णन कीजिए।

6.12. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी

ईकाई-3 रीतिकालीन साहित्य

7. रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि और आधार

नोट

रूपरेखा

7.1 उद्देश्य (Objectives)

7.2 प्रस्तावना (Introduction)

7.3 रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि और आधार

7.1.1 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

7.1.2 दरबारी संस्कृति

7.1.3 लक्षण ग्रंथों की परंपरा

7.4 सारांश (Summary)

7.5 शब्दकोश (Keywords)

7.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

7.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

7.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ जानने में।
- रीतिकाल में लक्षण ग्रंथों की परंपरा समझने में।
- रीतिकाल में दरबारी संस्कृति का वर्णन करने में।

7.2. प्रस्तावना (Introduction)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सम्वत् 1700 वि. से 1900 वि. (1643-1843 ई.) तक के कालखंड को **रीतिकाल** की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार इस काल में 'रीति तत्व' की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए इसका नामकरण रीतिकाल किया गया है। इस काल के अधिकांश कवियों ने आचार्यत्व का निर्वाह करते हुए लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रीति ग्रंथों की रचना की जिनमें अलंकार, रस, नायिका भेद, आदि काव्यांगों का विस्तृत विवेचन किया गया। अपनी काव्य प्रतिभा दिखाने के लिए इन कवियों के लिए लक्षण ग्रंथ लिखना अनिवार्य था। काव्यांग चर्चा में ये गौरव का अनुभव करते थे तथा इस युग में इस बात पर विवाद होते थे कि इस पंक्ति में कौन-सा अलंकार, शब्द-शक्ति, रस या ध्वनि है। काव्यांगों के लक्षण एवं स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत करने वाले रीति ग्रंथों की प्रचुरता के कारण ही इस काल में रीति तत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है और इसी कारण इस काल का नाम **रीतिकाल** रखा गया है।

यद्यपि भक्तिकाल में कुछ कवियों ने रीति ग्रंथ लिखे हैं। यथा–सूरदास कृत **साहित्य लहरी** में तथा नंददास कृत **'रस मंजरी'** में रीति निरूपण किया गया है तथापि रीतिकाल में सैकड़ों कवियों ने लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रीति ग्रंथ लिखे। मतिराम, चिंतामणि, भूषण, ग्वाल, पद्माकर, देव, भिखारीदास, प्रतापसाहि जैसे कवियों ने रीति ग्रंथ लिखकर युगीन प्रवृत्ति का परिचय दिया।

7.3. रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि और आधार

नोट

रीतिकाल के लिए जो अन्य नाम दिए गए उनमें प्रमुख हैं–**अलंकृतकाल, शृंगारकाल, कलाकाल, उत्तर मध्यकाल**। मिश्र बंधुओं ने इस काल में अलंकरण की प्रवृत्ति को परिलक्षित कर इसे **'अलंकृतकाल'** कहा है। कुछ अन्य आलोचकों ने इस काल की कविता में कलापक्ष की प्रधानता को देखकर इसे **'कला काल'** कहना उचित माना है जबकि आचार्य **विश्वनाथ प्रसाद मिश्र** ने इस काल में शृंगार रस की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए इसका नाम **शृंगारकाल** रखा है। उक्त सभी नामों में रीतिकाल नाम अधिक उपयुक्त है, क्योंकि रीति ग्रंथों की प्रचुरता से रचना इस काल में हुई है, अत: यह नामकरण प्रवृत्तिमूलक है तथा सबकों स्वीकार भी है। मध्यकाल के पूर्व भाग को 'भक्तिकाल' तथा उत्तर भाग को 'रीतिकाल' कहा गया है। इस आधार पर यदि कोई रीतिकाल को **उत्तर मध्यकाल** कहना चाहे तो असंगत नहीं है।

संस्कृत में 'रीति' शब्द का प्रयोग आचार्य वामन ने एक विशेष संप्रदाय 'रीति संप्रदाय' का प्रवर्तन करते हुए किया। उनके अनुसार, **''विशिष्ट पद रचना रीति:''** अर्थात् विशेष प्रकार की पद रचना रीति है। 'विशेषों गुणात्मा' कहकर उन्होंने विशेषत्व को स्पष्ट किया अर्थात् वाक्य में विशिष्टता का समावेश गुणों से होता है। ओज, प्रसाद, माधुर्य, कांति, आदि काव्य के गुण बताए गए है। रीति का अर्थ शैली, पद्धति एवं मार्ग भी है।

हिंदी में रीति शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं हुआ। यहाँ **रीति ग्रंथ का तात्पर्य काव्यांग निरूपण करने वाले लक्षण ग्रंथों से लिया गया है।** जिन ग्रंथों में अलंकार, रस, ध्वनि, शब्द, शक्ति, नायिका भेद, आदि काव्य तत्वों का निरूपण लक्षण, उदाहरण शैली में किया गया उन्हें रीति ग्रंथ कहा गया। इन रीति ग्रंथों को **लक्षण ग्रंथ** भी कहा गया।

रीतिकाल के लक्षण ग्रंथकारों ने अपने रीति ग्रंथों की रचना प्राय: काव्य शिक्षा देने के उद्देश्य से तथा अपनी काव्य प्रतिभा एवं पांडित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से की है। अधिकांश लक्षण ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी पर लिखे गए। इनमें से कुछ तो निश्चय ही प्रतिभाशाली आचार्य कवि थे, किंतु लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रचना करने वाले रीतिकाल के सैकड़ों कवि वस्तुत: आचार्य कोटि में नहीं आते, वे कवि ही हैं। आचार्यत्व के लिए जिस प्रतिभा, सूक्ष्म विश्लेषण एवं विवेचन शक्ति की आवश्यकता होती है उसका नितांत अभाव इन कवि आचार्यों में था। इसीलिए उनके द्वारा निरूपित काव्यांगों के लक्षण अधूरे, अधकचरे एवं अपरिपक्व ज्ञान पर आधारित थे परिणामत: वे कहीं गलत हो गए हैं तो कहीं अस्पष्ट एवं भ्रामक हैं। इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल इन्हें आचार्य कोटि में न मानकर कवि ही मानते हैं।

7.1.1 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रीतिकालीन काव्य में पाई जाने वाली प्रवृत्तियाँ उपर्युक्त परिस्थतियों से पूर्ण सामंजस्य रखती हैं। इस काव्य की रचना सामंती छत्रछाया में हुई, अत: उसमें वे सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो दरबारी काव्य में होनी चाहिए। रीतिकाल का कवि जनता का कवि न होकर 'राजदरबार' का कवि था, अत: उसके काव्य में अलंकरण की प्रधानता, चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति एवं शृंगारिकता का सहजपुट आना स्वाभाविक ही था। उसका संपूर्ण काव्य नारी के चारों ओर केंद्रित है और उसमें रसिकता की प्रधानता है। सामान्य रूप में रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. **रीति निरूपण**–रीतिकालीन कवियों की प्रधान प्रवृत्ति है–'रीति निरूपण' अर्थात् लक्षण ग्रंथों की रचना करना। इस प्रवृत्ति को प्रधान मानकर ही आचार्य शुक्ल ने इस काल का नाम रीतिकाल रखा है। संस्कृत काव्यशास्त्र को हिंदी में रूपांतरित करने का काम रीतिकालीन आचार्यों द्वारा किया गया है। विभिन्न काव्यांगों के लक्षण एवं उदाहरण देते हुए अनेक कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना की। सामान्य पाठकों को काव्यशास्त्र की जानकारी कराना तथा काव्यशास्त्र की मर्मज्ञता का प्रदर्शन करना ही इन ग्रंथों के रचयिताओं का उद्देश्य रहा है। **केशव** की **'कविप्रिया', चिंतामणि** की **'कविकुल कल्पतरु', 'शृंगार मंजरी', मतिराम** की **'ललित ललाम' गोप** की **'रामचंद्राभरण', भूषण** की **'शिवराजभूषण', 'देव'**

नोट

की **'रस विलास'**, आदि ऐसी ही रीति निरूपक रचनाएँ हैं। इन कवियों ने संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों को आधार बनाकर अपने लक्षण ग्रंथों की रचना की है, किंतु संस्कृत काव्यशास्त्र में जो सूक्ष्म चिंतन एवं विश्लेषण है, उसका यहाँ नितांत अभाव है। रीतिकालीन आचार्यों द्वारा काव्यशास्त्र के क्षेत्र में कोई मौलिक उपलब्धि प्राप्त नहीं की जा सकी। यही नहीं अपितु कहीं-कहीं इनके द्वारा प्रस्तुत किए गए लक्षण भ्रम मूलक हैं। इन्हीं सब कारणों से **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने इन रीति ग्रंथकारों को आचार्य न मानकर कवि ही माना है। इनके अनुसार, ''हिंदी में लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रचना करने वाले सैकड़ों कवि हुए हैं, वे आचार्य कोटि में नहीं आ सकते।''

2. **शृंगारिकता**–रीतिकालीन कवियों के काव्य का केंद्र बिंदु है–शृंगार। इस काव्य में नखशिख के द्वारा नायिका के रूप-सौंदर्य की झाँकी प्रस्तुत की गई है तथा राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का विविध प्रकार से चित्रण किया गया है, जिसमें भक्ति भावना का लेश भी नहीं है। नायिका-भेद के अंतर्गत भी शृंगार ही प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है। रीतिकालीन दरबारी परिवेश एवं कामुक मनोवृत्ति के कारण शृंगार एवं उससे संबंधित विषय ही इन कवियों को विशेष प्रिय रहे हैं। इनकी शृंगारिकता में रूप लिप्सा, भोगेच्छा, विलासिता एवं शरीर सुख की कामना ही दिखाई पड़ती है। रीतिकालीन लक्षण ग्रंथकारों ने शृंगार रस वर्णन में ही अपनी रुचि अधिक दिखाई है। काव्यशास्त्र की परंपरा में बंधे हुए लक्षण ग्रंथों में शृंगार के विभिन्न भेद-उपभेद, हाव-भाव, नायिका भेद, आदि का विशद निरूपण किया गया है। **डॉ. नगेंद्र** ने रीतिकालीन काव्य में शृंगार की प्रधानता को लक्ष्य कर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा है–

''सांचा चाहे जैसा भी रहा हो, इसमें ढली शृंगारिकता ही।''

शृंगार रस के दोनों पक्षों–संयोग और वियोग का चित्रण रीतिकालीन काव्य में किया गया है। संयोग चित्रण में कहीं-कहीं अश्लीलता का समावेश भी हो गया है, विशेष रूप से उन स्थलों पर जहाँ सूरत वर्णन या विपरीत रति का वर्णन किया गया है। वियोग-वर्णन के अंतर्गत रीतिमुक्त स्वच्छंद कवियों ने हृदय की आकुलता एवं विकलता का मार्मिक एवं अनुभूतिपरक चित्रण किया है, जबकि बिहारी ने विरह ताप एवं विरहजन्य कृशता का ऊहात्मक वर्णन किया है, जो कहीं-कहीं मजाक की हद तक पहुँच गया है। प्रेम के उदात्त पक्ष का चित्रण रीतिकाल के बहुत कम कवि ही कर सके हैं। रीतिकालीन कवियों की शृंगारिकता के संबंध में **डॉ. भगीरथ मिश्र** का यह मत समीचीन प्रतीत होता है–''शृंगारिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण मुख्यत: भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे नहीं जा सके। प्रेम का अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या, आदि उदात्त पक्ष भी उनकी दृष्टि में बहुत आए हैं।'' वियोग वर्णन में इन कवियों ने शास्त्रीय कामदशाओं का निरूपण किया है। स्मृति, गुण, कथन, प्रलाप, आदि के द्वारा अपनी मनोदशा का चित्रण तत्कालीन नायिकाएँ करती दिखाई गई हैं। रीतिकालीन शृंगार में रूपलिप्सा, प्रेमजन्य विलासिता, शारीरिक सुख की कामना, भोगेच्छा एवं नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण जैसी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

3. **अलंकारिकता**–दरबारी काव्य होने के कारण रीतिकालीन काव्य में अलंकरण की प्रधानता है। कविगण कविता-सुंदरी को अलंकारों से सुसज्जित करने में अपने कवि कर्म की सार्थकता समझते थे। विलासी दरबारी-मनोवृत्ति के कारण भी कवियों को काव्य में सहजता के स्थान पर कृत्रिम अलंकारिकता का समावेश करना पड़ा। अलंकारों के प्रति इनका मोह अति प्रबल था। वे प्रयत्नपूर्वक काव्य में अलंकारों को समाविष्ट करते थे और इस प्रकार अपनी बुद्धि का लोहा मनमाने को विवश करते थे। वस्तुत: वे **'केशव'** की इस उक्ति के पक्षधर थे–

''जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त।।''

नोट

'अलंकारों' के बिना कविता-सुंदरी सुशोभित नहीं होती, भले ही वह अन्य गुणों से युक्त क्यों न हो। अपनी इस मान्यता के अनुरूप उन्होंने अपने काव्य में अलंकरों का समावेश किया। अलंकार के पीछे दौड़ने के कारण अधिकांश स्थलों पर 'काव्य' विकृत हो गया है, क्योंकि वहाँ अनुभूति प्रमुख न होकर अलंकार का चमत्कार ही प्रमुख है। 'केशव' में ऐसे प्रसंग संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक हैं। अलंकारिक के चमत्कार के मोह में काव्यत्व की हानि हो गई है। रीतिकालीन कवियों ने सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। सादृश्यमूलक, विरोधमूलक, संभावनामूलक, चमत्कारमूलक एवं अतिशयमूलक अलंकार इस काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। संभावनामूलक उत्प्रेक्षा अलंकार की प्रचुरता होने के कारण रीतिकाव्य में कल्पना की ऊँची उड़ान और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित हुई है। बिहारी के काव्य में एक ओर तो उत्प्रेक्षा का सौंदर्य विद्यमान है तो दूसरी ओर यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे शाब्दिक चमत्कार की सृष्टि करते हुए अलंकार प्रयोग की कुशलता का परिचय दिया गया है। **बिहारी** की उत्प्रेक्षाएँ बड़ी सटीक एवं मनोहारी बन पड़ी हैं, यथा–

सोहत ओढ़ैं पीत पट स्याम सलोने गात।
मनौं नीलमनि सैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात।।

रीतिकालीन कवि के लिए अलंकारशास्त्र की जानकारी एक अपरिहार्य आवश्यकता थी। इस ज्ञान के बिना उसे सम्मान मिलना कठिन था, परिणामतः इस काल में अलंकारिकता खूब फली-फूली। अलंकार जो कविता का 'साधन' है, इस काल में आकर 'साध्य' बन गया। यहाँ तक कि कुछ कवियों ने तो केवल अलंकार की जानकारी को प्रदर्शित करने के लिए ही काव्य रचना की।

4. **आश्रयदाताओं की प्रशंसा**–रीतिकाल के अधिकांश कवि विभिन्न राजदरबारों के आश्रय में रहते थे। बिहारी, देव, भूषण, सूदन, केशव, मतिराम, आदि सभी प्रसिद्ध कवि राजदरबारों से वृत्ति प्राप्त करते थे, अतः यह स्वाभाविक था कि वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में काव्य रचना करते। 'देव' ने अपने आश्रयदाता भवानी सिंह के लिए 'भवानी-विलास' तथा कुशल सिंह के लिए 'कुशल विलास' की रचना की तो 'सूदन' ने भरतपुर के राजा सुजान सिंह की प्रशंसा में 'सुजान चरित' लिखा। वीर रस के प्रसिद्ध कवि 'भूषण' ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' तथा छत्रसाल बुंदेला की प्रशंसा में 'छत्रसाल दशक' की रचना की। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने भूषण की इन रचनाओं की प्रशंसा करते हुए लिखा है–''शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं हैं। इन वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिंदू जनता स्मरण करती है, उसी की व्यंजना भूषण ने की है।'' परंतु यदि भूषण जैसे कुछ कवियों को छोड़ दिया जाए, तो रीतिकाल के अधिकांश कवियों के द्वारा की गई आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण है। **'उमरदराज महाराज तेरी चाहिए'** की उद्‌घोषणा करने वाले इन दरबारी कवियों को अपनी जीविका के लिए दरबारों से वृत्ति मिलती थी, अतः आश्रयदाताओं का गुणगान करना इनकी विवशता थी। 'देव' जैसे प्रसिद्ध कवि को कई आश्रयदाता बदलने पड़े, किंतु उन्हें स्थायी आश्रय प्राप्त नहीं हुआ। कवियों को येन-केन-प्रकारेण अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए प्रयत्नशील रहना पड़ता था और कभी-कभी उनके प्रतिद्वंद्वी उन्हें दरबार से निलकालने में भी सफल हो जाते थे। राजनीतिक दांव-पेंच एवं जोड़-तोड़ में लगे रहने वाले इन दरबारी कवियों के काव्य में स्वतः स्फूर्त काव्य रचना की वह प्रवृति दिखाई नहीं पड़ती जो भक्तिकाल में थी।

5. **बहुज्ञता एवं चमत्कार प्रदर्शन**–रीतिकालीन काव्य में बहुज्ञता का प्रदर्शन करने के साथ-साथ चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। बिहारी जैसे कवियों के काव्य में ज्योतिष, आयुर्वेद, पुराण, गणित, नीतिशास्त्र काव्यशास्त्र, चित्रकला आदि अनेक विषयों की जानकारी समाविष्ट है। अपने दोहों में ज्योतिष की अनेक उक्तियों का समावेश कर उन्होंने यह सिद्ध

नोट

कर दिया कि इस विद्या में भी उनकी गहरी पैठ है। उदाहरण के लिए निम्न दोहे को लिया जा सकता है, जिसमें **राजयोग प्रकरण** का उल्लेख हैं–

''सनि कज्जल चख झख लगन उपज्यो सुदिन सनेह।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेस सब देह।।''

इसी प्रकार आयुर्वेद-ज्ञान का परिचय **'जरी विषमजुर ज्याइये आय सुदरसन देहु'** में दिया है।

रीतिकालीन कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए प्रायः यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे अलंकारों का सहारा लिया है। इनके काव्य में शब्दों की पच्चीकारी एवं कला की रमणीयता पर अधिक ध्यान दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि रीतिकाल में चमत्कार प्रदर्शन को ही वास्तविक कवि कर्म समझा जाने लगा था, यही कारण है कि भक्ति भावना विरूपक दोहों में भी बिहारी चमत्कार प्रदर्शन को तिलांजलि नहीं दे सके। उदाहरण के लिए बिहारी सतसई का मंगलाचरण विषयक पहला दोहा लिया जा सकता है–

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परै स्यामु हरित दुति होय।।

यहाँ राधा की वंदना उतनी प्रमुख नहीं है जितनी श्लेष के चमत्कार द्वारा तीन-तीन अर्थों की अभिव्यक्ति करना। झांई, स्यामु एवं हरित-दुति पद श्लिष्ट हैं। वर्ण्य विषय की मार्मिकता एवं भाव व्यंजना पर रीतिकालीन कवियों ने उतना ध्यान नहीं दिया, जितना शब्द सामर्थ्य के प्रदर्शन एवं अलंकारों की योजना पर दिया।

6. **भक्ति एवं नीति–**रीतिकाव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य तो श्रृंगार ही है, तथापि उसमें भक्ति एवं नीति संबंधी सैकड़ों सूक्तियाँ यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाती हैं। रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का गान करते हुए जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, उनमें श्रृंगारिकता के साथ-साथ भक्ति-भावना भी विद्यमान है। अधिकांश रीति कवियों ने अपने जीवन के संध्याकाल में भक्ति एवं वैराग्य से ओतप्रोत रचनाएँ लिखी हैं, ऐसा शायद उन्होंने अपने पाप बोध के कारण किया है। इस संबंध में **डॉ. नगेंद्र** की यह टिप्पणी अत्यंत सटीक हैं–''रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं है–हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करें अथवा सैद्धांतिक निषेध कर सकें।''

रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण के नाम को आधार बनाकर जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं उनमें भक्ति-भावना प्रमुख न होकर श्रृंगार-भावना ही प्रमुख है। वस्तुतः उनके हृदय में भक्तिकालीन कवियों की भाँति राधा-कृष्ण के प्रति श्रद्धा भाव नहीं था, क्योंकि वे सामान्य नायक-नायिका के रूप में प्रेम क्रीड़ाएँ करते हुए चित्रित किए गए हैं। उन्होंने अपनी भक्ति भावना के संबंध में स्पष्ट घोषणा करते हुए कहा है–

रीझिहैं सुकवि जो तौ जानौ कविताई।
न तौ राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।।

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि **बिहारी** की काव्य कृति **'बिहारी सतसई'** में लगभग 70 **दोहे भक्ति भावना** से संबंधित हैं। दरबारी वातावरण के प्रभाव से इन कवियों ने रीति संबंधी उक्तियों को भी काव्य निबद्ध किया है। बिहारी सतसई में **नीति संबंधी** अनेक दोहें उपलब्ध हैं। इसी प्रकार **घाघ, बेताल, वृंद, निरधरदास** ने नीति संबंधी काव्य की रचना की है। **वृंद सतसई** में नीति संबंधी सुंदर उक्तियों को काव्य रूप दिया गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

भले बुरे सब एक सम जौ लौं बोलत नाँहि।
जानि परत हैं काग पिक रितु वसंत के माँहि।।

नोट

7. **नारी के प्रति कामुक दृष्टिकोण**–रीतिकालीन काव्य का केंद्रबिंदु 'नारी चित्रण' रहा है। नायिका के नखशिख चित्रण में उन्होंने अधिक रुचि दिखाई है। नारी के ऐंद्रिक बाह्य रूप के निरूपण में ही उनकी वृत्ति अधिक रमी है, उसके आंतरिक गुणों का चित्रण उन्होंने नहीं किया। नारी के विभिन्न अंगों का स्थूल एवं मांसल चित्र अंकित करते हुए उन्होंने काव्य रसिकों को उसके मनमोहक स्वरूप से ही परिचित कराया। उनके समक्ष नारी का एक ही रूप था–विलासिनी प्रेमिका का, अत: वे इसके अन्य पक्षों की ओर से नितांत उदासीन रहे। नारी को वे भोगविलास का उपकरण मात्र समझते थे अत: उसके अन्य रूपों–गृहिणी, माता, भगिनी, देवी आदि का चित्रण उन्होंने नहीं किया। नारी के प्रति इस एकांगी दृष्टिकोण के कारण वे नारी-जीवन की सामाजिक महत्ता एवं उसकी श्रद्धा समन्वित गौरवमयी मूर्ति को दिखा सकने में सफल नहीं हुए।

   रीतिकालीन कवियों ने नारी को कामुक दृष्टि से देखा, इसलिए उनकी वृत्ति नायिका के अंग-प्रत्यंग की शोभा का निरूपण करने में, उसके हाव-भाव का चित्रण करने में और उसकी विलास चेष्टाओं का वर्णन करने में ही अधिक रमी। नारी के प्रति उनका संकुचित दृष्टिकोण तत्कालीन दरबारी वातावरण एवं परिवेश से अनुप्राणित था। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने रीतिकालीन नारी भावना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है–''यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संघटन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बंधन से यथासंभव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है।'' रीतिकालीन कवि नारी को पुरुष के आकर्षण का केंद्र एवं उसकी अंकशायिनी मात्र समझते थे। **देव कवि** की यह उक्ति इस धारणा के समर्थन उद्धृत की जा सकती है–

   कौन गनै पुर वन नगर कामिनी एकै रीति।
   देखत हरै विवेक कौं चित्त हरै करि प्रीति।।

   रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने नारी के प्रति इसी दृष्टिकोण पर बल देते हुए उसके रूप के प्रति तीव्र आसक्ति का परिचय दिया है।

8. **प्रकृति चित्रण**–रीति कवियों ने प्रकृति चित्रण प्राय: उद्दीपन एवं अलंकारिक रूप में किया है। प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण बहुत कम हुआ हैं नायक-नायिका की मानसिक दशा के अनुकूल प्रकृति भी संयोगकाल में सुखद एवं वियोगकाल में दुखद रूप में चित्रित की गई है। परंपरागत रूप में षड्ऋतु वर्णन एवं बारहमासे का चित्रण भी इन कवियों ने किया है, परंतु उसमें कोई नवीनता नहीं है। रीतिकालीन विलासी वातावरण में रमे हुए इन कवियों को इतना अवकाश ही कहाँ था, कि वे प्रकृति के मनोहर स्वरूप पर रीझकर काव्य रचना करते? **सेनापति** जैसे एक दो कवियों ने ही प्रकृति के मनोरम चित्र अंकित किए हैं अन्यथा बिहारी, देव, मतिराम, भिखारीदास, आदि कवियों के षड्ऋतु वर्णन में उद्दीपन रूप में ही प्रकृति चित्रण उपलबध होता है। **सेनापति को ऋतु वर्णन में अप्रतिम सफलता प्राप्त हुई है।** उन्होंने सभी ऋतुओं का सुंदर वर्णन किया है। **वर्षा काल** का एक चित्र द्रष्टव्य है–

   ''*सेनापति उनए नए जलद सावन के,*
   चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
   सोभा सरसाने न बखाने जात कैहूं भाँति।
   आने हैं पहार मानों काजर के ढोय कै।।''

नोट

रीतिकाल के एक अन्य कवि **पद्माकर** का **वसंत वर्णन** भी अत्यंत आकर्षण बन पड़ा है–

''द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में
देखी दीप दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में वेलिन में,
बनन में, बागन में बगर्‌यौ बसंत है।''

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति का निरूपण अप्रस्तुत विधान के रूप में भी किया है। उन्होंने प्रकृति से विभिन्न उपमान लेकर नायिका के अंग सौंदर्य का चित्रण किया है। कमल, चंद्रमा, हंस, कोकिल, चातक, मेघ, पर्वत, पुष्प, आदि इसी प्रकार के उपमान हैं।

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी के काव्य में भी प्रायः सभी ऋतुओं का वर्णन उपलब्ध होता है। निम्न दोहें में वासंती मकरंद से तृप्त भौंरों का अत्यंत मनोरम चित्र अंकित किया गया है–

छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गंध।
ठौर-ठौर झौंरत झपत भौंर-झौंर मधु अंध।

रीतिकाल में यद्यपि प्रकृति चित्रण का अभाव नहीं है तथापि प्रकृति के प्रति इनका दृष्टिकोण तटस्थ था। छायावादी कवियों ने जिस प्रकार प्रकृति को आलंबन बनाकर मनोहर काव्य की रचना की, वैसा रीतिकाल के कवि नहीं कर पाए।

9. **संकुचित जीवन दृष्टि**–रीतिकालीन कवियों की जीवन दृष्टि अत्यंत संकुचित दिखाई पड़ती है। किसी महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे काव्य रचना में प्रवृत्त नहीं हुए अपितु श्रृंगार-प्रधान काव्य लिखकर उन्होंने आश्रयदाता विलासी राजाओं का मनोरंजन मात्र किया। अधिकांश कवि नायिका के कटाक्ष कुशल नेत्रों, उन्नत उरोजों, रक्ताभा कपोलों, रससिक्त अधरों, पुष्ट जंघाओं और द्युतिमान अंगों के सौंदर्य का निरूपण करने में ही कवि कर्म की सार्थकता समझते रहे। जीवन के प्रति जिस व्यापक दृष्टिकोण की अपेक्षा उत्तम काव्य रचना के लिए की जाती है, उसका नितांत अभाव रीतिकालीन काव्य में है। इन कवियों ने जीवन के विविध पक्षों की ओर से अपनी दृष्टि हटाकर श्रृंगार के सीमित वृत्त में ही केंद्रित कर ली। **डॉ. भगीरथ मिश्र** ने रीतिकालीन कवियों की इस प्रवृत्ति पर विचार करते हुए कहा है–''ऐसा लगता है कि रीति कविता के रचयिता यौवन और वसंत के कवि हैं। जीवन का फूलता हुआ सुधार रूप ही उन्हें प्रिय है। .....उसने जीवन का एक-ही स्वरूप लिया, एक ही पक्ष लिया, यह इस धारा के कवि की संकीर्णता है, दुर्बलता है और एकांगिता है।''

   दरबारी वातावरण एवं विलासितापूर्ण जीवन ने इन कवियों की दृष्टि को इतना संकुचित बना दिया था कि वे जीवन और जगत की व्यापकता पर दृष्टिपात भी न कर सके। भक्तिकालीन काव्य जहाँ महान संदेश का वाहक है, वहीं रीतिकालीन काव्य से ऐसा कोई संदेश प्राप्त नहीं होता। गंभीर चिंतन एवं व्यापक जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति का कोई प्रयास रीतिकालीन कवि ने नहीं किया। उसकी आधार भूमि इतनी संकुचित है कि जीवन की अनेकरूपता के लिए वहाँ स्थान ही नहीं है।

10. **मुक्तक काव्य की रचना**–रीतिकालीन में यद्यपि कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गए हैं, तथापि रीति कवियों ने मुक्तक काव्य की रचना की ओर ही अपनी रुचि प्रदर्शित की है। जब राजदरबारों में कवि दंगलों का आयोजन किया जाता हो और दूसरे से बाजी मार लेने की प्रतिस्पर्द्धा चल रही हो वहाँ प्रबंध रचना की प्रवृत्ति पनप ही नहीं सकती। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** का मत है–''यदि प्रबंध काव्य विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता। इसी से वह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है।'' अलंकारिकता, चमत्कारप्रियता एवं बहुज्ञता का प्रदर्शन करने हेतु भी मुक्तक रचना की प्रवृत्ति का विकास

रीतिकाल में हुआ। तत्कालीन दरबारी वातावरण के लिए मुक्तक रचनाएँ ही अधिक उपयुक्त थीं, क्योंकि राजा-महाराजाओं के पास इतना अवकाश कहाँ था कि वे प्रबंध काव्य को सुनकर उसकी सराहना करते। कविगण तो एक ही दोहे या छंद में अपनी काव्य प्रतिभा का पूर्ण उत्कर्ष दिखाकर राजा-महाराजा को चमत्कृत करने में विश्वास करते थे। बिहारी जैसे रससिद्ध कवियों ने दोहे जैसे छोटे छंद में ही रस की अपूर्व सृष्टि की है।

नोट

11. **ब्रजभाषा का प्रयोग**–भक्तिकाल में जो ब्रजभाषा कृष्ण काव्य तक सीमित रही, वह रीतिकाल में आकर पूर्णत: काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई और लगभग दो सौ वर्षों तक हिंदी काव्य जगत पर एकछत्र शासन करती रही। रीतिकाल में केवल ब्रज क्षेत्र के कवियों ने ही नहीं अपितु संपूर्ण हिंदी क्षेत्र के कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। मराठी क्षेत्र भूषण ने, पंजाब में गुरु गोविंद सिंह ने, बुंदेली क्षेत्र (ओरछा) में केशव ने तथा राजस्थानी क्षेत्र (आमेर) में बिहारी ने ब्रजभाषा में ही अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। निष्कर्ष यह कि रीतिकाल तक आते-आते ब्रजभाषा व्यापक काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी। रीतिकालीन ब्रजभाषा अपने शब्द सौष्ठव, आनुप्रासिकता, मधुरता एवं पदलालित्य के कारण काव्य भाषा के लिए पूर्ण उपयुक्त बन चुकी थी, किंतु उसमें कवियों ने मनमानी तोड़-मरोड़ भी की। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने रीतिकालीन ब्रजभाषा के इस दोष की ओर संकेत करते हुए हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है–''रीतिकाल में एक बड़े अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी। ... यदि शब्दों के रूप स्थिर हो जाते और शुद्ध रूपों के प्रयोग पर जोर दिया जाता, तो शब्दों को तोड़-मरोड़कर विकृत करने का साहस कवियों को न होता, पर इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं हुई, जिससे भाषा में बहुत कुछ गड़बड़ी बनी रही।''

रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा में अवधी शब्दों एवं रूपों का इच्छानुसार प्रयोग किया है। बिहारी की भाषा में 'कीन', 'दीन' जैसे क्रिया रूप इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। इस काल की ब्रजभाषा में फारसी शब्दों का प्रयोग भी बढ़ चला था। रीतिकालीन ब्रजभाषा में फारसी शब्दों के प्रयोगाधिक्य पर टिप्पणी करते हुए **शुक्ल जी** लिखते हैं–''राजा-महाराजाओं के दरबार में विदेशी शिष्टता और सभ्यता के व्यवहार का अनुकरण हो रहा था और फारसी के लच्छेदार शब्द वहाँ चारों ओर सुनाई देने लगे। अत: भाट या कवि लोग 'आयुष्मान' और 'जय जयकार' ही तक अपने को कैसे रख सकते थे? वे भी दरबार में 'उमरदराज महाराज तेरी चाहिए' पुकारने लगे।''

रीतिमुक्त कवियों की भाषा में लाक्षणिकता का सौंदर्य भी विद्यमान है। लक्षणा और व्यंजना का सहारा लेते हुए घनानंद जैसे कवि ने काव्य भाषा की शक्ति का परिचय दिया है। **आचार्य शुक्ल** ने घनानंद की काव्य भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है–''घनानंद जी उन बिरले कवियों में हैं, जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिंदी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षण एवं व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।''

निष्कर्ष यह कि रीतिकालीन ब्रजभाषा में एक ओर तो माधुर्य एवं नाद सौंदर्य विद्यमान है तो दूसरी ओर उसमें आनुप्रासिकता एवं लाक्षणिकता होने से उसका सौंदर्य द्विगुणित हो गया है। इन कवियों की भाषा सामर्थ्य भी अपूर्व ही कही जा सकती है।

रीतिकालीन कवियों ने कवित्त, सवैया, दोहे अधिक लिखे हैं जो उनके वर्ण्य विषय के लिए पूर्णत: उपयुक्त छंद थे। इन कवियों ने एक ओर तो लक्षण ग्रंथ लिखकर हिंदी काव्य-रसिकों को काव्यशास्त्र से परिचित कराया तो दूसरी ओर शृंगार प्रधान रचनाएँ लिखकर काव्य में माधुर्य का समावेश किया। **'बिहारी सतसई' रीतिकाल की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जा सकती है,**

जो अपनी काव्य कला, भाषा सामर्थ्य एवं आलंकारिकता के कारण एवं अद्वितीय कृति बन पड़ी है। बिहारी, देव, सेनापति, घनानंद, केशव, भिखारीदास, पद्माकर जैसे सशक्त कवियों की रचनाओं से संपन्न रीतिकाल निश्चित रूप से हिंदी साहितय की एक महत्त्वपूर्ण काल है।

नोट

7.1.2 दरबारी संस्कृति

रीतिकाल मुगलों की सत्ता के चरम वैभव का काल है। मुगल साम्राज्य का चरम उत्कर्ष, उत्तरोत्तर ह्रास और फिर पतन भी इसी काल में हुआ। शाहजहाँ के शासनकाल में रीति युग का प्रारंभ हुआ। राजदरबारों में वैभव, भव्यता एवं अलंकरण की प्रधानता थी। राजा और सामंत अपने दरबारों में गुणीजनों, कवियों, कलाकरों को प्रश्रय देते थे। शासकों में आत्म प्रशंसा का मोह एवं श्रृंगारिक मनोरंजन की चाह थी। ताजमहल एवं मयूर सिंहासन जैसी भव्य कृतियों का निर्माण हो चुका था। उत्तर भारत के अधिकांश राजपूत राजाओं एवं सामंतों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मुगलों का शासन दक्षिण में अहमद नगर, बीजापुर एवं गोलकुंडा तक फैल गया था। शाहजहाँ के उपरांत औरंगजेब मुगल शासक बना जो अपनी धर्मांधता एवं कट्टरता के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसका व्यक्तित्व रागात्मक तत्वों से रहित था और साहित्य, संगीत, कला के प्रति उसे कोई रुचि नहीं थी। औरंगजेब ने अपने जीवनकाल में अनेक युद्ध किए तथा राज्य का विस्तार भी किया, किंतु उसके बाद मुगल सत्ता का पतन प्रारंभ हो गया। औरंगजेब के उत्तराधिकारी विलासी, अयोग्य एवं असमर्थ शासक सिद्ध हुए। अनेक प्रदेशों में राजा एवं सामंतों ने अपनी स्वतंत्र सत्ताएँ स्थापित कर लीं, दक्षिण में मराठे स्वतंत्र हो गए। नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण क्रमशः 1739 एवं 1757 ई. में हुए जिससे मुगल साम्राज्य की कमर टूट गई। कालांतर में अंग्रेजों ने बक्सर की लड़ाई में शाहआलम को पराजित कर मुगल साम्राज्य को अपनी कठपुतली बना लिया। जहाँदरशाह, मुहम्मदशाह रंगीले जैसे विलासी एवं कमजोर शासकों के राज्य में **'गिद्धों के नीड़ों में उल्लू रहने लगे और बुलबुलों का स्थान कागों ने ले लिया।''** वेश्याओं, तबलचियों एवं सारंगी वादकों का राज्य कार्य में दखल होने लगा और शासन व्यवस्था निरंतर कमजोर होती गई।

7.1.3 लक्षण ग्रंथों की परंपरा

रीतिकाल के कुछ प्रमुख लक्षण ग्रंथकार और उनके ग्रंथ इस प्रकार है–

1. **चिंतामणि**–काव्य विवेक, कविकुल कल्पतरु श्रृंगार
2. **मतिराम**–रसराज, अलंकार पंचाशिका, ललित ललाम, वृत्त कौमुदी, सतसई।
3. **भूषण**–शिवराज भूषण, अलंकार प्रकाश, छंदोहृदय प्रकाश, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक।
4. **जसवंत सिंह**–भाषा भूषण, आनंद विलास, सिद्धांत बोध, अनुभव प्रकाश।
5. **कुलपति सिंह**–रस रहस्य, नशशिख, दुर्गा भक्ति तरंगिणी।
6. **मंडन**–रस रत्नावली, रस विलास, नैन पचासा, काव्य रत्न।
7. **देव**–भाव विलास, भवानी विलास, रस विलास, काव्य रसायन।
8. **पद्माकर**–जगत विनोद, पद्माभरण, प्रतापसिंह विरुदावली, प्रबोध पचासा, गंगा लहरी।
9. **गोप**–रामचंद्राभरण, रामचंद्र भूषण, रामालंकार।
10. **ग्वाल कवि**–नखशिख, अलंकार भ्रम भंजन, रस रूप कवि दर्पण।
11. **भिखारीदास**–काव्य निर्णय, श्रृंगार निर्णय ,रस सारांश, छंदार्णव पिंगल, छंद प्रकाश।
12. **रसलीन**–अंगदर्पण, रस प्रबोध।
13. **सोमनाथ**–रस पीयूष निधि, श्रृंगार विलास, प्रेम पचीसी।
14. **दूलह**–कवि कुल कंठाभरण।

15. **हठी जी**–श्री राधा सुधा शतक।
16. **प्रताप साहि**–व्यंग्यार्थ कौमुदी, शृंगार मंजरी, शृंगार शिरोमणि, अलंकार चिंतामणि, काव्य विनोद।
17. **द्विजदेव**–शृंगार लतिका, शृंगार बत्तीसी, कवि कल्पद्रुम।

नोट

रीतिकाल के कवियों ने आचार्य बनने का प्रयास अवश्य किया पर उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। शृंगार वर्णन में इन कवियों की वृत्ति अधिक रमी है। राधा-कृष्ण के नाम पर शृंगार के जो चित्र इन कवियों ने अंकित किए है, उनमें भक्ति भावना का लेश भी नहीं है। रीतिकालीन काव्य में कलापक्ष की प्रधानता और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

7.4. सारांश (Summary)

- रीतिकाल के लक्षण ग्रंथकारों ने अपने रीति ग्रंथों की रचना प्रायः काव्य शिक्षा देने के उद्देश्य से तथा अपनी काव्य प्रतिभा एवं पांडित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से की है। अधिकांश लक्षण ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी पर लिखे गए।
- रीतिकालीन ब्रजभाषा में एक ओर तो माधुर्य एवं नाद सौंदर्य विद्यमान है तो दूसरी ओर उसमें आनुप्रासिकता एवं लाक्षणिकता होने से उसका सौंदर्य द्विगुणित हो गया है। इन कवियों की भाषा सामर्थ्य भी अपूर्व ही कही जा सकती है।
- रीतिकाल के कवियों ने आचार्य बनने का प्रयास अवश्य किया पर उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। शृंगार वर्णन में इन कवियों की वृत्ति अधिक रमी है। राधा-कृष्ण के नाम पर शृंगार के जो चित्र इन कवियों ने अंकित किए है, उनमें भक्ति भावना का लेश भी नहीं है। रीतिकालीन काव्य में कलापक्ष की प्रधानता और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

7.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **मनमोहक**–दिल को लुभाने वाला
2. **कट्टरता**–किसी परंपरा या धर्म का कठोरता से पालन करना।

7.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।
2. लक्षण ग्रंथों की परंपरा तथा दरबारी संस्कृति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. प्रमुख लक्षण ग्रंथ एवं उनके रचनाकारों का उल्लेख करें।
4. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. संस्कृत काव्यशास्त्र को हिंदी में रूपांतरित करने का काम ..... आचार्यों द्वारा किया गया है।
   2. रीतिकालीन कवि के लिए अलंकारशास्त्र की जानकारी एक ..... आवश्यकता थी।
   3. ..... और ..... की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता।
   4. ..... कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए प्रायः यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे अलंकारों का सहारा लिया है।

नोट

5. बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. वृंद सतसई में नीति संबंधी सुंदर उक्तियों को ..... रूप दिया गया है।
   (क) शृंगार (ख) नया
   (ग) काव्य (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
2. रीतिकालीन कवि ..... को पुरुष के आकर्षण का केंद्र एवं उनकी अंकशायिनी मात्र समझते थे।
   (क) धन (ख) सोना
   (ग) हीरे (घ) नारी
3. छायावादी कवियों ने जिस प्रकार ..... को आलंबन बनाकर मनोहर काव्य की रचना की, वैसा रीतिकाल के कवि नहीं कर पाएं।
   (क) प्रकृति (ख) धरती
   (ग) आकाश (घ) पक्षिया

6. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. शृंगार वर्णन में रीतिकालीन कवियों की वृत्ति अधिक रमी है।
2. कालांतर में अंग्रेजों ने बक्सर की लड़ाई में शाहआलम को पराजित कर मुगल साम्राज्य को अपनी कठपुतली बना लिया।
3. शासकों में आत्मप्रशंसा का मोह एवं शृंगारिक मनोरंजन की चाह नहीं थी।

7.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी

8. रीतिकालीन कविता की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ-रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त

नोट

रूपरेखा

8.1 उद्देश्य (Objectives)
8.2 प्रस्तावना (Introduction)
8.3 रीतिकाल की विविध काव्यधाराएँ
  8.1.1 रीतिबद्ध काव्य
  8.1.2 रीतिसिद्ध काव्य
  8.1.3 रीतिमुक्त काव्य
8.4 सारांश (Summary)
8.5 शब्दकोश (Keywords)
8.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
8.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

8.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रीतिकाल की विविध काव्य धाराएँ जानने में।
- रीतिबद्ध कवियों का उद्देश्य जानने में।
- रीतिसिद्ध काव्य तथा रीतिमुक्त काव्य धाराएँ समझने में।

8.2. प्रस्तावना (Introduction)

रीतिकाल काव्य की विविध काव्य धाराएँ हैं, इनको मूलत: तीन वर्गों में विभक्त किया है। यह तीन धाराएँ हैं–रीतिबद्ध काव्य, रीतिसिद्ध काव्य, रीतिमुक्त काव्य। रीतिकाल के कवि जिन्होंने लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर काव्यांगों का लक्षण एवं उदाहरण देते हुए रीति ग्रंथों की रचना की। रीतिसिद्ध कवियों के वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं–बिहारी। बिहारी ने यद्यपि कोई रीतिग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्होंने अपनी एकमात्र रचना 'सतसई' में रीति की जानकारी का पूरा-पूरा उपयोग किया है। रीतिकाल के वे कवि जो रीति के बंधन से पूर्णत: मुक्त हैं–रीतिमुक्त कवि कहे जाते हैं।

8.3. रीतिकाल की विविध काव्यधाराएँ

रीतिकालीन काव्य को मूलत: तीन वर्गों में विभक्त किया गया है जिन्हें रीतिकाल की धाराएँ भी कहा जा सकता है। ये तीन धाराएँ हैं–

1. रीतिबद्ध काव्य
2. रीतिसिद्ध काव्य
3. रीतिमुक्त काव्य

यहाँ इन तीनों का परिचय देना आवश्यक है–

नोट

8.1.1 रीतिबद्ध काव्य

रीतिकाल के वे कवि जिन्होंने लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर काव्यांगों का लक्षण एवं उदाहरण देते हुए रीति ग्रंथों की रचना की, रीतिबद्ध कवि कहलाए। राजाश्रय में रहकर रचना करने वाले ऐसे सैकड़ों कवि रीतिकाल में हुए जिन्होंने आचार्य बनने के लिए लक्षण ग्रंथों की रचना की, भले ही उनका रीति निरूपण एकांगी, अधकचरा एवं अधूरा ही क्यों न रहा हो। इसीलिए ऐसे कवियों के रीति ग्रंथों पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है–''इन रीति ग्रंथों के कर्ता भावुक सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना।''

रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय देना था अतः वे लक्षणों पर उतना ध्यान नहीं देते जितना उदाहरणों पर। यही कारण है कि इनके द्वारा किए गए काव्यांगों के लक्षण अपर्याप्त एवं असंगत हैं।

ऐसे प्रमुख कवि एवं उनके ग्रंथों के नाम हैं–**चिंतामणि** (काव्य विवेक), **मतिराम** (ललित ललाम, अलंकार पंचाशिका), **भूषण** (शिवराज भूषण), **देव** (भाव-विलास, काव्य रसायन), **भिखारीदास** (काव्य निर्णय), **पद्माकर** (जगद्विनोद), आदि।

इन सभी कवियों के द्वारा किया गया रीति निरूपण एकांगी, अधूरा एवं अपरिपक्व है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन कवियों के आचार्यत्व पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–''हिंदी में लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रचना करने वाले जो सैकड़ों कवि हुए वे आचार्य कोटि में नहीं आ सकते। वे वास्तव में कवि ही थे।''

वस्तुतः इन कवियों ने सामान्य पाठकों को काव्यशास्त्र का सामान्य ज्ञान कराने के उद्देश्य से रीति ग्रंथ लिखे जिनमें मौलिकता का नितांत अभाव है, क्योंकि ये सारे ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र को उपजीव्य बनाकर लिखे गए। न तो इन्होंने कोई मौलिक उद्भावना की और न इनसे काव्यशास्त्र का कोई उल्लेखनीय विकास हुआ। शृंगार रस निरूपक कवियों में मतिराम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शृंगार रस का विस्तृत विवेचन एवं उसके विभिन्न अंगोपांगों का वर्णन इन्होंने किया है।

हिंदी रीति ग्रंथों में अलंकार विवेचन को सर्वाधिक स्थान मिला। अधिकांश कवियों ने अलंकार निरूपक ग्रंथ संस्कृत **आचार्य जयदेव** के **'चंद्रालोक'** और **अप्पय दीक्षित** के **'कुवलयानंद'** का आधार ग्रहण कर लिखे। इनके द्वारा दिए गए लक्षण भले ही भ्रामक हों, किंतु उदाहरण अत्यंत सरस बन पड़े हैं। कुछ कवियों ने छंद एवं नायिका भेद का विवेचन भी रीति ग्रंथों में किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी में काव्य शास्त्र का द्वार खोलने का श्रेय इन रीति ग्रंथकारों को अवश्य दिया जा सकता है काव्य रसिकों को काव्यांगों की जानकारी प्रदान कर उन्होंने काव्य के प्रति लोगों के रुझान को बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

8.1.2 रीतिसिद्ध काव्य

रीतिसिद्ध कवियों के वर्ग में उन कवियों को लिया जा सकता है जिन्होंने यद्यपि कोई रीति ग्रंथ नहीं लिखा, तथापि रीति की उन्हें जानकारी थी जिसका उपयोग करते हुए उन्होंने अपने काव्य ग्रंथों की रचना की। ये 'रीति' में पारंगत या सिद्ध कवि थे, इसीलिए इन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा गया। इस वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं–बिहारी।

बिहारी ने यद्यपि कोई रीतिग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्होंने अपनी एकमात्र रचना 'सतसई' में रीति का जानकारी का पूरा-पूरा उपयोग किया है। जब तक किसी को काव्यांगों की तथा नायिक भेद, आदि की जानकारी नहीं होगी। तब तक वह बिहारी सतसई के दोहों का अर्थ नहीं कर पाएगा। उदाहरण के लिए निम्न दोहे को ले सकते हैं–

कत लपटैयतु मो गेर सोनजुही निसि सैन।
जिहि चंपक बरनी किए मुल्लाला रंग नैन।।

इस दोहे का अर्थ तब तक समझ में नहीं आ सकता जब तक व्यक्ति को 'खंडिता' नायिका की जानकारी न हो। खंडिता नायिका उस नायिका को कहा जा सकता है जिसका पति किसी अन्य स्त्री के साथ रात बिताकर प्रातः काल रमण के चिह्नों से युक्त होकर घर पहुँचता है और अपनी करनी को छिपाने का प्रयास करता है। ऐसी ही खंडिता का यह कथन अपने पति से है–''आपके द्वारा मेरे गले से क्यों लिपटा जा रहा है? मैं वह नहीं हूँ जो रात्रि को शयन करते समय आपके साथ थी और जिस चंपकवर्णी ने आपको रात भर जगाकर आपके नेत्रों को मुल्लाला के फूल की भाँति लाल कर दिया है।''

इस दोहे में मुद्रा अलंकार का प्रयोग भी किया गया है, क्योंकि उपर्युक्त अर्थ के साथ-साथ इसमें विभिन्न पुष्पों के नाम भी दिए गए हैं।

हाव-अनुभाव योजना की दृष्टि से भी बिहारी सतसई एक उल्लेखनीय कृति है। भाषा की समास शक्ति एवं कल्पना की समाहार शक्ति के बल पर ही बिहारी दोहे जैसे छोटे छंद में इतने भावों का समावेश कर सके हैं। इसीलिए उनके विषय में कहा गया है कि **उन्होंने गागर में सागर भर दिया है।** भक्ति, नीति, प्रकृति, आदि का चित्रण भी बिहारी सतसई में प्रचुरता से हुआ है। मूलतः बिहारी सतसई शृंगार रस का ग्रंथ है। नायक-नायिका किस प्रकार गुरुजनों से भरे सभा भवन में नेत्रों के माध्यम से वार्तालाप कर लेते हैं इसका चित्रण उन्होंने निम्न दोहे में किया है–

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु ही सब बात।।

8.1.3 रीतिमुक्त काव्य

रीतिकाल के वे कवि जो रीति के बंधन से पूर्णतः मुक्त हैं–रीतिमुक्त कवि कहे जाते हैं। इन्होंने न तो लक्षण ग्रंथ लिखे और न रीति की जानकारी का उपयोग अपने काव्य में किया, अपितु इन कवियों ने हृदय की स्वतंत्र वृत्तियों को काव्य निबद्ध किया। रीति के बंधन से मुक्त होने के कारण ही इन्हें रीतिमुक्त कवि कहा गया। इन कवियों में प्रमुख हैं–घनानंद, बोधा, आलम और ठाकुर।

रीतिमुक्त कवियों को पुनः अनेक वर्गों में विभक्त किया गया है। यथा–

1. रीतिमुक्त शृंगारी कवि
2. रीतिमुक्त प्रबंधकार
3. रीतिमुक्त सूक्तिकार
4. रीतिमुक्त पद्यकार
5. रीतिमुक्त फुटकल कवि

रीतिमुक्त शृंगारी कवियों में स्वच्छंद प्रेम का चित्रण करने वाले कवि घनानंद, बोधा, आलम और ठाकुर के नाम लिए जा सकते हैं। रीतिमुक्त प्रबंधकारों में लाल कवि (छत्र प्रकाश), सूदन (सुजान चरित), सबलसिंह चौहान (महाभारत) को रखा जाता है जबकि रीतिमुक्त सूक्तिकारों में वृंद, गिरधरदास, घाघ, बेताल जैसे कवि हैं।

रीतिमुक्त कवियों में सर्वप्रमुख हैं घनानंद। इनके काव्य में प्रेम का अत्यंत एवं उदात्त एवं वासना रहित स्वरूप उपलब्ध होता है। सुजान प्रेमी घनानंद ने प्रेममार्ग की सरलता एवं अकृत्रिमता का उल्लेख करते हुए लिखा है–

अति सूधो सनेह को मारग है जहं नेकु सयानप बांक नहीं।
तहाँ साचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकैं कपटी जे निसांक नहीं।।
घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तैं दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

प्रणय विभोर मन की ऐसी कोई वृत्ति नहीं है जिसका चित्रण घनानंद ने न किया हो। इनके प्रेम चित्रण में विरह की प्रधानता परिलक्षित होती है। उनकी विरह वेदना स्वानुभूत एवं अकृत्रिम है इसीलिए वह

अत्यंत मार्मिक, हृदयद्रावक एवं चित्ताकर्षक बन पड़ी है। रीतिमुक्त धारा के ये कवि प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। इनका सौंदर्य चित्रण स्थूल एवं मांसल न होकर सूक्ष्म एवं चित्ताकर्षक है। यथा–

लट लोल कपोल कलोल करै कलकंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग-अंग तरंग उठै द्युति की परिहै मनौ रूपु अबै धरि च्वै।।

नोट

प्रेम निरूपण में रीतिकाल के अन्य कवियों ने जहाँ शास्त्रीय परंपरा का आधार ग्रहण किया वहीं इन्होंने शास्त्रीय परंपरा का त्याग किया। इनके काव्य में प्रकृति की ही मनोहारी छटा अंकित की गई है। प्रकृति चित्रण प्राय: उद्दीपन रूप में हुआ है, यथा–

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अबही करेजो किन कोरि लै।

रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की अधिक रही है। लाक्षणिक ब्रजभाषा का प्रयोग इनके काव्य में हुआ है जिसमें भाव व्यंजना की अपूर्ण क्षमता है। निश्चय ही रीतिमुक्त कवियों के प्रदेय ने हिंदी साहित्य की पर्याप्त श्री वृद्धि की है।

8.4. सारांश (Summary)

- हिंदी में काव्य शास्त्र का द्वार खोलने का श्रेय इन रीति ग्रंथकारों को अवश्य दिया जा सकता है काव्य रसिकों को काव्यांगों की जानकारी प्रदान कर उन्होंने काव्य के प्रति लोगों के रुझान को बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।
- हाव-अनुभाव योजना की दृष्टि से भी बिहारी सतसई एक उल्लेखनीय कृति है। भाषा की समास शक्ति एवं कल्पना की समाहार शक्ति के बल पर ही बिहारी दोहे जैसे छोटे छंद में इतने भावों का समावेश कर सके हैं। इसीलिए उनके विषय में कहा गया है कि **उन्होंने गागर में सागर भर दिया है।** भक्ति, नीति, प्रकृति, आदि का चित्रण भी बिहारी सतसई में प्रचुरता से हुआ है। मूलत: बिहारी सतसई शृंगार रस का ग्रंथ है।
- रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की अधिक रही है। लाक्षणिक ब्रजभाषा का प्रयोग इनके काव्य में हुआ है जिसमें भाव व्यंजना की अपूर्ण क्षमता है। निश्चय ही रीतिमुक्त कवियों के प्रदेय ने हिंदी साहित्य की पर्याप्त श्री वृद्धि की है।

8.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **महत्त्वपूर्ण**–उपयोगी, विशेष
2. **वार्तालाप**–बातचीत करना
3. **प्रकृति**–स्वभाव, गुण, प्रकार

8.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. रीतिबद्ध काव्य का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. रीतिबद्ध काव्य रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त काव्य से किस प्रकार भिन्न है? उल्लेख कीजिए।
3. रीतिमुक्त काव्य तथा इसके प्रमुख कवियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. रीतिबद्ध काव्य तथा रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य क्या था? वर्णन कीजिए।
5. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. रीतिकालीन काव्य की तीन धाराएँ हैं– रीतिबद्ध काव्य, ... और रीतिमुक्त काव्य।

2. रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य अपनी ..... का परिचय देना था।
3. कुछ कवियों ने छंद एवं नायिका भेद का विवेचन भी ..... में किया है।

6. बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. ..... कवियों के वर्ग में उन कवियों को लिया जा सकता है जिन्होंने यद्यपि कोई रीति ग्रंथ नहीं लिखा।

   (क) रीतिबद्ध (ख) रीतिसिद्ध

   (ग) रीतिमुक्त (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

2. बिहारी किस वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं?

   (क) रीतिमुक्त (ख) रीतिसिद्ध

   (ग) रीतिमुक्त काव्य (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

3. किसके विषय में कहा गया है कि उन्होंने गागर में सागर भर दिया?

   (क) लाल कवि (ख) सूदन

   (ग) सबलसिंह चौहान (घ) बिहारी

7. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. रीति के बंधन से मुक्त होने के कारण ही रीतिकाल के कवियों को सिद्ध कवि कहा गया है।
2. रीतिमुक्त कवियों में प्रमुख हैं बोधा।
3. रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की अधिक रही है।

8.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी

नोट

ईकाई-4 आधुनिक साहित्य

9. आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि

नोट

रूपरेखा

9.1 उद्देश्य (Objectives)
9.2 प्रस्तावना (Introduction)
9.3 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि
9.4 सारांश (Summary)
9.5 शब्दकोश (Keywords)
9.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
9.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

9.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आधुनिक काल के गद्य साहित्य को जानने में।
- नामकरण एवं समय सीमा जानने में।
- हिंदी गद्य का उद्‌भव और विकास समझने में।

9.2. प्रस्तावना (Introduction)

गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ। आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बांग्ला उपन्यासों को दिया जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल का नाम गद्य काल इसलिए रखा, क्योंकि इस काल में गद्य की प्रधानता परिलक्षित हो रही है तथापि गद्यकाल कहने से इस काल का प्रचुर परिमाण में लिखा गया पद्य साहित्य उपेक्षित-सा हो जाता है, इस काल को आधुनिक काल कहना अधिक उपयुक्त है। इस नामकरण में गद्य और पद्य दोनों प्रवृत्तियों का समावेश तो हो ही जाता है, साथ ही यह नाम यह भी बताता है कि इस काल की प्रवृत्तियाँ पुरानी परंपरा से हटकर नवीन एवं आधुनिक हो गई हैं। निश्चय ही आधुनिक युगबोध ने साहित्य को दरबारी परिवेश से बाहर निकालकर जन-जीवन के निकट ला दिया है। गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

9.3. आधुनिक काल की पृष्ठभूमि

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास के चतुर्थ काल खंड को गद्य की प्रमुखता के कारण गद्यकाल नाम दिया है और इसकी समय सीमा संवत् 1900 वि. से 1980 वि. अर्थात् सन् 1843 ई. से 1923 ई. स्वीकार की है। आधुनिक काल के लिए जो विभिन्न नाम दिए गए हैं वे इस प्रकार हैं–

1 गद्य काल – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2 वर्तमान काल – मिश्रबंधु
3 आधुनिक काल – डॉ. रामकुमार वर्मा
4 आधुनिक काल – डॉ. गणपति चंद्रगुप्त

नोट

आचार्य शुक्ल ने इस काल का नाम गद्यकाल इसलिए रखा, क्योंकि इस काल में गद्य की प्रधानता परिलक्षित हो रही है तथापि गद्यकाल कहने से इस काल का प्रचुर परिमाण में लिखा गया पद्य साहित्य उपेक्षित-सा हो जाता है, अत: इस काल को आधुनिक काल कहना अधिक उपयुक्त है। इस नामकरण में गद्य और पद्य दोनों प्रवृत्तियों का समावेश तो हो ही जाता है, साथ ही यह नाम यह भी बताता है कि इस काल की प्रवृत्तियाँ पुरानी परंपरा से हटकर नवीन एवं आधुनिक हो गई हैं। निश्चय ही आधुनिक युगबोध ने साहित्य को दरबारी परिवेश से बाहर निकालकर जनजीवन के निकट ला दिया है। गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है कि बल्लभाचार्य जी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने श्रृंगार रस मंडन नामक एक ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य में लिखा था जिसकी भाषा अपरिमार्जित एवं अव्यवस्थित है।

इसके उपरांत 'वार्ता साहित्य' की रचना गद्य में हुई। यद्यपि अब तक शताधिक वार्ताग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं पर महत्त्वपूर्ण दो ही ग्रंथ हैं–

1. चौरासी वैष्णवन की वार्ता
2. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

इन दोनों वार्ताग्रंथों के रचयिता मूल रूप में बल्लभाचार्य जी के पौत्र गोसाईं गोकुलनाथ हैं, जिन्हें अनुयाइयों ने विस्तार देकर ग्रंथ का रूप प्रदान किया। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में बल्लभाचार्य के शिष्यों और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्यों का जीवनवृत्त है।

बल्लभ संप्रदाय का वार्ता साहित्य गोसाईं विट्ठलनाथ और गोसाईं गोकुलनाथ के वचनामृत पर आधारित है जिसे लिपिबद्ध करने का कार्य श्रीकृष्ण भट्ट, कल्याण भट्ट और हरिराय ने किया। हरिराय की गणना ब्रजभाषा गद्यकारों में सबसे ऊपर की जाती है। कथात्मक और तथ्य निरूपक दोनों प्रकार का गद्य हरिरायजी ने लिखा है।

ब्रजभाषा गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ

क्र.सं.	रचना का नाम	रचयिता	रचनाकाल
1.	श्रृंगार रस मंडन	गोसाईं विट्ठलनाथ	–
2.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	गोकुल नाथ	17वीं शती का उत्तरार्द्ध
3.	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	गोकुलनाथ	,,
4.	अष्टयाम	नाभादास	1603 ई.
5.	अगहन माहात्म्य	बैकुंठमणि शुक्ल	1627 ई.
6.	वैशाख माहात्म्य	बैकुंठमणि शुक्ल	1627 ई.
7.	नासिकेतोपाख्यान	–	1800 ई.
8.	वैताल पचीसी	सुरति मिश्र	1710 ई.
9.	आइने अकबरी की भाषा वचनिका	लाला हीरालाल	1795 ई.

वार्ता साहित्य प्राय: प्रचारपरक, शिक्षात्मक और सोद्देश्य है। उसकी भाषा में तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दों की बहुलता है। **चौरासी वैष्णवन की वार्ता** 17वीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखी गई, जबकि **'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता'** औरंगजेब के काल की है।

नाभादास द्वारा रचित **'अष्टयाम'** (1603 ई.) पुस्तक ब्रजभाषा गद्य में है जिसमें भगवान राम की दिनचर्या का वर्णन है। गद्य लिखने की परिपाटी का सम्यक् प्रचार न होने के कारण ब्रजभाषा गद्य का पूरा विकास नहीं हो सका। वार्ताग्रंथों में उसका परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित रूप उपलब्ध होता है, किंतु

आगे चलकर काव्य की जो टीकाएँ लिखी गईं उनमें गद्य का रूप बहुत अशक्त एवं अव्यवस्थित रहा। **जानकीप्रसाद** द्वारा रचित **रामचंद्रिका** की टीका (1817 ई.) की भाषा भी अशक्त एवं अव्यवस्थित है।

1741 ई. में **रामप्रसाद निरंजनी** ने **'भाषा योगवाशिष्ठ'** नाम का गद्य ग्रंथ साफ-सुथरी **खड़ी बोली** में लिखा। रामप्रसाद निरंजनी पटियाला दरबार के थे। इनका गद्य देखकर यह पता चलता है कि मुंशी सदासुखलाल एवं लल्लूलाल से 60 वर्ष पहले भी खड़ी बोली गद्य का परिमार्जित रूप थी। **'योगवाशिष्ठ'** में प्रयुक्त गद्य आचार्य शुक्ल के अनुसार सर्वाधिक परिमार्जित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने **रामप्रसाद निरंजनी** को ही **प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक** माना है।

नोट

खड़ी बोली गद्य की महत्त्वपूर्ण पुस्तक **गंग कवि** द्वारा रचित **'चंद छंद बरनन की महिमा'** है। इसकी रचना सम्राट अकबर के समय में हुई थी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने खड़ी बोली गद्य की जिन महत्त्वपूर्ण कृतियों का उल्लेख अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में किया है उनका क्रमबद्ध विवरण इस प्रकार है–

खड़ी बोली गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ एवं उनके रचयिता

क्र.सं.	रचना	रचयिता	रचनाकाल
1.	चंद छंद बरनन की महिमा	गंगकवि	सम्राट अकबर के समय में
2.	भाषा योगवाशिष्ठ	राम प्रसाद निरंजनी	1741 ई.
3.	पद्म पुराण का भाषानुवाद	पं. दौलतराम	1766 ई.
4.	मंडोवर का वर्णन	अज्ञात	1773-1778 ई.
5.	सुखसागर	मुंशी सदासुखलाल 'नियाज'	1818 ई.
6.	प्रेमसागर	लल्लूलाल	1800 ई.
7.	नासिकेतोपाख्यान	सदल मिश्र	1800 ई.
8.	रानी केतकी की कहानी (उदयभान चरित)	इंशा अल्ला खाँ	1800 ई.

लल्लूलाल जी आगरा के गुजराती ब्राह्मण थे। फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदी-उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट के आदेश से इन्होंने खड़ी बोली गद्य में **प्रेमसागर** की रचना की जिसमें भागवत के दशम स्कंध की कथा वर्णित है। लल्लूलाल जी ने इस कृति में अरबी-फारसी के शब्दों से परहेज किया है। इन्होंने उर्दू में भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं जिनके नाम हैं–सिंहासन बत्तीसी, वैताल पचीसी, शकुंतला नाटक और माधोनल। लल्लूलाल जी ने 'बिहारी सतसई' की टीका भी लिखी जिसका नाम है **लाल चंद्रिका।** कलकत्ता में इन्होंने एक प्रेस भी खोला था, जिसे फोर्ट विलियम कॉलेज की नौकरी से पेंशन लेने के बाद ये आगरा में ले आए। इस प्रेस का नाम इन्होंने 'संस्कृत प्रेस' रखा।

सदल मिश्र भी फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता में काम करते थे। इन्होंने भी कॉलेज अधिकारियों की प्रेरणा से खड़ी बोली गद्य की पुस्तक **'नासिकेतोपाख्यान'** तैयार की। ब्रजभाषा के साथ-साथ कुछ पूरबीपन इनकी भाषा में दिखाई देता है।

मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' दिल्ली के रहने वाले थे। इन्होंने विष्णुपुराण से उपदेशात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक का निर्माण किया और हिंदी में **श्रीमद्भागवत पुराण का अनुवाद 'सुखसागर'** नाम से किया। मुंशी जी ने न तो किसी अधिकारी की प्रेरणा से और न ही किसी दिए हुए नमूने पर अपने ग्रंथ लिखे। उन्होंने हिंदुओं की बोलचाल की शिष्टभाषा में अपनी रचनाएँ लिखीं।

इंशा अल्ला खाँ उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे जो दिल्ली के उजड़ने पर लखनऊ चले आए थे। इंशा अल्ला खाँ ने **'रानी केतकी की कहानी'** या **'उदयभान चरित'** की रचना 1800 ई. के आसपास की।

इस ग्रंथ की रचना उन्होंने ठेठ हिंदी में किए जाने की इच्छा व्यक्त की जिसमें हिंदी को छोड़ किसी और बोली का पुट न हो।

हिंदी गद्य के इन चार प्रारंभिक लेखकों में से इंशा की भाषा सबसे अधिक चटकीली, मुहावरेदार और चलती हुई भाषा है। इंशा रंगीन और चुलबुली भाषा द्वारा अपना लेखन कौशल दिखाना चाहते थे।

नोट

आचार्य शुक्ल ने इन चारों लेखकों में मुंशी सदासुखलाल को विशेष महत्त्व दिया है। मुंशी सदासुखलाल को हिंदी गद्य का प्रवर्तन करने वालों में स्थान दिया जाना चाहिए। इन चारों लेखकों का रचनाकाल मोटे तौर पर 1800 ई. के आसपास है, अत: हिंदी गद्य का सूत्रपात भी 1800 ई. के आसपास से समझना चाहिए।

ईसाई धर्म प्रचारकों में से एक **विलियम केरे** ने बाइबिल का हिंदी और बंगला अनुवाद कराया। इनका गद्य सीधा और सरल है, चलती हुई भाषा का प्रयोग उसमें किया गया है।

अंग्रेजी राज्य के प्रारंभ में कचहरी की भाषा फारसी ही रही, कुछ प्रांतों में प्रांतीय भाषाएँ अदालती कामकाज में प्रयुक्त होने लगीं। कुछ प्रभावशाली मुस्लिम नेताओं–सर सैयद अहमद खाँ ने स्कूलों में हिंदी पढ़ाने का भी विरोध किया। **राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद** हिंदी के पक्षपाती थे तथा अंग्रेजों के कृपापात्र थे। हिंदी की रक्षा के लिए उन्होंने महान कार्य किया तथा वे बराबर सर सैयद अहमद खाँ का विरोध करते रहे। गार्सा-द-तासी फ्रांसीसी विद्वान ने हिंदी, उर्दू के इस झगड़े को फ्रांस में बैठकर हवा दी। आचार्य शुक्ल के अनुसार–''अदालती भाषा उर्दू होते हुए भी शिक्षा विधान में देश की असली भाषा हिंदी को स्थान देना पड़ा।''

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद

हिंदी-उर्दू के इस संघर्षकाल में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद और राजा लक्ष्मणसिंह हिंदी के पक्षपाती बनकर सामने आए। शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर होने से पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने काशी से **'बनारस अखबार'** निकालना प्रारंभ किया। जिसकी भाषा में उर्दू का पुट था। शिक्षा विभाग में मुसलमानों का दल अधिक शक्तिशाली था, अत: उन्होंने मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण करते हुए आप चलती हुई भाषा का समर्थन किया जिसमें उर्दू के चलते हुए शब्दों का प्रयोग होता था। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की लिखी पुस्तकें हैं–**आलसियों का कीड़ा, राजा भोज का सपना, इतिहास तिमिरनाशक, मानव धर्म का सार, उपनिषद् सार, भूगोल हस्तामलक** आदि। वस्तुत: सितारेहिंद की भाषा का स्वरूप ऐसा था कि वे हिंदी उर्दू की समस्या को हल करने का प्रयास करते जान पड़ते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने बड़ी चुतराई से हिंदी की रक्षा की अन्यथा मुसलमान नेता हिंदी को स्कूली शिक्षा से बाहर कर देने के लिए अंग्रेजों पर दबाव बनाए हुए थे।

राजा साहब ने अपनी प्रारंभिक पुस्तकों–**'राजा भोज का सपना'** आदि में **सरल हिंदी** का प्रयोग किया है। उसमें वह **उर्दूपन** नहीं है जो बाद की पुस्तकों **'इतिहास तिमिरनाशक'** में दिखाई पड़ता है। यही नहीं अपितु उनकी पुस्तक **'मानव धर्म सार'** में तो उन्होंने **संस्कृतनिष्ठ** हिंदी का प्रयोग किया है। संभवत: शिक्षा विभाग में नौकरी करने के बाद अंग्रेज अधिकारियों का रुख देखकर उन्होंने अपनी भाषा नीति बदली और अपनी बाद की पुस्तकों में उर्दू मिश्रित हिंदी का प्रयोग करने लगे। इतिहास तिमिरनाशक भाग–2 की भूमिका में वे लिखते हैं कि मैंने इस पुस्तक में भाषा का वही स्वरूप रखा है जो 'वैताल पचीसी' का है। **'वैताल पचीसी' की भाषा उर्दू है।**

राजा लक्ष्मण सिंह

राजा लक्ष्मण सिंह आगरा के रहने वाले थे। उन्होंने सन् 1861 ई. में आगरा से **'प्रजा हितैषी'** नामक पत्र निकाला और **1862** ई. में **'अभिज्ञान शाकुंतलम'** का अनुवाद सरस एवं विशुद्ध हिंदी में प्रकाशित किया। उन्होंने अपनी भाषा नीति को स्पष्ट करते हुए कहा है–''हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और फारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी, फारसी के।'' राजा लक्ष्मण सिंह के 'शकुंतला नाटक' की भाषा देखकर अंग्रेज विद्वान **'फ्रेडरिक पिंकाट'** बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस

नोट

नाटक का परिचयात्मक विवरण देते हुए बहुत सुंदर लेख लिखा। पिंकाट साहब हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे और भारत का हित हृदय से चाहते थे। राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र आदि हिंदी लेखकों से वे बराबर हिंदी में पत्र व्यवहार करते रहते थे तथा इंग्लैंड के अखबारों में हिंदी लेखकों और ग्रंथों का परिचय बराबर देते रहते थे। आचार्य शुक्ल का विचार है कि 'उस समय के हिंदी लेखकों के घर में पिंकाट साहब के दो-चार पत्र अवश्य मिलेंगे।' पिंकाट साहब भारत में भी आए और लखनऊ में ही उनका देहांत हुआ।

हिंदी के रक्षकों में **बाबू शिवप्रसाद सितारेहिंद** के साथ-साथ **पंजाब के बाबू नवीनचंद्र राय** भी थे। उर्दू के पक्षपातियों से उन्होंने बराबर संघर्ष किया। नवीन बाबू ने एक व्याख्यान में कहा–

''उर्दू के प्रचलित होने से देशवासियों को कोई लाभ न होगा क्योंकि वह भाषा खास मुसलमानों की है। उसमें मुसलमानों ने व्यर्थ में बहुत से अरबी-फारसी शब्द भर दिए हैं। ... उर्दू में आशिकी कविता के अतिरिक्त किसी गंभीर विषय को व्यक्त करने की शक्ति ही नहीं है।''

नवीन बाबू के इस व्याख्यान से **हिंदी के पक्के दुश्मन गार्सा-द-तासी** फ्रांस में बैठे-बैठे बहुत चिढ़े और उन्होंने नवीन बाबू को हिंदू कहते हुए हिंदी का विरोध एवं उर्दू का समर्थन किया।

9.4. सारांश (Summary)

- गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ। आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बांग्ला उपन्यासों को दिया जा सकता है।
- ईसाई धर्म प्रचारकों में से एक विलियम केरे ने बाइबिल का हिंदी और बंगला अनुवाद कराया। इनका गद्य सीधा और सरल है, चलती हुई भाषा का प्रयोग उसमें किया गया है।
- अंग्रेजी राज्य के प्रारंभ में कचहरी की भाषा फारसी ही रही, कुछ प्रांतों में प्रांतीय भाषाएँ अदालती कामकाज में प्रयुक्त होने लगीं। कुछ प्रभावशाली मुस्लिम नेताओं–सर सैयद अहमद खाँ ने स्कूलों में हिंदी पढ़ाने का भी विरोध किया।

9.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **आधुनिक काल**–हिंदी साहित्य में आधुनिक काल (गद्य) 1900 वि से 1980 वि
2. **रचना**–साहित्यिक कृति

9.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. नामकरण एवं समय सीमा से क्या तात्पर्य है? समझाइए।
2. हिंदी गद्य का उद्‌भव और विकास को विस्तार से समझाइए।
3. खड़ी बोली गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ एवं उनके रचयिताओं के विषय में उल्लेख कीजिए।
4. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. चौरासी वैष्णवन की वार्ताग्रंथ के रचयिता मूल रूप में बल्लभाचार्य जी के पुत्र .... हैं।
   2. हरिराय की गणना ..... में सबसे ऊपर की जाती है।
   3. ..... प्राय: प्रचारक, शिक्षात्मक और सोद्देश्य है।
5. **बहुविकल्पीय प्रश्न–**
   1. योगवाशिष्ठ में प्रयुक्त गद्य ..... के अनुसार सर्वाधिक परिमार्जित है।
      (क) गंगकवि (ख) आचार्य शुक्ल
      (ग) सदल मिश्रा (घ) इंशा अल्ला खाँ

2. पंडित दौलतराम ..... के रचयिता हैं।

(क) सुखसागर (ख) प्रेमसागर

(ग) पद्म पुराण का भाषानुवाद (घ) रत्नसागर

3. कौन रंगीन और चुलबुली भाषा द्वारा अपना लेखन कौशल दिखाना चाहते थे?

(क) ईशा अल्ला खाँ (ख) सदल मिश्र

(ग) गंगकवि (घ) लल्लूलाल

6. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. विलियम केरे ने बाईबिल का हिंदी और बंगला में अनुवाद नहीं कराया।
2. शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर होने से पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने काशी से बनारस अखबार निकालना प्रारंभ किया।
3. पिकांट हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे और भारत का हित हृदय से चाहते थे।

नोट

9.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी

10. भारतेंदु युग : प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ

नोट

रूपरेखा

10.1 उद्देश्य (Objectives)
10.2 प्रस्तावना (Introduction)
10.3 भारतेंदु युग
  10.1.1 भारतेंदु मंडल के साहित्यकार
  10.1.2 भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ
10.4 सारांश (Summary)
10.5 शब्दकोश (Keywords)
10.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

10.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भारतेंदु युग की व्याख्या करने में।
- भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों को जानने में।
- भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ समझने में।

10.2. प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेंदु काल कहना इसलिए उपयुक्त है क्योंकि यह नामकरण भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के महिमामंडित व्यक्तित्व को ध्यान रखकर किया गया। भारतेंदु जी सही अर्थों में हिंदी गद्य के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी भाषा में न तो मुंशी सदासुखलाल की भाषा का पंडिताऊपन है, न लल्लूलाल का ब्रज भाषापन और न सदल मिश्र का पूरबीपन। भारतेंदु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाज हित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेंदु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ है।

भारतेंदु जी मझी हुई परिष्कृत भाषा को सामने लाए जो हिंदी भाषा जनता की बोली थी, अत: भाषा का जो विवाद उनसे पहले चल रहा था वह कुछ सुलझ गया।

10.3. भारतेंदु युग

आधुनिक काल को कई उप-कालों में विभक्त किया गया है। **डॉ. नगेंद्र** के अनुसार ये उप-काल निम्नवत् हैं–

1. पुनर्जागरण काल (भारतेंदु युग) – 1857 ई.–1900 ई.
2. जागरण सुधार काल (द्विवेदी युग) – 1900 ई.–1918 ई.
3. छायावादी युग – 1918 ई.–1938 ई.

4. छायावादोत्तर काल

(अ) प्रगति-प्रयोग काल – (1938 ई.–1953 ई.)

(ब) नवलेखन काल – (1953 ई. ·····)

नोट

उक्त वर्गीकरण काव्य की दृष्टि से है। गद्य में हुए विकास को अलग ढंग से समझा जा सकता है। आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेंदु काल कहना इसलिए उपयुक्त है क्योंकि यह नामकरण भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के महिमामंडित व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर किया गया। भारतेंदु जी का रचनाकाल सन् 1850 ई. से 1885 ई. तक रहा है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका का सम्पादन 1903 ई. में संभाला था। सरस्वती का प्रकाशन सन् 1900 ई. से प्रारंभ हुआ था अत: 1850 ई. से 1900 ई. तक की अवधि को 'भारतेंदु युग' कहना समीचीन है।

भारतेंदु जी सही अर्थों में हिंदी गद्य के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी भाषा में न तो मुंशी सदासुखलाल की भाषा का पंडिताऊपन है, न लल्लूलाल का ब्रजभाषापन और न सदल मिश्र का पूरबीपन। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही सीमित न था, वाक्य-विन्यास में भी व्याप्त था तो दूसरी ओर राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा विशुद्ध एवं मधुर होते हुए भी आगरा की बोली का पुट लिए हुए थी। भारतेंदु जी ने भाषा संस्कार करते हुए इन सभी दोषों से यथासंभव अपनी भाषा को मुक्त रखा। उन्होंने न केवल गद्य की भाषा का संस्कार किया अपितु पद्य की ब्रजभाषा को भी सुसंस्कृत किया।

भारतेंदु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाजहित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेंदु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ है। बंगाल में लिखे गए नाटकों एवं उपन्यासों में इसका सूत्रपात पहले ही बंगाली लेखक कर चुके थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु के इस योगदान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–"हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चंद्र ही हुए।"

भारतेंदु जी मझी हुई परिष्कृत भाषा को सामने लाए जो हिंदी भाषा जनता की बोली थी, अत: भाषा का जो विवाद उनसे पहले चल रहा था वह बहुत कुछ सुलझ गया।

10.1.1 भारतेंदु मंडल के साहित्यकार

भारतेंदु जी ने यद्यपि 35 वर्ष की अल्पायु ही प्राप्त की किंतु इस अल्पकाल में ही उनके बीच लेखकों का एक अच्छा-खासा मंडल तैयार हो गया था जिसमें **पं. प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहन सिंह और पं. बालकृष्ण भट्ट** के नाम लिए जा सकते हैं।

भारतेंदु जी की शैली के दो रूप हैं–1. भावावेश शैली, 2. तथ्य निरूपण शैली। इनमें से प्रथम शैली में लिखे गए वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा सरल एवं बोलचाल की है। तथ्य निरूपण शैली के अंतर्गत संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है।

पं. प्रतापनारायण मिश्र विनोदी प्रकृति के थे, अत: उनकी भाषा में स्वच्छंदता एवं बोलचाल की चपलता और भावभंगिमा दिखाई पड़ती है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के लेखों में गद्य काव्य के पुराने ढंग की झलक दिखाई पड़ती है।

पं. बालकृष्ण भट्ट की भाषा वैसी है जैसी खरी-खरी कहने वालों की होती है।

ठाकुर जगमोहन सिंह की भाषा-शैली शब्द-शोधन और आनुप्रासिकता से युक्त है।

भारतेंदु युग में गद्य का प्रारंभ भी नाटकों से हुआ। **भारतेंदु जी** ने बंगला के नाटक **'विद्यासुंदर'** का हिंदी में अनुवाद किया। नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का उद्योग भी पहले पहल भारतेंदु मंडल के लेखकों ने किया। यही नहीं ये लोग स्वयं भी नाटकों में अभिनय करते थे। **पं. शीतला प्रसाद त्रिपाठी** कृत **'जानकी मंगल नाटक'** में भारतेंदु जी ने स्वयं अभिनय किया था और इसे देखने स्वयं काशीनरेश महाराज ईश्वरी नारायण सिंह पधारे थे। प्रतापनारायण मिश्र ने एक नाटक में अभिनय करने के लिए मूँछ मुड़वा लेने की आज्ञा अपने पिता से माँगी थी।

इस काल में अनेक अच्छे निबंधकार भी हुए जिन्होंने विविध विषयों पर निबंध लिखे। राजनीति, समाज, देश, ऋतु, पर्व, त्योहार, जीवन चरित्र तथा अन्य अनेक विषयों पर इस काल में निबंध लिखे गए।

बंगभाषा के अनुकरण पर हिंदी में उपन्यासों की ओर झुकाव बढ़ रहा था। हिंदी का पहला उपन्यास **'लाला श्री निवास दास'** द्वारा लिखा गया। जिसका नाम है–**'परीक्षा गुरु'।** इसके उपरांत **राधाकृष्ण दास** ने **'निस्सहाय हिंदू** और **पं. बालकृष्ण भट्ट** ने **'नूतन ब्रह्मचारी'** तथा **'सौ अजान एक सुजान'** नामक उपन्यासों की रचना की।

नोट

इस काल में उपन्यासों के अनुवाद की परंपरा भी चल रही थी। प्रतापनारायण मिश्र एवं ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी बाँग्ला उपन्यासों के अनुवाद हिंदी में किए। यद्यपि इन अनूदित उपन्यासों की भाषा उन्नत नहीं थी तथापि हिंदी पाठकों को नए ढंग के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय प्राप्त हो रहा था।

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र (1850-1885)

भारतेंदु जी का जन्म 1850 ई. में तथा मृत्यु 35 वर्ष की अल्पायु में सन् 1885 ई. में हुई। इस अल्पकाल में ही इस महान साधक ने माँ भारती के भंडार में अभूतपूर्व वृद्धि की। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उनके संपूर्ण कृतित्व का विवरण निम्नवत् है–

मौलिक नाटक

1. वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति	2. चंद्रावली नाटिका	3. विषस्य विषमौषधम्
4. भारत दुर्दशा	5. नीलदेवी	6. अंधेर नगरी
7. प्रेम जोगिनी	8. सती प्रताप (अधूरा)।	

अनूदित नाटक

1. विद्यासुंदर	2. पाखंड विडंबन	3. धनंजय विजय
4. कर्पूर मंजरी	5. मुद्राराक्षस	6. सत्य हरिश्चंद्र
7. भारत जननी	8. दुर्लभ बंधु	9. रत्नावली।

काव्य कृतियाँ

1. प्रेमाश्रुवर्णन	2. प्रेम माधुरी	3. प्रेम तरंग
4. उत्तरार्द्ध भक्त माल	5. प्रेम प्रलाप	6. गीत गोविंदानंद
7. सतसई सिंगार	8. होली	9. मधुमुकुल
10. रागसंग्रह	11. वर्षा विनोद	12. विनय प्रेम पचासा
13. फूलों का गुच्छा	14. प्रेम फुलवारी	15. कृष्ण चरित्र
16. तन्मय लीला	17. दान लीला	18. प्रबोधिनी
19. प्रातसमीरन	20. बकरी विलाप	21. रामलीला।

उपन्यास

1. हमीर हठ	2. रामलीला	3. सुलोचना
4. शीलवती	5. सावित्री चरित्र।	

निबंध

1. सबै जाति गोपाल की	2. मित्रता	3. सूर्योदय
4. कुछ आप बीती कुछ जग बीती	5. जयदेव	6. बंग भाषा की कविता।

इतिहास ग्रंथ

1. कश्मीर कुसुम	2. बादशाह दर्पण।

भारतेंदु जी के पिता **गोपालचंद्र** भी अच्छे कवि थे और **'गिरधरदास'** नाम से कविता करते थे। भारतेंदु जी के काव्यगुरु पं. लोकनाथ थे।

भारतेंदु जी के नाटकों, निबंधों में विषय वैविध्य था। चंद्रावली नाटिका में प्रेम के आदर्श का निरूपण है तो नीलदेवी ऐतिहासिक नाटक है। भारत-दुर्दशा में देश की दशा का चित्रण है तो विषस्य विषमौषधम् में देशी रजवाड़ों के षड्यंत्रों का पर्दाफाश किया गया है। प्रेम जोगिनी में धार्मिक पाखंड का चित्रण है। उनकी कविता में भक्ति भावना, शृंगारिकता के साथ-साथ स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि का बेजोड़ संगम है। भारतेंदु युग के अन्य लेखकों ने भी अपने समाचार पत्रों-पत्रिकाओं एवं रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, मिथ्याचारों, अंधविश्वासों पर कुठाराघात किया।

नोट

भारतेंदु युग के प्रमुख कवियों में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी आदि हैं। भारतेंदुजी के नाटकों में जो गीत हैं उनमें एक ओर तो भारत के अतीत गौरव का अंकन किया गया है तो दूसरी ओर वर्तमान अधोगति का चित्रण है। प्रतापनारायण मिश्र की 'हरगंगा' 'हिंदी की हिमायत', 'बुढ़ापा' आदि कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं। बदरीनारायण चौधरी की कविताओं में भी समकालीन विषयों का उद्घाटन किया गया है। उनकी कविताओं में देश की तत्कालीन दशा का भी यथार्थ चित्र अंकित किया गया है।

10.1.2 भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

भारतेंदुयुगीन कवियों ने अपने कर्तव्य का भलीभाँति निर्वाह करने हेतु जनता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पहलुओं का उद्घाटन अपनी कविता में किया। भाव, भाषा, छंद आदि सभी दृष्टियों से परिष्कार की प्रवृत्ति इस काल के साहित्यकारों में विद्यमान थी। उनकी काव्य प्रवृत्तियों का उद्घाटन अग्र शीर्षकों में किया जा सकता है–

1. राष्ट्रीयता की भावना

विदेशी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करने का प्रयास भारतेंदुयुगीन कवियों ने किया है। **राधाचरण गोस्वामी** की कविता 'हमारो उत्तम भारत देस', राधाकृष्णदास की कविता **'भारत बारहमासा'** और **बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन'** की कविता 'धन्य भूमि भारत सब रतननि की उपजावनि' इसी भावना से ओतप्रोत हैं। भारतेंदु जी ने निम्न पंक्तियों में अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे शोषण का चित्र अंकित किया है–

भीतर-भीतर सब रस चूसै,
हंसि-हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज।।

देशभक्ति और राजभक्ति का अद्भुत समन्वय भारतेंदु जी में मिलता है। अंग्रेज कुशल शासन व्यवस्था कर रहे थे पर भीतर-ही-भीतर भारत का आर्थिक शोषण भी कर रहे हैं, इसका उल्लेख भारतेंदु जी ने निम्न पंक्तियों में किया है–

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।।

वस्तुतः द्विवेदी युग में जिस राष्ट्रीयता का उदय, कवियों में हुआ उसका बीजारोपण भारतेंदु युग में हो गया था। **मैथिलीशरण गुप्त** जैसे कवि **'भारत-भारती'** की रचना संभवतः भारतेंदुयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही कर सके।

नोट

2. समाज की दुर्दशा का चित्रण

रीतिकाल के कवियों ने समाज की ओर से अपनी आँखें बंद कर ली थीं, किंतु भारतेंदुयुगीन कवियों ने सामाजिक जीवन का यथातथ्य निरूपण करने में रुचि दिखाई है। आर्यसमाज एवं ब्रह्मसमाज जैसे सामाजिक आंदोलनों के प्रभाव से इस काल में नवीन सामाजिक चेतना का उदय हुआ और विधवा विवाह, नारी शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने वाली कविताएँ लिखी गईं। सामाजिक रूढ़ियों को नकारते हुए बाल विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा, छुआछूत को काव्य विषय बनाया गया और सामाजिक कुरीतियों, छल-कपट एवं पाखंड का खंडन करने में इन कवियों ने बढ़-चढ़कर योगदान किया। भारतेंदु जी ने भारत दुर्दशा का चित्रण इन पंक्तियों में किया–

रोबहु सब मिलि आबहु भारत भाई।
हा हा भारत दुर्दशा देखी न जाई।।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाले साहबों पर व्यंग्य करते हुए लिखा–

चूसहु चुरुट लाख पर लागत पान बिना मुँह सून।
अच्छर चारि पढ़े अंगरेजी बन गए अफलातून।।

बाल विधवाओं की दुर्दशा पर प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा–

'कौन करेजो नहिं कसकत सुनि विपति बाल विधवन की।'

राधाचरण गोस्वामी ने भी भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लिखा है–

मैं हाय-हाय दै धाय पुकारौं रोई।
भारत की डूबी नाव उबारौ कोई।।

वस्तुत: वे अपनी पीढ़ी को सचेत करते हुए भारत की डूबी नैया को उबारने की बात कह रहे हैं।

3. शृंगारिकता

भारतेंदु युग के कवियों ने शृंगाार की मर्यादित अभिव्यक्ति की है। रीतिकालीन पद्धति पर नख-शिख वर्णन एवं नायिका भेद का चित्रण तो इन कवियों ने किया ही है, साथ ही कृष्ण को नायक मानकर तथा राधा को नायिका मानकर उनकी प्रेमलीलाओं का चित्रण भी किया है। भारतेंदु जी की रचनाओं–प्रेम सरोवर, प्रेम तरंग, प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी में शृंगार भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। वयसंधि को प्राप्त नायिका का सुंदर चित्र दृष्टव्य है–

सिसुताई अजौं न गई तन तें,
तऊ जीवन जोति बटोरैं लगीं।
सुनि कै चरचा हरिचंद की कानन,
कूक दै भौंह मरोरैं लगीं।।
बचि सासु जेठानिन सौं पियतैं,
दुरि घूँघट मैं दृग जोरैं लगीं।
दुलही उलही सब अंगन तै,
दिन द्वै ते पीयूष निचौरैं लगीं।।

इन कवियों ने वियोग शृंगार का भी सुंदर चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। **ठाकुर जगमोहन सिंह** ने अपनी रचना 'प्रेम संपत्ति ललिता' में नायिका के विरह का निरूपण इन पंक्तियों में किया है–

अब यौं उर आवत है सजनी,
मिलि जाऊँ गरे लगि कैं छतियाँ।

नोट

मन की करि भाँति अनेकन औ,
मिलि कीजिए री रस की बतियाँ।।
हम हारि अरी करि कोटि उपाय,
लिखी बहु नेह भरी पतियां।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिना,
कैसें कटैं दुख की रतियाँ।।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र एवं **राधाकृष्णदास** जैसे कवियों ने शृंगार को अपना काव्य विषय नहीं बनाया।

4. भक्ति भावना

भारतेंदु जी को भक्ति भावना पैतृक विरासत में मिली थी। उनकी भक्तिपरक रचनाओं में प्रमुख हैं–भक्ति सर्वस्व, वैशाख माहात्म्य एवं कार्तिक स्नान। इसीलिए वे इस प्रकार की पंक्तियाँ लिख सकने में समर्थ हो सके–

''मेरे तो साधन एक ही हैं जग नंदलला वृषभानु दुलारी।।'' **–भारतेंदु**

राधाकृष्ण की मधुर छवि का अंकन उनके अनेक पदों में उपलब्ध होता है। यथा–

नैन भरि देखि लेहु यह जोरी।
मनमोहन सुंदर नर नागर श्री वृषभानु किसोरी।
कहा कहूँ छवि कहि नहिं आवै वह सांवर यह गोरी।। **–भारतेंदु**

पंडित प्रतापनारायण मिश्र एवं राधाकृष्णदास के काव्य में भक्तिभावना का वह स्वरूप दिखाई पड़ता है, जो निर्गुण भक्त कवियों के काव्य में विद्यमान था। उन्होंने संसार की नश्वरता, माया-मोह के बंधन, और विषय वासना की निस्सारता, आदि का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है, यथा–

जो विषया संतन तजी ताहि मूढ़ लपटात।
जो नर डारत वमन करि स्वान सौं खात।। **–राधाकृष्णदास**

ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हुए भारतेंदु जी ने अपनी दीनता का उल्लेख किया है और उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना की है–

उधारौ दीनबंधु महराज।
जैसे हैं तैसे तुमरे ही नहीं और सौं काज।। **–भारतेंदु**

इस काल की कुछ अन्य भक्तिपरक रचनाएँ इस प्रकार हैं–

1.	अलौकिक लीला	–	बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
2.	कंसवध	–	अंबिकादत्त व्यास
3.	सूर्य स्तोत्र	–	बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
4.	नवभक्तमाल	–	राधाचरण गोस्वामी
5.	भक्ति सर्वस्व	–	भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
6.	वैशाख माहात्म्य	–	भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
7.	कार्तिक स्नान	–	भारतेंदु बाबू हरिश्चंद

5. प्रकृति चित्रण

भारतेंदुयुगीन कवियों ने प्रकृति का स्वच्छंद रूप में चित्रण किया, यद्यपि कहीं-कहीं परंपरा निर्वाह करते हुए प्रकृति निरूपण भी किया गया है। एक ओर तो वसंत, वर्षा आदि ऋतुओं के मनोहारी चित्र

अंकित किए गए तो दूसरी ओर गंगा, यमुना, चाँदनी आदि का सुंदर चित्रण किया है। भारतेंदु कृत 'वसंत होली' में 'वसंत' का वर्णन है तथा श्री चंद्रावली नाटिका में 'यमुना' वर्णन किया गया है। प्रकृति के माध्यम से नायक-नायिका की शृंगार चेष्टाओं का निरूपण भी किया गया है। भारतेंदु जी द्वारा किया गया यमुना वर्णन अत्यंत आकर्षक बन पड़ा है, यथा–

नोट

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सौं जल परसन हित मनहुँ सुहाए।।

6. हास्य-व्यंग्य की प्रधानता

इस काल के कवियों ने हास्य-व्यंग्यपरक रचनाओं के महत्त्व को समझते हुए इनके माध्यम से अंग्रेजी शासन, पाश्चात्य सभ्यता, सामाजिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों पर करारी चोट की। भारतेंदु जी ने अपने नाटकों एवं एकांकियों में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का सुंदर चित्रण किया है। 'अंधेर नगरी' में चूरनवाला कहता है–

चूरन साहब लोग जो खाता।
सारा 'हिंद' हजम कर जाता।।

नए जमाने की मुकरी में कवि ने सामयिक बुराइयों पर व्यंग्य किए हैं। मद्यपान के संबंध में उनकी व्यंग्योक्ति देखिए–

मुँह जब लागे तब नहिं छूटै,
जाति मान धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोहि करै खराब,
क्यों सखि साजन नहीं सराब।।

प्रतापनारायण मिश्र की कविताएँ हर गंगा, बुढ़ापा, उर्दू का स्यापा, हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हुईं।

7. समस्या पूर्ति

भारतेंदु काल के कवि समस्या पूर्ति के रूप में ही काव्य रचना करते थे। कोई एक पंक्ति या पद्यांश 'समस्या' के रूप में दिया जाता था और कविजन विलक्षण कल्पनाएँ करते हुए उस समस्या पूर्ति का प्रमुख नियम यह था कि दी गई पंक्ति छंद या कविता के अंत में ही आनी चाहिए। समस्या पूर्ति की यह परंपरा कवियों की प्रतिभा को परखने एवं उनके रचना-कौशल की थाह पाने को कसौटी समझी जाती थी। कवि गोष्ठियों में समस्या पूर्ति की प्रतियोगिताएँ होती थीं और रसिक समाज इन्हें बड़े चाव से सुनता था। समस्या पूर्ति के लिए जो विषय दिए जाते थे वे प्रायः शृंगार से संबंधित होते थे। कानपुर की एक संस्था 'रसिक समाज' में एक बार समस्या पूर्ति के लिए एक पंक्ति दी गई–''पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ'' इस समस्या की पूर्ति पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने इस प्रकार की–

बन बैठि है मान की मूरति सी,
मुख खोलत बोलै न नाहीं न हां।
तुम ही मनुहारि कै हारि परे,
सखियान की कौन चलाई तहां।।
वरषा है प्रतापजू' धीरे धरौ,
अबलौ मन कौं समझायौ जहाँ।
वह ब्यारि तबै बदलैगी कछू,
पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ।।

समस्या पूर्ति के माध्यम से उक्ति वैचित्र्य, अलंकरण एवं कल्पना का मनोहारी प्रयोग करने की रीतिकालीन प्रवृत्ति को काव्य में पर्याप्त प्रश्रय मिला। समस्यापूर्ति से संबंधित इस काल के कुछ प्रमुख काव्य संग्रह हैं–**अंबिकादत्त व्यास कृत 'समस्या पूर्ति सर्वस्व'** द्विजगंग कृत 'समस्या प्रकाश' और गोविंद गिल्ला भाई कृत 'समस्यापूर्ति प्रदीप'।

नोट

8. ब्रजभाषा का प्रयोग

भारतेंदु युग के अधिकांश कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। यद्यपि खड़ी बोली का प्रयोग इस काल में प्रारंभ हो गया था। इन कवियों की भाषा पद्माकर एवं घनानंद जैसी परिष्कृत भाषा तो नहीं है, किंतु उसमें प्रवाह एवं स्वाभाविकता है। पंडित प्रतापनारायण की ब्रजभाषा में कन्नौजी का प्रभाव तथा उर्दू शब्दों का प्रयोग साफ झलकता है। भारतेंदु जी ने यद्यपि साफ-सुथरी ब्रजभाषा का प्रयोग किया तथापि उनकी रचना 'फूलों का गुच्छा' में उर्दू के पर्याप्त शब्द हैं। इस काल के कुछ कवियों ने खड़ी बोली में भी रचनाएँ लिखीं पर वे कला एवं भाव की दृष्टि से उतनी प्रभावपूर्ण नहीं हैं।

अधिकांश कवियों ने मुक्तक शैली में लिखा तथापि कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गए। इन कवियों ने दोहा, चौपाई, कुंडलियां, रोला, सवैया, हरिगीतिका, कवित्त जैसे परंपरित छंदों में काव्य रचना की। छंदों की दृष्टि से इनके काव्य में विविधता है।

भारतेंदु युग के कवियों ने कविता को रीतिकालीन परिवेश से निकालकर सामयिक समस्याओं से जोड़ दिया। विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने किया, भले ही वह दबी जबान से किया गया है। भारतेंदु के रूप में एक सबल साहित्यकार हिंदी को प्राप्त हुआ। **वे सच्चे अर्थों में आधुनिक काल के जनक कहे जा सकते है।** राष्ट्र और समाज को उद्‌बोधन देते हुए उन्होंने 'कवि कर्तव्य' का बखूबी पालन किया, जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

10.4. सारांश (Summary)

- भारतेंदु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाजहित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेंदु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ है। बंगाल में लिखे गए नाटकों एवं उपन्यासों में इसका सूत्रपात पहले ही बंगाली लेखक कर चुके थे।
- भारतेंदु काल में उपन्यासों के अनुवाद की परंपरा भी चल रही थी। प्रतापनारायण मिश्र एवं ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी बाँग्ला उपन्यासों के अनुवाद हिंदी में किए। यद्यपि इन अनूदित उपन्यासों की भाषा मझी हुई नहीं थी तथापि हिंदी पाठकों को नए ढंग के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय प्राप्त हो रहा था।
- भारतेंदु जी के नाटकों, निबंधों में विषय वैविध्य था। चंद्रावली नाटिका में प्रेम के आदर्श का निरूपण है तो नीलदेवी ऐतिहासिक नाटक है। भारत-दुर्दशा में देश की दशा का चित्रण है तो विषस्य विषमौषधम् में देशी रजवाड़ों के षड्यंत्रों का पर्दाफाश किया गया है। प्रेम जोगिनी में धार्मिक पाखंड का चित्रण है।
- भारतेंदु युग के कवियों ने कविता को रीतिकालीन परिवेश से निकालकर सामयिक समस्याओं से जोड़ दिया। विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने किया, भले ही वह दबी जबान से किया गया है। भारतेंदु के रूप में एक सबल साहित्यकार हिंदी को प्राप्त हुआ। **वे सच्चे अर्थों में आधुनिक काल के जनक कहे जा सकते हैं।** राष्ट्र और समाज को उद्‌बोधन देते हुए उन्होंने 'कवि कर्त्तव्य' का बखूबी पालन किया, जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

10.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **अल्पायु**–कम उम्र, अवयस्क
2. **बहुमुखी प्रतिभा**–विभिन्न योग्यताओं से पूर्ण, विविध प्रतिभा संपन्न

नोट

10.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों के साहित्य का वर्णन कीजिए।
2. भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जीवन परिचय दीजिए।
3. भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियों से क्या तात्पर्य है? उल्लेख कीजिए।
4. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. जागरण सुधार काल ..... 1857 ई. से 1900 ई. तक।
   2. सरस्वती का प्रकाशन सन् ..... से प्रारंभ हुआ था।
   3. भारतेंदु जी ने ..... करते हुए इन सभी दोषों से यथासंभव अपनी भाषा को मुक्त रखा।
   4. देशहित एवं समाजहित की भावना का ..... सर्वप्रथम भारतेंदु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ।
5. **बहुविकल्पीय प्रश्न–**
   1. भारतेंदु जी की भावावेश शैली में लिखे गए वाक्य कैसे हैं?
      (क) बड़े-बड़े (ख) छोटे-छोटे
      (ग) प्रासंगिक (घ) हास्यप्रद
   2. भारतेंदु जी ने बंगला के नाटक विद्यासुंदर का अनुवाद किस भाषा में किया?
      (क) हिंदी (ख) गुजराती
      (ग) मराठी (घ) उड़िया
   3. हिंदी का प्रथम उपन्यास किसके द्वारा लिखा गया?
      (क) बाबू गुलाबराय (ख) द्विवेदी
      (ग) शुक्ल जी (घ) लाला श्रीनिवास
6. **निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–**
   1. देशभक्ति और राजभक्ति का अद्‌भुत समन्वय भारतेंदु जी में नहीं मिलता है।
   2. भारतेंदु जी की रचनाओं-प्रेम सरोवर, प्रेम तरंग, प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी में शृंगार भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।
   3. भारतेंदुयुगीन कवियों ने प्रकृति का स्वच्छंद रूप में चित्रण किया, यद्यपि कहीं-कहीं परंपरा निर्वाह करते हुए प्रकृति निरूपण भी किया गया है।

10.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी

11. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनका युग : राष्ट्र काव्यधारा एवं समकालीन कविता

नोट

रूपरेखा

11.1 उद्देश्य (Objectives)

11.2 प्रस्तावना (Introduction)

11.3 द्विवेदी युग, हिंदी नवजागरण और सरस्वती, राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

- **11.1.1** महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग
- **11.1.2** हिंदी नवजागरण और सरस्वती
- **11.1.3** राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

11.4 सारांश (Summary)

11.5 शब्दकोश (Keywords)

11.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

11.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

11.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- द्विवेदी युग को समझने में।
- हिंदी नवजागरण का वर्णन करने में।
- राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवियों को जानने में।

11.2. प्रस्तावना (Introduction)

भारतेंदु युग यदि आधुनिक काल का प्रवेश द्वार है तो द्विवेदी युग उसका विस्तृत प्रांगण जहाँ उन प्रवृत्तियों को विकसित एवं पल्लवित होने का अवसर प्राप्त हुआ जो भारतेंदु युग में प्रारंभ हुई थीं। विशेषत: भारतीय जनमानस में स्वदेशानुराग एवं नवजागरण के जो बीज भारतेंदु युग में अंकुरित हुए थे, वे द्विवेदी युग में पूर्ण पल्लवित होकर सामने आ गए।

उन्नीसवीं शती का अंत होते-होते भारतेंदुकालीन समस्या पूर्ति एवं नीरस तुकबंदियों से सहृदय विमुख होने लगे तथा लंबे समय से काव्य भाषा के रूप में व्यवहृत ब्रजभाषा का आकर्षण भी लुप्त होने लगा और उसका स्थान खड़ी बोली हिंदी ने ले लिया।

11.3. द्विवेदी युग, हिंदी नवजागरण और सरस्वती, राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

11.1.1 महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग

द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के गरिमामंडित व्यक्तित्व को केंद्र में रखकर किया गया। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में हिंदी जगत की महान सेवा की और हिंदी

नोट

साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान दिया। महावीरप्रसाद द्विवेदी सन् 1903 में सरस्वती पत्रिका के संपादक बने। इससे पहले वे रेल विभाग में नौकरी करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी। काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली का प्रयोग करने का सुझाव दिया, जिससे गद्य और पद्य की भाषा एक हो सके। द्विवेदी जी ने **'कवि कर्त्तव्य'** जैसे निबंधों द्वारा कवियों को उनके कर्त्तव्य का बोध कराते हुए अनेक दिशा-निर्देश दिए जिससे विषय-वस्तु, भाषा-शैली, छंद योजना आदि अनेक दृष्टियों से काव्य में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार, व्याकरण शुद्धि, विरामचिह्नों के प्रयोग द्वारा हिंदी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य में योगदान एक सर्जक के रूप में उतना नहीं है जितना एक विचारक, दिशा-निर्देशक, चिंतक एवं नियामक के रूप में है। उनकी प्रेरणा से हिंदी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े। उनकी विचारधारा का पल्लवन करते हुए इन कवियों ने एक ओर तो नवीन काव्यधारा का श्रीगणेश करते हुए **भारतेंदुकालीन समस्या पूर्ति, रीति निरूपण से हिंदी कविता को मुक्त किया** तो दूसरी ओर खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भाषा परिष्कार एवं संस्कार का जो कार्य द्विवेदी युग में हुआ वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

11.1.2 हिंदी नवजागरण और सरस्वती

सन् 1857 ई. में हुए प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने नवजागरण का बिगुल बजा दिया और भारतीय जनमानस में देशभक्ति, स्वतंत्रता, राष्ट्रोत्थान, स्वदेशाभिमान की भावनाएँ जाग्रत होने लगीं। भारतेंदु युग में जहाँ इनका सूत्रपात हुआ, वहीं द्विवेदी युग में ये पल्लवित एवं विकसित हो गईं। डॉ. रामविलास शर्मा ने इसीलिए हिंदी नवजागरण को हिंदू जाति का जागरण माना है। इस नवजागरण की लहर को जन-जन तक पहुँचाने में 'सरस्वती' पत्रिका का विशेष योगदान है। इसके अतिरिक्त प्रभा, मर्यादा पत्रिका को भी यह श्रेय जाता है।

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन सन् 1900 ई. से प्रारंभ हुआ तथा सन् 1903 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका संपादन भार संभाला। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका में ऐसे लेखों को प्रकाशित किया जिन्होंने नवजागरण की लहर को प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में सरस्वती पत्रिका से उद्धरण देकर इस बात को पुष्ट किया है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा लेकर तथा उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़ने वाले अनेक कवि सामने आए जिनमें प्रमुख हैं–**मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'** और **लोचनप्रसाद पांडेय** आदि। यही नहीं अपितु बहुत सारे ऐसे कवि जो पहले ब्रजभाषा में कविता लिख रहे थे तथा उनकी विषय वस्तु एवं शैली प्राचीन पद्धति पर थी, अब द्विवेदी जी एवं 'सरस्वती' से प्रेरित होकर काव्य के चिर-परिचित उपादानों को छोड़कर नए विषयों पर खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं–**अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर'** तथा **राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।** इन सभी कवियों की कविताएँ नवजागरण, राष्ट्रीयता, स्वदेशानुराग एवं स्वदेशी भावना से परिपूर्ण हैं।

द्विवेदी युग में केवल भाषा क्षेत्र में ही परिवर्तन नहीं हुआ अपितु छंदों के क्षेत्र में भी परिवर्तन परिलक्षित है। अब परंपरागत छंद प्रयोग के साथ-साथ संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग भी कविगण प्रचुरता से करने लगे।

'सरस्वती' पत्रिका ने कवियों की एक नई पौध तैयार की। उनकी प्रेरणा से अनेक कवियों ने नवीन विषयों पर कविता लिखी। उनके एक निबंध से प्रेरित होकर **मैथिलीशरण गुप्त** ने चिर उपेक्षिता उर्मिला को महत्त्व देने हेतु **'साकेत'** नामक महाकाव्य की रचना की। उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा को निम्न पंक्तियों में स्वीकार करते हुए अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है–

करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद?
महावीर का यदि नहीं मिलता उन्हें प्रसाद।।

खड़ी बोली को परिमार्जित करने, संस्कारित करने तथा व्याकरणिक शुद्धता प्रदान करने में 'सरस्वती' पत्रिका का अविस्मरणीय योगदान है। आचार्य द्विवेदी के भाषा परिष्कार पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–''खड़ी बोली के पद्य विधान पर द्विवेदी जी का पूरा-पूरा असर पड़ा। बहुत से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी। द्विवेदी जी ऐसे कवियों की भेजी हुई कविताओं की भाषा आदि दुरुस्त करके 'सरस्वती' में छापा करते थे। इस प्रकार कवियों की भाषा साफ होती गई और द्विवेदी जी के अनुकरण में अन्य लेखक भी शुद्ध भाषा लिखने लगे।''

वस्तुत: 'सरस्वती' पत्रिका ने भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में परिष्कार किया। इसके माध्यम से ज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ, कितने ही नए लेखक और कवि प्रकाश में आए, भाषा संस्कार हुआ, समाज सुधार, देशप्रेम, चरित्र-निर्माण की भावनाएँ विकसित हुईं। **देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की चेतना विकसित करने में भी इस पत्रिका का विशिष्ट योगदान है।**

11.1.3 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

माखनलाल चतुर्वेदी–माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968) का जन्म मध्यप्रदेश के जिला होशंगाबाद के गाँव बाबई में हुआ था। इनके पिता गाँव के स्कूल में अध्यापक थे, इसलिए इनकी आरंभिक शिक्षा वहीं हुई। ये एक सजग, संवेदनशील एवं उत्साही व्यक्ति थे और आरंभ से ही देश की दशा के प्रति जागरूक थे। इन पर सैयद अमीर अली 'मीर', स्वामी रामतीर्थ और माधवराज सप्रे का विशेष प्रभाव था। वैष्णव-संस्कार तो इन्हें अपने परिवार से ही मिले थे। अपने जीवन का आरंभ इन्होंने एक अध्यापक के रूप में किया था, किंतु ये पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कार्यशील रहे और इन्होंने 'प्रभा', 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' का संपादन किया। इनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' था आरंभ में ये क्रांति के दर्शन से प्रभावित हुए थे, किंतु बाद में इनकी आस्था गाँधीवाद की ओर हुई। इनकी राजनीतिक सक्रियता के कारण इन्हें कई बार बंदी बनाया गया। जेल के जीवन-काल में इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। छायावाद-युग के इनके प्रमुख कविता-संग्रह हैं–'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी'। चतुर्वेदी जी की रचनाओं में देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश-कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग की उत्कट भावना दिखाई देती है। इस मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति को तभी सफलता मिल सकती है जब वह जीवन के सुख और वैभव को ठुकराकर संघर्ष और साधना का मार्ग अपनाए। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इनकी कई रचनाओं में–विशेषकर आरंभिक रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति को भी वाणी मिली है। इनकी आध्यात्मिक भावना पर निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति और आत्मोत्सर्ग का प्रभाव है।

सियारामशरण गुप्त–सियारामशरण गुप्त (1895-1963) का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला झाँसी के चिरगाँव नामक ग्राम में हुआ था। ये मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। रोग एवं पारिवारिक दुखों के कारण इनका जीवन अत्यंत दु:खमय रहा। वैसे ये सरसता एवं नम्रता की प्रतिमूर्ति थे। इनकी पहली रचना सन् 1910 में 'इंदु' पत्रिका में प्रकाशित हुई इसके बाद 'सरस्वती' में कई रचनाएँ छपीं। 'मौर्य विजय', 'अनाथ', 'दूर्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मंथी', 'बापू', 'दैनिकी' आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। गाँधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिए इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा, सत्य, करुणा, विश्वबंधुत्व, शाँति आदि गाँधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। जिन रचनाओं में इन्होंने प्राचीन भारतीय आख्यानों को आधार बनाया है, वहाँ भी ये इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा करते दिखाई देते हैं। विषय-प्रतिपादन और अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से जहाँ इन पर एक ओर द्विवेदीयुगीन रचना-पद्धति का प्रभाव लक्षित होता है, वहाँ दूसरी ओर ये छायावादी शिल्प से भी प्रत्यक्षत: प्रभावित हैं। इनकी भाषा-शैली सरल और स्पष्ट है तथा इन्होंने बड़ी सफलता के साथ मुक्त छंद का प्रयोग किया है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'–'नवीन' जी (1897-1960) का जन्म ग्वालियर राज्य के **भयाना गाँव** में हुआ था। ग्यारह वर्ष की आयु में इनकी शिक्षा का आरंभ हुआ। सन् 1917 में हाई स्कूल पास करने के बाद ये कानपुर पहुँचे, जहा गणेशशंकर विद्यार्थी ने इन्हें कॉलेज में दाखिल करा दिया। किंतु सन् 1920 में ये गाँधी जी के आह्वान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। अपने लंबे राजनीतिक जीवन के दौरान इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। देश के स्वाधीन होने पर ये पहले **लोकसभा और फिर**

नोट

राज्यसभा के सदस्य रहे। कुछ समय तक इन्होंने 'प्रभा' और 'प्रताप' का भी संपादन किया था। इनकी रचनाएँ सन् 1918 से ही पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं, लेकिन इन्होंने उनको विधिवत् प्रकाशित कराने का कोई प्रयास नहीं किया। 'कुंकुम' (1939) इनका पहला कविता-संग्रह है। 'उर्मिला' काव्य को इन्होंने सन् 1934 में ही पूरा कर लिया था, किंतु उसका प्रकाशन 1975 ई. में हुआ। इसमें कवि ने उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारत की प्राचीन आर्य संस्कृति के उज्ज्वल रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कथानक को अपने परिवेश के यथार्थ से–भारतीय संस्कृति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के संघर्ष से–संबद्ध करने के लिए कवि ने कुछ प्रसंगों की अत्यंत कौशलपूर्वक संयोजना की है। इनके अन्य काव्य-ग्रंथ हैं–**'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'क्वासि'** तथा **'हम विषपायी जनम के'**। 'नवीन' जी की रचनाओं में प्रणय और राष्ट्र-प्रेम दोनों भावों की शक्तिशाली अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी प्रणय-संबंधी रचनाओं में छायावादी प्रणय के समान स्वच्छंदता तथा प्रेम और मस्ती के काव्य-जैसी मार्मिकता दिखाई देती है। इस रूप में 'नवीन' जी को परवर्ती प्रेम और मस्ती के काव्य के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं में अनुभूतियों का सीधा संबंध इनके जीवन के साथ है। देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नई रचना के लिए इन्होंने जो अथक साधना की थी, वही साधना निश्छल और सहज शक्ति के साथ इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी दिखाई देती है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के अन्य कवियों के समान ही इनके काव्य के प्रधान विषय हैं–अतीत की महिमा का गौरव-गान, तत्कालीन भारतीय समाज की रुग्ण अवस्था के प्रति व्यथा और आक्रोश, भविष्य को अवतरित करने की कामना आदि। किंतु, इनकी काव्य-चेतना का एक पक्ष बिलकुल निजी और अनुभूति-प्रधान है–''हम अनिकेतन, हम अनिकेतन, हम तो रमते राम हमारा क्या घर, क्या दर, कैसा वतन?'' कहीं तो ये अपने फक्कड़पन और मस्ती की अभिव्यक्ति करते हैं और कहीं नशे में गर्क हो जाना चाहते हैं–''हो जाने दे गर्क नशे में, मत पड़ने दे फर्क नशे में'' ये जिस ललक और उत्साह के साथ कर्म और साधना की ओर अग्रसर होते हैं, उसी आवेश और आसक्ति के साथ प्रणय में डूब जाना चाहते हैं। फलस्वरूप पहली दशा का संघर्ष और तनाव और दूसरी स्थिति की मदहोशी और मस्ती दोनों कारण-कार्य-भाव से संबद्ध होकर परस्पर पूरक-से लगते हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान–सुभद्रा जी (1905-1948) का जन्म प्रयाग जिले के निहालपुर गाँव में हुआ था। इन्होंने प्रयाग में ही शिक्षा ग्रहण की। सन् 1921 में असहयोग-आंदोलन के प्रभाव में इन्होंने शिक्षा अधूरी ही छोड़ दी और ये राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगीं। अपने राजनीतिक कार्यों के कारण इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। काव्य-रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति विद्यार्थी-काल से ही थी। इनकी कविताएँ 'त्रिधारा' और 'मुकुल' में संकलित हैं। भाव की दृष्टि से इनकी कविताओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में राष्ट्र-प्रेम की कविताएँ रखी जा सकती हैं जिनमें इन्होंने असहयोग या आज़ादी की लड़ाई में भाग लेनेवाले वीरों को अपना विषय बनाया है। इनकी 'झाँसी की रानी' कविता तो सामान्य जनता में बहुत प्रसिद्ध हुई है। दूसरे वर्ग के अंतर्गत वे कविताएँ रखी जा सकती हैं जिनकी प्रेरणा इन्हें अपने पारिवारिक जीवन से प्राप्त हुई हैं ऐसी कविताओं में कुछ तो पति-प्रेम की भावना से अनुप्राणित हैं और कुछ में संतान के प्रति वात्सल्य की सहज एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी भाषा शैली भावों के अनुरूप सरलता और गति लिए हुए है।

अन्य कवि–छायावाद-युग में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के विकास में जिन अन्य कवियों ने उल्लेखनीय योग दिया अथवा इस धारा के परवर्ती प्रमुख कवियों में से जिन कवियों की एक-दो कृतियाँ आलोच्य काल में प्रकाश में आई उनमें रामनरेश त्रिपाठी, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथप्रसाद मिलिंद, दिनकर आदि का उल्लेख आवश्यक है। **रामनरेश त्रिपाठी** (1881-1960) ने 'मानसी' (1927) की कतिपय देशभक्तिपरक कविताओं के अतिरिक्त 'पथिक' (1920) और 'स्वप्न' (1921) शीर्षक खंडकाव्यों में काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देश के उद्धार के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना को व्यक्त किया है। दोनों काव्यों के नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि है। 'पथिक' का नायक जन-जीवन के वैषम्य को दूर करने के उद्देश्य से राजतंत्र से लोहा लेता है और अंत में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना तथा अपने परिवार का बलिदान कर देता है। 'स्वप्न में कवि ने एक ऐसे संवेदनशील नायक की कथा का वर्णन किया है जो पहले तो स्वार्थ और लोक-सेवा अथवा व्यक्तिगत सुख और समाज-कल्याण में विरोध देखता है, किंतु

फिर उसे कर्त्तव्य का बोध होता है और वह देश के कल्याण के लिए पूरी शक्ति से कर्मलीन होता है। 'पथिक' के विपरीत इस काव्य का अंत सुखद है। इन दोनों काव्यों में कवि ने राष्ट्र-सेवा के आदर्श की स्थापना की है तथा समाज-विरोधी शक्तियों के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार ये कल्पित कथानक भी सहज ही कवि के सामाजिक यथार्थ से संबद्ध होकर अधिक सार्थक बन गए है। **उदयशंकर भट्ट** (1898-1966) के आख्यान-काव्य 'तक्षशिला' (1929) की गणना भी प्रस्तुत काव्यधारा के अंतर्गत की जा सकती है–भारत की सांस्कृतिक गुण-गाथा की अभिव्यक्ति इस रचना का मुख्य अभीष्ट है। **जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद** (1907-1986) के 'जीवन-संगीत' में भारत के सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना और बलिदान की भावना को व्यक्त करने वाली कविताएँ संकलित हैं। इनकी रचना 1922 से 1936 के मध्य हुई थी। **दिनकर**-कृत 'रेणुका' (1935) भी इसी शैली का कविता-संग्रह है। रूढ़ी-विद्रोह, नवयुग की स्फूर्ति और ओजस्विता की दृष्टि से इसकी कविताएँ अप्रतिम हैं। इस संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त की **'स्वदेश-संगीत'** (1925), कवि 'त्रिशूल' (गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही') की **'राष्ट्रीय मंत्र'** (1921), **केदारनाथ मिश्र** 'प्रभात' की 'ज्वाला' (1921), **महेशचंद्र प्रसाद** की 'कांग्रेस शतक' (1936) आदि रचनाओं का उल्लेख भी आवश्यक है–उस युग की राष्ट्रीय-संस्कृतिक काव्य-चेतना को गतिमान करने में इन कृतियों का योगदान अविस्मरणीय है।

11.4. सारांश (Summary)

- पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य में योगदान एक सर्जक के रूप में उतना नहीं है जितना एक विचारक, दिशा-निर्देशक, चिंतक एवं नियामक के रूप में है। उनकी प्रेरणा से हिंदी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े। उनकी विचारधारा का पल्लवन करते हुए इन कवियों ने एक ओर तो नवीन काव्यधारा का श्रीगणेश करते हुए भारतेंदुकालीन समस्या पूर्ति, रीति निरूपण से हिंदी कविता को मुक्त किया तो दूसरी ओर खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भाषा परिष्कार एवं संस्कार का जो कार्य द्विवेदी युग में हुआ वह सदैव स्मरणीय रहेगा।
- 'सरस्वती' पत्रिका ने भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में परिष्कार किया। इसके माध्यम से ज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ, कितने ही नए लेखक और कवि प्रकाश में आए, भाषा संस्कार हुआ, समाज सुधार, देशप्रेम, चरित्र-निर्माण की भावनाएँ विकसित हुईं। देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की चेतना विकसित करने में भी इस पत्रिका का विशिष्ट योगदान है।

11.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **राष्ट्रीयता**–राष्ट्र की भावना, राष्ट्र प्रेम
2. **विश्वबंधुत्व**–संसार में एकता तथा भाईचारा

11.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. हिंदी नवजागरण और सरस्वती का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
3. (अ) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन जी' (ब) सुभद्रा कुमारी चौहान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. ..... सरस्वती पत्रिका के संपादक के रूप में हिंदी जगत् की महान सेवा की और हिंदी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान दिया।
   2. द्विवेदी जी ने ..... के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी।

3. द्विवेदी जी की ..... से हिंदी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े।

5. बहुविकल्पीय प्रश्न–

नोट

1. हिंदी नवजागरण की लहर को जन-जन तक पहुँचाने में ..... पत्रिका का विशेष योगदान है।

   (क) विनय (ख) तेजस्वती

   (ग) मृगावती (घ) सरस्वती

2. द्विवेदी जी की प्रेरणा से अनेक कवियों ने ..... विषयों पर कविताएँ लिखी।

   (क) गंभीर (ख) नवीन

   (ग) प्राचीन (घ) दार्शनिक

3. ..... के पद्य विधान पर द्विवेदी जी का पूरा-पूरा असर पड़ा।

   (क) मैथिली बोली (ख) संस्कृत बोली

   (ग) खड़ी बोली (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

6. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. द्विवेदी जी अपनी रचनाओं द्वारा देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा नहीं दे सके।
8. देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नई रचना के लिए द्विवेदी जी ने अथक साधना की।
9. द्विवेदी जी की भाषा-शैली भावों के अनुरूप सरलता और गति लिए हुए है।

11.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी

छायावाद

नोट

रूपरेखा

12.1 उद्देश्य (Objectives)
12.2 प्रस्तावना (Introduction)
12.3 छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ
- **12.1.1** छायावाद का अर्थ और परिभाषा
- **12.1.2** छायावादी काव्य की विशेषताएँ
- **12.1.3** उत्तर-छायावाद
- **12.1.4** व्यक्तिवादी गीति कविता
- **12.1.5** राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता
- **12.1.6** मार्क्सवाद क्या है?
- **12.1.7** मार्क्सवादियों का साहित्यिक दृष्टिकोण
- **12.1.8** प्रगतिवाद और चेतना
- **12.1.9** प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
- **12.1.10** प्रयोगवाद का अर्थ एवं परिभाषा
- **12.1.11** प्रगतिवाद व प्रयोगवाद में अंतर
- **12.1.12** प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
- **12.1.13** नई कविता से अभिप्राय
- **12.1.14** नई कविताकालीन परिस्थितियाँ
- **12.1.15** नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
- **12.1.16** अकविता या साठोत्तरी कविता

12.4 सारांश (Summary)
12.5 शब्दकोश (Keywords)
12.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
12.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

12.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- छायावाद का अर्थ, परिभाषा और काव्यगत विशेषताएं जानने में।
- मार्क्सवादियों के साहित्यिक दृष्टिकोण को जानने में।
- प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ समझने में।
- नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ समझने में।

नोट

12.2. प्रस्तावना (Introduction)

अनुमान के अनुसार छायावादी काव्य की समय सीमा 1918 ई. से 1936 ई. तक मानी जा सकती है। छायावाद का विकास द्विवेदीयुग कविता के उपरांत हिंदी में हुआ। रामचंद्र शुक्ल ने भी छायावाद का प्रारंभ 1918 ई. से माना है, इसका प्रमुख कारण यह है कि छायावाद के प्रमुख कवियों पंत, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाएं लगभग इसी वर्ष के आस-पास लिखनी प्रारंभ की थी। छायावादी काव्य का जन्म द्वि वेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ, क्योंकि द्विवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी, जबकि छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ कल्पना प्रधान एवं सूक्ष्म है।

12.3. छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ

12.1.1 छायावाद का अर्थ और परिभाषा

छायावाद का विकास द्विवेदीयुगीन कविता के उपरांत हिंदी में हुआ। मोटे तौर पर छायावादी काव्य की समय सीमा 1918 ई. से 1936 ई. तक मानी जा सकती है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने भी छायावाद का प्रारंभ 1918 ई. से माना है, क्योंकि छायावाद के प्रमुख कवियों पंत, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाएँ लगभग इसी वर्ष के आस-पास लिखनी प्रारंभ की थीं। 1918 में प्रसाद का **'झरना'** प्रकाशित हो चुका था तथा निराला की प्रसिद्ध कविता **'जूही की कली'** 1916 ई. में प्रकाशित हुई थी। पंत के **'पल्लव'** की कुछ कविताएँ भी 1918 में प्रकाशित हो चुकी थीं। प्रसाद की **'कामायनी'** 1935 ई. में प्रकाशित हुई तथा प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना 1936 ई. में हुई। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर छायावाद की अंतिम सीमा 1936 ई. मानना समीचीन है।

छायावादी काव्य का जन्म द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ, क्योंकि द्विवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी, जबकि छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ, कल्पनाप्रधान एवं सूक्ष्म है। प्रारंभ में **'छायावाद'** का प्रयोग व्यंग्य रूप में उन कविताओं के लिए किया गया जो अस्पष्ट थीं, जिनकी 'छाया' (अर्थ) कहीं और पड़ती थी, किंतु कालांतर में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी।

छायावाद की प्रमुख परिभाषाएँ

1. **आचार्य रामचंद्र शुक्ल–**''छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य वस्तु से होता है, अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। ... छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।''

2. **जयशंकर प्रसाद–**''जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।''

3. **डॉ. रामकुमार वर्मा–**''परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है।''

4. **डॉ. नगेंद्र–**''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।''

5. **महादेवी वर्मा–**''छायावाद तत्वत: प्रकृति के बीच जीवन का उद्‌गीथ है। ··· उसका मूल दर्शन सर्वात्मवाद है।''

6. **डॉ. रामविलास शर्मा–**''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा, वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है। यह विद्रोह मध्य वर्ग के तत्वावधान में हुआ था इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी हुई है।''

7. **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–**''छायावाद के मूल में पाश्चात्य रहस्यवादी भावना अवश्य थी। इस श्रेणी की मूल प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक भाव धारा की कविता से प्राप्त हुई थी और इसमें संदेह नहीं कि उक्त भावधारा की पृष्ठभूमि में ईसाई संतों की रहस्यवादी साधना अवश्य थी।''

उक्त परिभाषाओं के आलोक में छायावादी काव्य के निम्न लक्षण निरूपति किए जा सकते हैं–

1. छायावादी काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्ति रहती है।
2. छायावादी कविता प्रेम, सौंदर्य एवं प्रकृति का काव्य है।
3. छायावाद में स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता रहती है।
4. छायावाद की शैली-शिल्प एवं अभिव्यंजना पद्धति में नवीनता है।
5. छायावाद में स्वानुभूति की प्रधानता है।

उक्त लक्षणों के आलोक में छायावाद की एक सर्वमान्य परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है–

''प्रेम, प्रकृति और मानव सौंदर्य की स्वानुभूतिमयी रहस्यपरक सूक्ष्म अभिव्यंजना लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में जिस काव्य की रचना होती है, उसे छायावाद कहा जाता है।''

12.1.2 छायावादी काव्य की विशेषताएँ

छायावादी काव्य विषय-वस्तु एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ती काव्य से अलग है। इस काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का निरूपण निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. **आत्माभिव्यंजन–**छायावादी कवियों ने काव्य की विषय-वस्तु अपने व्यक्तिगत जीवन से ही खोजने का प्रयास किया। अपने जीवन के निजी प्रसंगों, घटनाओं एवं व्यक्तिगत भावनाओं को अनेक छायावादी कवियों ने काव्य की विषय-वस्तु बनाया। छायावादी कविता में वैयक्तिक सुख-दु:ख की खुलकर अभिव्यक्ति हुई। प्रसाद कृत 'आँसू' काव्य और पंत कृत 'उच्छवास' नामक कविता इस कथन के समर्थन में पेश की जा सकती है। पंत जी ने अपनी 'प्रिया' को मन मंदिर में बसाकर उसे पूजने का उल्लेख निम्न पंक्तियों में किया है–

विधुर उर के मृदु भावों से तुम्हारा कर नित नव शृंगार।
पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि, मूंद दुहरे दृग द्वार।। **–पंत**

निराला की कई कविताओं में उनके व्यक्तिगत जीवन का सत्य व्यक्त हुआ है **'राम की शक्ति पूजा'** में राम की हताशा, निराशा में कवि के अपने जीवन की निराशा की अभिव्यक्ति की हुई है। उन्हें जीवनभर लोगों के जिस विरोध को झेलना पड़ा उसकी अनुगूंज निम्न पंक्तियों में है–

''धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध।
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध। **–निराला**

महादेवी वर्मा की कविताओं में भी आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। वेदना की जो प्रधानता उनकी कविताओं में है, उस पर उनके जीवन की छाया है, ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा।

नोट

2. **सौंदर्य चित्रण**–छायावादी कवि मूलत: प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं, किंतु उनकी सौंदर्य भावना सूक्ष्म एवं उदात्त है। उसमें रीतिकालीन स्थूलता एवं मांसलता का नितांत अभाव है। सौंदर्य चित्रण में उनकी वृत्ति बाह्य वर्णनों में उतनी नहीं रमी, जितनी आंतरिक सौंदर्य के उद्‌घाटन में एवं भाव दशाओं के वर्णन में रमी। नेत्रों के सौंदर्य एवं उसके प्रभाव की व्यंजना निम्न पंक्तियों में प्रसाद जी ने अत्यंत आकर्षक ढंग से की है–

कमल से जो चारु दो खंजन प्रथम।
पंख फड़काना नहीं थे जानते।।
चपल चोखी चोट कर अब पंख की।
विकल करते भ्रमर को आनंद से।। **–प्रसाद**

शारीरिक अंगों की कांति का वर्णन भी उसमें बड़े आकर्षक ढंग से हुआ है। कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन निम्न प्रकार किया है–

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग।। **–प्रसाद**

यहाँ कवि ने 'सुकुमार अंग' (उरोजों) का वर्णन तो किया है, किंतु वह सांकेतिक शैली में ही किया गया है। सौंदर्य परमात्मा के द्वारा मानव को प्रदत्त सात्विक 'वरदान' है। प्रसाद के अनुसार, **''उज्ज्वल वरदान चेतना का सौंदर्य जिसे सब कहते हैं।''** सौंदर्य की अभिव्यक्ति सांकेतिक शैली में उन्होंने की है। श्रद्धा का सौंदर्य फूलों के पराग, सुगंध एवं मकरंद से युक्त है–

कुसुम कानन अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार।। **–प्रसाद**

3. **शृंगार-निरूपण**–द्विवेदीयुगीन कविता में शृंगार-निरूपण बहुत कम हुआ है और जहाँ हुआ है वहाँ भी मर्यादित रूप में ही है। छायावाद में आकर कविता में पुन: शृंगार की प्रतिष्ठा हुई। इन कवियों ने शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों के आकर्षक चित्र अंकित किए। निराला ने **'जूही की कली'** नामक कविता में प्रकृति के प्रतीकों से प्रेम व्यापारों का निरूपण किया–

निर्दयी उस नायक ने
निपट निठुराई की।
झोंकों की झाड़ियों से,
सुंदर सुकुमार देह,
सारी झकझोर डाली।। **–निराला**

पंत के काव्य में प्रेम और शृंगार भावना की बड़ी सहज अभिव्यक्ति हुई है। प्रिया का आकर्षण मन को पागल कर देता है–

''तुम में जो लावण्य मधुरिमा जो असीम सम्मोहन
तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन।
नहीं जानती क्या निज बल तुम, जिन अपार आकर्षण?'' **–पंत**

वियोग शृंगार के अति भव्य चित्र प्रसाद कृत **'आँसू'** में उपलब्ध होते हैं। प्रिया के वियोग से मन की विकलता कितनी तीव्र हो गई है, इसका चित्र निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

नोट

झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नरिद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ घेरा डाला।। **–प्रसाद**

× × ×

रो-रोकर सिसक-सिसक कर कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते करते जानी अनजानी।। **–प्रसाद**

कविवर पंत ने भी वियोग-व्यथा का मार्मिक वर्णन अपनी कविताओं में किया है। वे तो यह मानते हैं कि कविता का जन्म ही वियोग व्यथा से हुआ होगा। उस प्रेमी की आहों ने ही कविता का रूप धारण कर लिया होगा–

''वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
निकलकर नयनों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।।'' **–पंत**

प्रिया का ध्यान हृदय में वेदना की कसक उत्पन्न कर उसे अधीर कर देता है–

''तड़ित सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान,
प्रभा के पलक मार उर चीर।
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर,
मुझे करता है अधिक अधीर।
जुगुनुओं से उड़ मेरे प्राण,
खोजते हैं तब तुम्हें निदान।।'' **–पंत**

महादेवी वर्मा के काव्य में तो विरह एवं वेदना की ही अधिकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रृंगार निरूपण छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति रही है।

4. **नारी भावना**–छायावादी कवियों ने नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण अपनाकर समाज में उसके सम्मानीय स्थान को प्रतिष्ठित किया। रीतिकालीन कवियों ने नारी को विलास की वस्तु और उपभोग की सामग्री मात्र माना, जबकि छायावादी कवियों ने उसे प्रेरणा का पावन उत्सव मानते हुए गरिमा प्रदान की। वह दया, क्षमा, करुणा, प्रेम की देवी है और अपने इन गुणों के कारण श्रद्धा की पात्र है–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में।'' **–प्रसाद**

पंत ने **'देवि, माँ, सहचरि, प्राण'** कहकर नारी के प्रति अपने आदर का परिचय दिया। प्रसाद जी के हृदय में नारी का बहुत ऊँचा स्थान था। निम्न पंक्तियों से उनके विचारों को जाना जा सकता है–

''तुम देवि! आह कितनी उदार,
वह मातृ मूर्ति है निर्विकार।
हे सर्वमंगले! तुम महती,
सबका दुःख अपने पर सहती।।'' **–पंत**

नोट

निराला ने भी नारी को निराश पुरुष के हृदय में आशा का संचार करने वाली शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। **'राम की शक्ति पूजा'** में राम के निराश हृदय में सीता की स्मृति मात्र से आशा का संचार होते दिखाया गया है–

''ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत।
जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत।।'' **–निराला**

5. **रहस्य भावना**–छायावादी काव्य में रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी प्रमुख रूप से उपलब्ध होती है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने इसी कारण से 'छायावाद' का अर्थ 'रहस्यवाद' माना है। प्राय: सभी छायावादी कवियों ने अज्ञात सत्ता के प्रति 'जिज्ञासा' के भाव व्यक्त किए हैं। पंत की **'मौन निमंत्रण'** कविता में इसकी अभिव्यक्ति बहुत सुंदर ढंग से हुई है–

''न जाने कौन अए द्युतिमान,
जान मुझको अबोध अज्ञान।
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान।।'' **–पंत**

प्रसाद जी ने **'कामायनी'** में स्थान-स्थान पर उस अज्ञात सत्ता के अस्तित्व का बोध कराया है। पता नहीं वह अज्ञात सत्ता कौन है, कैसी है, और क्या है–

''हे अनंत रमणीय कौन तुम,
यह मैं कैसे कह सकता?
कैसे हो, क्या हो, इसका तो,
भार विचार न सह सकता।।'' **–प्रसाद**

निराला की **'तुम और मैं'** कविता में उस परमात्मा से अनेक प्रकार के संबंध जोड़े गए हैं। यदि वह हिमालय है तो मैं उससे नि:सृत होने वाली गंगा, यदि वह हृदय के भाव हैं तो मैं उससे जन्म लेने वाली कविता–

तुम तुंग हिमालयशृंग और मैं चंचल गति सुरसरिता।
तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कांत कामिनी कविता।। **–निराला**

महादेवी के काव्य में भी रहस्यवाद की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है।

6. **प्रकृति चित्रण**–छायावादी कवि प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। इन कवियों ने प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप करते हुए उसे हँसते-रोते हुए भी दिखाया है–

''अचिरता देख जगत की आप,
शून्य भरता समीर नि:श्वास।
डालता पातों पर चुपचाप,
ओस के आँसू नीलाकाश।।'' **–पंत**

यहाँ वायु को ठंडी साँस भरते हुए, आकाश को रोते हुए दिखाया गया है। पंत जी ने तो प्रकृति को ही अपनी काव्य-प्रेरणा माना है और वे प्रकृति सौंदर्य को नारी सौंदर्य पर वरीयता देते हैं। **'मोह'** नामक कविता में वे स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि नारी सौंदर्य में आकर्षण होता है, पर वह इतना नहीं कि प्रकृति सौंदर्य की उपेक्षा करवा सके–

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ 'लोचन',
भूल अभी से इस जग को! **–पंत**

पंत जी प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। प्राकृतिक सुषमा का चित्रण उन्होंने प्रकृति को आलंबन बनाकर अपनी अनेक कविताओं में किया है। वस्तुत: आलंबन रूप में प्रकृति निरूपण छायावादी प्रकृति चित्रण की प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। पंत की 'बादल' कविता में आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण किया गया है। 'कामायनी' में प्रसाद जी ने 'हिमालय' का निम्न चित्र अंकित किया है–

नोट

"संध्या घन माला की सुंदर,
ओढ़े रंग-बिरंगी छींट।
गगन चुंबिनी शैल श्रेणियां,
पहने हुए तुषार किरीट।।" **–प्रसाद**

आलंबन रूप के अतिरिक्त उद्दीपन रूप में, अलंकार के रूप में, प्रतीकात्मक रूप में तथा मानवीकरण रूप में प्रकृति निरूपण छायावादी काव्य में हुआ है। **डॉ. रामकुमार वर्मा** ने इसी कारण छायावाद को प्रकृतिवाद की संज्ञा देते हुए कहा है–"प्रकृति का क्षेत्र ही इन कवियों की कविता का क्षेत्र है। ऐसी स्थिति में इस कविता को यदि छायावाद की बजाय 'प्रकृतिवाद' कहें तो अधिक युक्तिसंगत होगा।"

7. **दु:ख और वेदना की विवृत्ति**–छायावादी काव्य में दु:ख और वेदना भाव की अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी तो वेदना की ही कवयित्री हैं। वे अपने वेदना विह्वल हृदय की तुलना 'मेघखंड' से करती हुई कहती हैं–

"मैं नीर भरी दु:ख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।।" **–महादेवी वर्मा**

महादेवी वर्मा के गद्य-पद्य में जो दु:खवाद और करुणा के भाव दिखाई पड़ते हैं, वे बौद्ध दर्शन के प्रभावस्वरूप माने जा सकते हैं। प्रसाद के **'आँसू'** काव्य में भी वेदना की ही कहानी है। उन्होंने अपनी पीड़ा को ही काव्य के रूप में व्यक्त किया है–

"जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।।" **–प्रसाद**

पंत ने **'परिवर्तन'** कविता में यह स्वीकार किया है कि संसार में दु:ख की अधिकता है, यहाँ शांति जीवन पर्यन्त प्राप्त नहीं हो सकती–

"यहाँ सुख सरसों शोक सुमेरु,
अरे जग है जग का कंकाल।
वृथा रे यह अरण्य चीत्कार,
शांति सुख है उस पार।।" **–पंत**

8. **राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति**–छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता के स्वर भी मुखरित हुए हैं। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में जो गीत योजना की है, उसमें राष्ट्रीय भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने भारत के अतीत गौरव के चित्र अंकित करते हुए देश की महिमा का बखान किया है–

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।। **–प्रसाद**

नोट

माखनलाल चतुर्वेदी के गीतों में राष्ट्रभक्ति अपने चरम उत्कर्ष पर है। **'पुष्प की अभिलाषा'** में उन्होंने एक पुष्प की यह इच्छा व्यक्त की है कि उसे शहीदों के चरणों तले आने का सौभाग्य मिले–

"मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर सीस चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।।"

–माखनलाल चतुर्वेदी

छायावादी कविता की इस राष्ट्रीय चेतना को देखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कवि अपने युग से नितांत असंपृक्त नहीं थे।

9. **शैलीगत प्रवृत्तियाँ**–छायावादी काव्य विषय-वस्तु एवं शिल्प–दोनों ही दृष्टियों से नवीनता लिए हुए है। लाक्षणिक भाषा का प्रयोग, प्रतीकात्मक शैली, उपचारवक्रता एवं नवीन अलंकार विधान के कारण इस काव्य में शिल्पगत नवीनता दिखाई पड़ती है। पंत की अग्र पंक्तियों में प्रतीकात्मकता एवं लाक्षणिकता को देखा जा सकता है–

अभी तो मुकुट बंधा था माथ
हुए कल ही हल्दी के हाथ।
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी चुंबन शून्य कपोल।।
हाय रुक गया यहीं संसार
बना सिंदूर अंगार।
वातहत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार।।

–पंत

यहाँ सुकुमार लता उस नवयुवती का प्रतीक है जिसका सुहाग उजड़ गया है। सिंदूर का अंगार बनना उसके वैधव्य को सूचित करता है, अतः भाषा में लाक्षणिकता का समावेश है। छायावादी काव्य में पारंपरिक अलंकारों के साथ-साथ विशेषण विपर्यय, मानवीकरण, ध्वन्यर्थ व्यंजना और विरोधाभास अलंकार की प्रचुरता से प्रयुक्त किए गए हैं। अमूर्त उपमान भी इस काव्य की विशेषता है। मुक्तक गीति शैली और चित्रोपम भाषा के साथ-साथ नवीन छंद विधान भी इस काव्य की अपनी विशेषताएँ हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि छायावाद हिंदी काव्य का गौरवपूर्ण अध्याय है तथा प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इस युग के ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनके योगदान से हिंदी साहित्य को श्री समृद्ध प्राप्त हुई है।

12.1.3 उत्तर-छायावाद

वास्तव में इस अवधि के छायावाद का इतिहास मूलतः निराला और पंत के काव्य-विकास का इतिहास हैं। यों छायावाद की शैली में मिलने वाले और भी बहुत-से लोग आए, किंतु उनमें अपना कोई उन्मेष नहीं। वे इस धारा को स्फीति भले ही दे सके हों, कोई वैशिष्ट्य नहीं प्रदान कर सके। इसलिए उनकी चर्चा अनपेक्षित है। महादेवी जी की 'दीपशिखा' उनकी रचनाओं के क्रम में ही अगली कड़ी के रूप में आई, इसलिए उन्हें भी पहले की महादेवी से मूलतः अलग नहीं किया जा सकता और फिर उसके बाद तो वे मौन हो गईं।

निराला–निराला के गीत छायावाद से अलग न हटकर उसकी संभावनाओं से निर्मित हैं। किंतु उनमें एक बहुत बड़ी शक्ति का विकास होता गया है–वह है लोकोन्मुखता। निराला की छायावाद कविताओं में निराला का लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारंभ से ही झलकता रहा है। निराला का जीवन संघर्षमय तथा लोक-सम्पृक्त रहा है, इसलिए वे स्वभावतः प्रेम-सौंदर्य के बोध के साथ-साथ जीवन के अन्य अनुभवों को अपने में समेट लेते हैं और व्यक्तिगत प्रणय के ही गीत न गाकर लोक-जीवन के सुख-दुःख को,

यातना और संघर्ष को गहराई से उभारते हैं और उनकी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति भी एकांतवासिनी न रहकर प्रायः लोकगंध से उष्ण हो उठती है। निराला की यह विशेषता प्रस्तुत अवधि में अधिक विकसित होती गई है उनकी यह लोकोन्मुखता दो रूपों में आई–1. छायावादी से एकदम अलग हटकर कवि ने प्रगतिशील कविताएँ लिखीं, 2. उनकी छायावादी काव्यधारा का स्वर अधिक लोकोन्मुख होता गया। प्रगतिवादी कविताओं में छंद, भाषा और भावभूमि सभी छायावाद के प्रभाव से मुक्त हैं। 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म-पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' और 'नए पत्ते' की अधिकांश कविताएँ इस प्रकार की कविताएँ हैं। इनमें प्रगतिशीलता अपने दार्शनिक रूप में नहीं हैं, बल्कि लोकानुभूतियों के रूप में है। इन कविताओं की भाषा लोक की है, मुहावरे लोक के हैं, शैली लोक की है। इनमें लोककथात्मक तथा संवादात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार निराला इस बात को समझते थे कि लोक-जीवन को केवल उसके भाव, दृश्य, व्यापार में नहीं लिया जा सकता; उसके लिए उसकी भाषा भी आवश्यक होती है दूसरी ओर, पंत इस बात को समझते हुए भी इसे चरितार्थ नहीं कर सके।

नोट

'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना' आदि में संकलित इधर की छायावादी कविता में निराला ने एक ओर तो स्वानुभूतिपरक गीत लिखे हैं तथा दूसरी ओर विजयलक्ष्मी पंडित, प्रेमानंद जी, संत रविदास, प्रसाद जी, महात्मा बुद्ध, आदि विविध क्षेत्रों के व्यक्तियों पर कविताएँ लिखी हैं। ये गीत कई तरह के हैं–इनमें प्रेम की संवेदना भी है और प्रार्थना-परकता भी। अन्य प्रकार की मानवीय संवेदनाएँ भी इनमें व्यक्त हुई हैं। ये सभी बातें निराला की 1938 ई. से पहले की कविताओं में भी हैं, उनका अनुपात भले ही थोड़ा भिन्न हो। 'तुलसीदास' इस अवधि की इनकी विशिष्ट देन है। इसमें भारत को सांस्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का संकल्प है। निराला की इस अवधि की नई देन हैं–उनकी लोकवादी कविताएँ, जो वास्तव में कविता की उपलब्धि के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती वरन् वस्तु और भाषा के एक नए प्रयोग के रूप में ही महत्त्व प्राप्त करती हैं। ये कविताएँ एक ठहराव को तोड़ती हैं और कवि को पुनः समग्र भाव से जन-जीवन से जोड़ती हैं। निराला की इस अवधि की कविताओं में उनकी जीवनानुभूति के जो स्वर उभरे उनमें टूटन और पराजय भी थी। टूटन और पराजय की यह प्रवृत्ति कवि को भक्ति की ओर उन्मुख करती है। साथ ही कवि का असंतुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन और उलझाव का कुछ ऐसा मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है कि ये कविताएँ उलझें प्रभाव से ग्रस्त हो गईहैं।

सुमित्रानंदन पंत–पंत जी के इस काल के काव्य-साहित्य का विश्लेषण किया जाये तो ऐसा प्रतीत होगा कि ये अपने चिंतन और विषय में अधिक विकासशील रहे और चूँकि ये अपने संस्कार और भाषा में मूलतः छायावादी ही रहे, अतः यह कहा जा सकता है कि पंत के माध्यम से छायावाद को इस अवधि में नया चिंतन और नया विषय-जगत् प्राप्त हुआ है। सन् 1936 में 'युगांत' की घोषण कर पंत ने 1939 में 'युगवाणी' और 1940 में 'ग्राम्या' की रचना की। इसलिए वे मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जन-जीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुए। यहाँ निराला और पंत के अंतर को समझ लेना चाहिए। निराला ने चिंतन के माध्यम से नहीं, संवेदना और अनुभव के माध्यम से जन-जीवन को ग्रहण किया; इसलिए उनकी कविताओं में मार्क्सवाद या समाजवाद का दर्शन कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं पा सका, वहाँ जन-जीवन अपने समस्त संवेदन के साथ उभरा। दूसरी ओर पंत ने मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्तर पर स्वीकार किया। वे प्रायः मार्क्सवादी सिद्धांतों को ही व्यक्त करते रहे हैं–

कहता भौतिकवाद वस्तु जग का कर तत्त्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अंतर दर्पण,
स्थूल सत्य आधार सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अंतर परिवर्तन।

कहना न होगा कि कवि ने मार्क्सवादी दृष्टि से आलोक में गाँव के जीवन की विविध यथार्थ-छवियों का बड़ा सुंदर चित्र अंकित किया है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि कुशल शिल्पी पंत ने गाँव के जीवन-यथार्थ को जितना उसके रंग-रूप में पकड़ा है, उतना भीतर की चेतना में नहीं।

यह बात तब और भी स्पष्ट हो उठती है जब पंत जी 'ग्राम्या' से आगे की यात्रा में अरविंद-दर्शन से प्रभावित हो उठते हैं। बीच में प्रगतिवाद के भौतिक दर्शन की ओर भटके हुए उनके विचार पुनः आध्यात्मिक

नोट

लोक की ओर उठने लगते हैं। इस प्रकार विचार के स्तर पर छायावाद को एक नई दिशा और समृद्ध आधार प्राप्त होता है। कवि मार्क्स के भौतिकवाद से संतुष्टि नहीं है, किंतु फिर भी उसे आवश्यक मानता है। कवि आरंभ से ही मनुष्य-मात्र के सुख, प्रेम, शांति का स्वप्न देखता रहा है। इस वायवी स्वप्न को उसने रूप देना चाहा तो मार्क्सवाद में उसे आलोक दिखाई पड़ा, किंतु पुनः उसे ऐसा लगा कि मार्क्सवाद एकांगी है, केवल भौतिक योगक्षेम की व्यवस्था कर सकता है। अतः कवि उसे आवश्यक मानते हुए भी पर्याप्त नहीं मानता और अरविंदवाद में भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद का समन्वय ढूँढ़ता है। कवि ने 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'शिल्पी', 'लोकायतन' आदि परवर्ती कृतियों में इसी समन्वय को स्वर दिया है, इस विकास-यात्रा में पंत का काव्य-पक्ष आहत हो गया है, धारणा-पक्ष उठता गया है। कारण यही है कि वे मानव-समाज की समस्याओं उनके समाधान और नए विचारों को धारणा और आकांक्षा के स्तर पर स्वीकार करते हैं, अनुभूति के स्तर पर नहीं। इसलिए चाहे मार्क्सवाद हो, चाहे अरविंदवाद–वह पंत-काव्य को समृद्ध बनाने में सहायक प्रायः नहीं हुआ है।

महादेवी वर्मा–महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' में उनकी क्रमागत भावधारा का ही उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। प्रेम उनका मुख्य विषय है। कवयित्री ने संयोग और वियोग में उभरनेवाले प्रेम के अनेक कोणों को अपने अनुभव के आलोक में देखा है। वेदना महादेवी की मूल संवेदना है, यह वेदना विरहजन्य है। करुण वेदना और निराशा से आक्रांत इनका प्रारंभिक काव्य 'दीपशिखा' में कुछ आलोक पा सका है–आशा का, उल्लास का, मिलन का। यथा–

(अ) *सब बुझे दीपक जला लूँ।*
घिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूं।

(आ) *हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन*
अगरु धूम सी सांस सुधिगंध सुरभित।

महादेवी में गीतिकाव्य के उत्कर्ष की सुंदर भावनाएँ हैं, लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुछ कुंठित कर देता है। कवयित्री के पास सीमित संवेदनाएँ हैं, इन्हें वह भिन्न-भिन्न प्रतीकों और रूपकों से व्यक्त करती है। ये प्रतीक और रूपक भी बहुत सीमित और अभिजात हैं। कवयित्री की लौकिक संवेदनाएँ रहस्यवादी आभास से लिपटकर निश्चय ही नए अर्थ का विस्तार करती हैं, किंतु साथ ही अपनी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता और तीव्रता खो देती हैं। दीप, चंदन, मंदिर, क्षितिज, आकाश, करुण, धूल, मेघ, विद्युत्, सागर आदि प्रतीक और शब्द बार-बार आते हैं और रहस्यात्मक संकेत में उलझ जाते हैं। इन निजी और छायावादी सीमाओं के बावजूद महादेवी जी छायावाद की विशिष्ट और समर्थ कवयित्री हैं और 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट कृति। रहस्य और संकोच के आवरण के बावजूद कवयित्री की अंतरंग निजता गीतों में बहती रहती है। जहाँ कहीं वह पारदर्शी हो जाती है या जहाँ समग्र दृश्य सिमटकर उसी की ओर संकेत करने लगते हैं, वहाँ वे बहुत उत्कृष्ट गीतों की रचना करती हैं। महादेवी की दूसरी विशेषता है–सूक्ष्म चित्रात्मकता। ये चित्र रूपजगत् और भावजगत्–दोनों के हैं किंतु रूपजगत् के चित्र भी कवयित्री के मानसिक संदर्भ में ही नियोजित होते हैं। लोक-परिवेश और लोकभाषा से दूर, सीमित आत्मानुभूति की परिधि में विचरण करनेवाले, भाषा की अभिजात छवि से मंडित ये गीत शब्द-चयन, पद-संतुलन, बिंब-ग्रहण, प्रांजलता, कोमलता और स्वर-लय में बहुत विशिष्ट हैं।

जानकीवल्लभ शास्त्री–शास्त्री जी मूलतः गीतकार हैं और इनके गीतों में छायावादी गीतों के ही संस्कार शेष हैं। ये गीत छायावादी गीतों से अधिक खुले हुए अवश्य हैं, किंतु इनकी संवेदना और गूंज-अनगूंज प्रायः वैसी ही है। परंपरागत दर्शन संवेदन और भाषा से निर्मित ये गीत उत्तर छायावाद युग के गीतों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं और इनका अपना आकर्षण है। 'रूप अरूप', 'शिप्रा', 'मेघगीत' और 'अवंतिका' इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं।

इन कवियों के अतिरिक्त उत्तर-छायावाद के अन्य उल्लेख्य कवि हैं–रामकुमार वर्मा ('अंजलि', 'रूपराशि', 'चित्ररेखा', 'चंद्रकिरण' और 'एकलव्य') सुमित्राकुमारी सिन्हा, ('विहाग', 'पंथिनी') और विद्यावती कोकिल ('अंकुरिता', 'सुहागिन')।

12.1.4 व्यक्तिवादी गीति कविता

नोट

इस धारा के कवियों तथा छायावादी कवियों में दृष्टि और विषय की बड़ी समानता है। इन कवियों की भी दृष्टि रोमानी है, वस्तुजगत् के प्रति इनकी भी प्रतिक्रिया अत्यंत भावात्मक है। ये भी वस्तुजगत् से नहीं, वस्तुजगत् की प्रक्रिया से उत्पन्न अपने निजी सुख-दुख के आवेग से संबद्ध थे; इसलिए इनकी कविताओं में भी भयंकर आत्म-संपृक्ति और उत्तेजना मिलती है। इनका भी विषय मूलत: सौंदर्य और प्रेम तथा तज्जन्य उल्लास और विषाद की अनुभूति है। इनकी भी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम गीत ही है क्योंकि इनके भी काव्य-विषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। किंतु इन कृतियों में छायावादी कविता जैसा संकोच, रहस्यात्मकता और आदर्शवादिता नहीं है, साहस के साथ सीधे साफ तौर पर अपने निजी प्रेम-संवेग तथा सुख-दु:ख को कहने की आकुलता है। इनकी वेदना छायावाद की घिसती हुई वेदना की तरह सामान्य नहीं, वरन् निजी प्रतीत होती है। अत: उससे अनुभव का एक विशिष्ट बिंब उभरता लक्षित होता है। यह अवश्य है कि इनके ये अनुभव-बिंब छायावाद के सुंदर अनुभवों-बिंबों के समान सूक्ष्म, संश्लिष्ट और गहरे नहीं हैं, किंतु जो कुछ है वह छल नहीं ओढ़ता, उधड़े ही रूप में उभरकर सहज प्रवाह का सुख देता है। छायावादी कविता भी प्राय: 'मैं' के माध्यम से अपना अनुभव उभारती है और व्यक्तिवादी गीतिकविता भी। किंतु छायावाद का मैं संकोच या मर्यादा के आतंक का अनुभव करने के कारण तीव्रता से आलोकित होने के स्थान पर मंद-मंद दीप्त होता है जबकि व्यक्तिवादी गीतिकविता का 'मैं' अपने समूचे राग-विराग के साथ निर्व्याज भाव से फूट चलता है।

यदि हम इस धारा में आनेवाली कृतियों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि लौकिक प्रेम इनकी केंद्रीय वृत्ति है। प्रेम के संयोग-वियोगजन्य उल्लास, पीड़ा, उदासी, टूटन, असंतोष आदि का सघन स्वर इन कविताओं में मुखर हुआ। परिस्थिति, अनुभव और संस्कार के अनुसार कवियों के स्वरों में भिन्नता अवश्य है, किंतु मूल वृत्ति में अंतर नहीं। इनका प्रेम किसी लौकिक सौंदर्य-आलंबन पर ठहरा होने के कारण अधिक मूर्तरूप धारण करता है। इनका हर्ष-विषाद न तो आदर्श का छल ओढ़ता है और न धरती-आकाश के बीच झुकता है, वह शुद्ध धरती पर यात्रा करता है—धरती के परिवेश के बीच, और अपने-अपने रूप में बहुत ही उघड़ा हुआ होता है। बच्चन के 'निशा-निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' काव्य यदि प्रेम के अवसाद के घनत्व को मुखर करते हैं तो 'मिलन-यामिनी' मिलन की मादकता और उमंग को। नरेंद्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में यदि लौकिक विरह की व्यथा की प्रधानता है तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौंदर्य, भोग और संयोग की ऊष्मा के मादक चित्र भी हैं। यह स्थिति अंचल, नवीन, दिनकर आदि की इस धारा में आनेवाली कृतियों में भी देखी जा सकती है।

वास्तव में इस धारा की कृतियों का मूल स्वर प्रेम है और प्रेमजन्य व्यथा तथा उदासी यहाँ से वहाँ तक व्याप्त है। इनकी स्वच्छंद वृत्ति सौंदर्य और प्रेम की भूख लिए उड़ती थी, वह भूख तृप्त नहीं हो पाती थी, स्वच्छंद उड़ान सामाजिक इतिबंधों से टकराती थी और टूटकर विरह की पीड़ा बन जाती थी। कवि अनुभव करता था कि संसार को उसके ये गान वासना के गान लग रहे हैं, इसलिए उसे स्वीकार्य नहीं हैं। किंतु, कवि इन्हें अपने अनुभव का गान मानता था। इन अनुभव-सत्यों को उसका स्वच्छंद हृदय अनियंत्रित भाव से गाना चाहता था। बच्चन ने अपने और समाज के इस तनाव को स्पष्ट अनुभव करते हुए 'मधुकलश' में कहा है—

(अ) *कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा।*

(आ) *वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी?*

(इ) *शत्रु मेरा बन गया है छलरहित व्यवहार मेरा।*

इस धारा की कृतियों में निराशा और उदासी का जो स्वर है, वह केवल प्रेममूलक नहीं है, वह जीवन के अन्य संदर्भों में भी मुखर हुआ है। देश की पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक रिक्तता के भयंकर अहसास से गुजरता हुआ अकेला, स्वच्छंद, संवेदनशील युवा मानस बार-बार अपने को टूटता हुआ पा रहा था। उसका व्यक्तिवादी आक्रोश-स्वर सारी असुंदर वस्तुओं को अस्वीकार करता हुआ, और स्वयं कहीं स्वीकृत न होता हुआ, अपने ही में लौट आता था। वह आत्मपीड़न, टूटन, कुंठा की एक नई पर्त लपेट

नोट

लेता था और उसे गाता चलता था। इनके पास जीवन-दृष्टि नहीं थी—न तो पुरानी आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि और न नवीन समाजवादी दृष्टि। ये कवि अपने अनुभवों से परिचालित हो रहे थे, उनके अनुभव भावुक हृदय के अनुभव थे। उनकी दृष्टि रोमानी थी, अतः वे व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके, न आध्यात्मिक आदर्शों से। जीवन-दृष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी अनुभव निराशा, मृत्यु की छाया और नियति-बोध से ग्रस्त हैं। ये अनुभव जहाँ अपनी तीव्रता से सूक्ष्म, परंतु खुले हुए बिंबों की रचना में एक नए साहित्यिक सौंदर्य की सृष्टि करते हैं वहाँ अपने आत्यंतिक अकेलेपन, उदासी और दुहराव में क्षयोन्मुख दिखने लगते हैं और जहाँ ये काव्यात्मक दृष्टि से सपाट हो जाते हैं वहाँ अपनी सार्थकता किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाते—

कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, किंतु अकेला आज मैं। (*एकांत संगीत*)

वह चारों ओर अवसाद देखता है। जो अवसाद है, वह खुला हुआ लौकिक अवसाद है। कवि के साथ ईश्वर नहीं है, देवता नहीं है, रूढ़ समाज नहीं है, संस्था नहीं है; इसलिए वह किसी प्रकार के आश्रय का आभास नहीं पाता, उसे यदि कोई सहारा नजर आता है तो केवल प्रेयसी से मिलन का, किंतु वह भी कहाँ हो पाता है? इसलिए कवि अपनी नंगी पीड़ा, असफलता, निराशा को प्रत्यक्ष, बेलौस झेलता हुआ जीवन को असफल और निराधार अनुभव करता है।

इस प्रकार की व्यक्तिवाद अनुभव-यात्रा के दो परिणाम दिखाई पड़ते हैं—एक तो यह विश्वास कि जीवन क्षणभंगुर है; इस अवसाद के विस्तार में यदि उल्लास के कुछ क्षण मिल जाते हैं तो उन्हें मस्ती से भोगो, आगे-पीछे मत देखो। दूसरा यह कि कवि अपने गम को गलत करने के लिए मधु का सहारा लेता है; और सारे सहारे तो छूट चुके हैं। इतना ही नहीं, वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास को उत्तेजना को तीव्र करने के लिए भी मधु का पान करना चाहता है। यह मधु धीरे-धीरे इतना आत्मीय हो जाता है कि वह अन्य जीवन-सत्यों का प्रतीक बन जाता है, जैसा कि 'मधुशाला', 'मधुबाला' आदि में हुआ है।

इस धारा की प्रमुख कृतियों में कहीं-कहीं प्रगतिवादी कविता का-सा विद्रोह ध्वनित हुआ है, जैसे बच्चन के 'बंगाल का काल', 'नरेंद्र शर्मा के 'अग्निशश्य', अंचल की 'किरण बेला', शंभुनाथ के 'मन्वंतर' आदि में। इन कवियों में लक्षित होनेवाला विद्रोह का स्वर व्यक्तिगत अस्वीकृति तथा सामाजिक असंतोष—दोनों रूपों में है। लेकिन इस धारा का समस्त विद्रोह-स्वर मूलतः समान है। उसमें व्यक्तिगत भावावेश अधिक है, सामाजिक दर्शन और रचनात्मक चिंतन कम।

वैयक्तिक गीतिकविता की अभिव्यक्तिमूलक सादगी उसकी एक बहुत बड़ी देन है। कवि सीधे-सादे शब्दों, परिचित चित्रों और सहज कथन-भंगिमा के द्वारा अपनी बात बड़ी सफाई से कह देता है। इसलिए कवि की शक्तियाँ और अशक्तियाँ दोनों बड़ी स्पष्टता से उभरती है। शक्तियाँ अस्पष्ट बिंबों में उलझकर अपनी तीव्रता और प्रभाव नहीं खोती और अशक्तियाँ रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर महान् होने का आभास नहीं दे पातीं। यद्यपि इन कवियों की संवेदना व्यक्तिवादी है, किंतु वे अपने को जिस माध्यम-परिवेश, प्रकृति-चित्र, बिंब उपमा, भाषा आदि—के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा अति परिचित होता है, लोक के निकट का होता है, अतएव मांसल और मूर्त प्रतीत होता है। यद्यपि इस धारा की कविता की भी भाषा मूलतः संस्कृतनिष्ठ है, किंतु उसके शब्द या पद हमारे निकट के लगते हैं। बोलचाल के शब्द और मुहावरे भी इनमें पर्याप्त मात्रा में आए हैं। कुल मिलाकर यह जीवंत भाषा प्रतीत होती है।

हरिवंशराय 'बच्चन'—बच्चन इस धारा के सर्वोत्तम कवि हैं। इस धारा की समस्त संभावनाएँ और सीमाएँ बच्चन में पूँजीभूत है। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं इसलिए उनकी जिन कृतियों में आत्मानुभूति की सघनता है, वे अपने प्रभाव में तीव्र और मर्मस्पर्शी हैं। जिन कृतियों में आत्मानुभूति के साथ अवधारणाओं का संयोग होता चला है, उनमें प्रभाव की अन्विति टूट-टूट गई है। लगता है कवि अपनी बात कहने के बाद उसे 'जनरलाइज़्ड' करने लगता है। 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' और 'मिलन यामिनी' के गीत इस दृष्टिकोण से जहाँ गीतिकाव्य की उपलब्धियाँ है वहाँ अवधारणाएँ अनुभूतियों के रंग में भीग गई

हैं। कवि ने स्वानुभूतिजन्य सुख-दु:ख, सौंदर्य और प्रेम के उन्मुक्त सहज गीत गाए हैं, किंतु उसका स्वर यहीं तक सीमित नहीं है। वह सामाजिक विसंगतियों का भी चित्रण करता है तथा उनके प्रति विद्रोह भी करता है।

प्रार्थना मत कर मत कर मत कर
युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित अविचल प्रतिफल
मनुज पराजय के स्मारक हैं
मठ, मस्जिद, गिरजाघर। (एकांत संगीत)

नोट

किंतु लगता है विद्रोह या सामाजिक सत्य-चित्रण बच्चन के स्वभाव में नहीं अंटते, इसके लिए जिस सामाजिक जीवन-भोग और बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह बच्चन या इस धारा के किसी कवि में नहीं है। बच्चन के गीत जहाँ अपनी सहज भाषा और अनुभूति की निश्छलता के कारण गीतिकाव्य को नई गरिमा प्रदान करते हैं वहाँ कहीं-कहीं उत्तेजना, भाषा के सपाटपन, शब्दों, बिंबों के अपव्यय तथा स्फीति के कारण बहुत प्रभावहीन सिद्ध होते हैं। जैसे 'जो बीत गई सो बीत गई' गीत का आरंभ एक अवधारणा से होता है और इस अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कवि ने अनावश्यक रूप से तीन चित्र लिए हैं। कहा जा सकता है कि बच्चन के काव्य-सौंदर्य का धरातल बहुत विषम है–कहीं काफी ऊँचा, कहीं नीचा या सपाट। अपनी धारा के अन्य कवियों से बच्चन इस बात में अलग हैं कि जहाँ और लोगों ने बाद में अपने को दुहराया है, वहाँ बच्चन ने निर्मम भाव से अपनी जानी-पहचानी दुनिया को छोड़कर यथार्थ की नई दुनिया में प्रवेश किया है और उसके अनुकूल भाषा की तलाश की है।

नरेंद्र शर्मा–नरेंद्र शर्मा के गीतों का अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी चित्रात्मकता और आत्मीयता है, उनके गीतों का सुख-दु:ख सीधे-सीधे प्रेम-पात्र को निवेदित है, बीच में न कोई अवधारणा आती है और न छल। इन गीतों का एक परिवेश होता है और वह परिवेश कवि का ही नहीं, हमारा भी निकट का परिचित होता हैं वह कवि के अनुभवों को जीवंतता प्रदान करता है। कुल मिलाकर नरेंद्र शर्मा के गीत अधिक अपने मालूम पड़ते हैं। प्रकृति का बहुत चटक और सुपरिचित परिवेश इन्हें घेरे रहता है। शर्मा जी के अपने आत्मीय क्षेत्र हैं–प्रकृति-सौंदर्य, मानव-सौंदर्य और उससे उत्पन्न विरह-मिलन की अनुभूतियाँ–

फिर फिर रात और दिन आते
फिर फिर होता सांझ सवेरा,
मैंने भी चाहा फिर आए
बिछुड़ा जीवन साथी मेरा।
कच्चे धागे सा सुख सपना
टूट गया सो टूट गया (पलाशवन)

नरेंद्र शर्मा में भी सामाजिक यथार्थ का चित्रण तथा विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोही स्वर है। यद्यपि यहाँ भी कवि की रूमानी दृष्टि ही प्रधान है तो भी उसका स्वर बच्चन की अपेक्षा अधिक वस्तुवादी और अनुभूतिप्रवण है तथा उसमें समाजवादी चिंतन का पुट भी है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'–अंचल का जन्म 1 मई, सन् 1915 को किशनपुर में हुआ था। एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त करके पहले ये इंस्टीट्यूट ऑफ लैंग्वेजेज़ एंड रिसर्च (जबलपुर) में हिंदी-विभागाध्यक्ष रहे, फिर राजकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय रायगढ़ के आचार्य हुए। इन्होंने अपने तीव्र रूमानी संवेदन को लेकर अपने अंतर की यात्रा तो की ही है, ये समाज में भी घूमे हैं। इसलिए इनके सामाजिक यथार्थवाले काव्यों में रूमानी संवेदना की ही प्रधानता लक्षित होती है। रूप की उद्दाम आसक्ति, उद्दाम वासना, उद्दाम पीड़ा और उद्दाम जिजीविषा ने इनके काव्य की प्रकृति की निर्माण किया है। वासना की उद्दामता कविता को एक ओर सामाजिक संयम से काट देती हैं, दूसरी ओर रचनात्मक स्तर पर उसे अनुभूति की गइराई और संश्लिष्टता की अपेक्षा उत्तेजना अधिक देती है। उत्तेजना या स्नायविक तनाव अंचल में इस प्रकार हावी है कि वे निरंतर किसी-न-किसी रूप में अपनी कविताओं में श्रृंगारिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते रहे हैं।

नोट

भगवतीचरण वर्मा–इनका जन्म सन् 1903 में शफ़ीपुर, ज़िला उन्नाव में हुआ। प्रयाग में शिक्षा प्राप्त कर पहले ये पत्रकार बने फिर स्वतंत्र भारत में आकाशवाणी से संबद्ध हुए। वर्मा जी की कविताओं में कई प्रकार की प्रवृत्तियों का संगम मिलता है। इनमें परंपरा के साथ युग-बोध, वैयक्तिक सुख-दु:ख, हर्ष-विवाद और आशा-निराशा के साथ सामाजिक विद्रोह तथा निम्न वर्ग का पीड़ाबोध, अभिजात भाषा के साथ ऊर्जामयी सामान्य भाषा का अस्तित्व लक्षित होता है। फिर भी मस्ती, आवेश और अहं इनकी कविताओं के केंद्र में हैं। 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत', 'मानव' और 'एक दिन' इनकी काव्य-कृतियाँ है।

गोपाल सिंह नेपाली–(1913-1963) नेपाली जी बेतिया (बिहार) में पैदा हुए थे। काफी समय तक फिल्मी दुनिया से संबद्ध रहे। नेपाली के प्रारंभिक गीत प्रकृति के मार्मिक किंतु सीधे-सादे चित्रों से संपन्न होने के कारण अन्य कवियों की कविताओं से अपने को साफ अलगा लेते हैं। इनके गीतों में चित्रित प्रेम-संवेग का भी अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी सादगी, माधुर्य और प्रवाह है। 'पंछी', 'उमंग', 'रागिनी', 'पंचीम', 'रिमझिम', 'नवीन' आदि इनकी काव्य-कृतियाँ है।

आर.सी. प्रसाद सिंह–आर.सी. प्रसाद सिंह में छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीतिकविता की सभी प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। इनकी कविता के केंद्र में नारी है। नारी के रूपाकर्षण, प्रेम, प्रेमजन्य उत्सुकता, स्नायविक उत्तेजना, निराशा, वेदना आदि के स्वरों से निर्मित इनकी कविताएँ अपनी धारा की कविताओं का ही रूप उजागर करती है। 'कलापी', 'संचयिता', 'जीवन और यौवन', 'पांचजन्य' और 'प्रेमगीत' इनकी काव्य-कृतियाँ है।

शंभुनाथ सिंह–शंभुनाथ सिंह की काव्य-यात्रा अत्यंत विकासशील रही है। 'रूप-रश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल' और 'देवालोक' में ये छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीतिकविता के कवि रहे हैं। 'मन्वंतर' प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित है और बाद की कृतियों में 'नई कविता' का स्वर स्पष्ट है। व्यक्तिवादी गीतिकविता-धारा में आने के बावजूद शंभुनाथ सिंह के गीतों में अपना सौंदर्य निखर आया है जो रूप-विधान, प्रणय-संवेदना, भाषा और छंद में लक्षित होता है।

12.1.5 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

'राष्ट्रीय' शब्द अपने आधुनिक अर्थ में आधुनिक है जिसमें जाति, संप्रदाय, धर्म, सीमित भू-भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर क्रमश: एक समग्र देश और उसके भीतर निवास करनेवाली समस्त जातियों, भिन्न-भिन्न भू-खंडों, संप्रदायाओं और रीति-रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभरता गया है। कहना न होगा कि अंग्रेज़ों के आने के समय तक अपनी सांस्कृतिक एकता के बावजूद भारत व्यावहारिक रूप से भिन्न-भिन्न राज्यों में बंटा हुआ था। वास्तव में पूरे भारतवर्ष की एकता के अर्थ में राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक काल में हुआ। अंग्रेज़ों ने समूचे देश में एक शासन स्थापित किया, जिससे पूरे देश के लोग एक राजा की प्रजा हुए और पूरे देश को समान यातना का अनुभव हुआ। अपने-अपने में बँटे हुए लोगों को यह प्रतीत हुआ कि वे सब मिलकर एक हैं, वे चाहे किसी जाति या धर्म के हो, अंग्रेज़ों के गुलाम है और फिर जब अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध मुक्ति का अभियान आरंभ हुआ तो मुक्ति की चेतना किसी धर्म या प्रदेश में सीमित न रहकर पूरे देश में व्याप्त हुई। इस प्रकार आधुनिक काल में जो राष्ट्रीयता का स्वरूप उभरा और विकसित हुआ, उसके तीन आधार हैं–पूरे देश में अंग्रेज़ी शासन की स्थापना, समग्र भारतीय प्रजा द्वारा अंग्रेज़ी शासन से उत्पन्न यातना का समान अनुभव तथा स्वाधीनता आंदोलन और उसका देशव्यापी प्रसार।

राष्ट्रीयता का विकास सबसे पहले पश्चिम में हुआ, विशेषतया इंग्लैंड में। किंतु वहाँ पराधीनता की समस्या नहीं थी, इसलिए वहाँ राष्ट्रीयता के जो तत्व उभरे, वे भारत में उभरने वाले तत्त्वों से थोड़े भिन्न थे। भारतीय राष्ट्रीयता में स्व-रक्षा का भाव प्रधान था, जबकि स्वतंत्र पश्चिमी देशों में स्व-विकास का। भारत एक विशाल देश है, जहाँ अनेक संस्कृतियों, भाषाओं, रीति-रिवाजों के लोग रहते हैं। ऊपर-ऊपर वे एक-दूसरे से अलग-अलग दिखते हैं, परंतु सबका मूल स्रोत एक ही है, जो आंतरिक रूप से सबको बाँधता है। वह मूल स्रोत है–अपनी प्राचीन संस्कृति, प्राचीन आध्यात्मिक सत्य। कहा जा सकता है कि हमारे यहाँ उभरने वाली राष्ट्रीयता में तीन मुख्य बातें लक्षित होती हैं–1. भारतीय पराधीनता की यातना का

नोट

अहसास और उससे मुक्ति पाने का प्रयास, 2. पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रांत होती हुई भारतीय चेतना के उद्धार के लिए तथा उसमें एकता और स्वाभिमान का बल फूँकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्ज्वल रूप का प्रस्तुतीकरण, 3. उपयोगी आधुनिक मूल्यों के आलोक में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का पुनिर्विचार तथा पुनर्गठन। कहना न होगा कि स्वाधीनता-प्राप्ति तक प्रथम दो तत्व बहुत प्रबल रहे, किंतु स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् तीसरे तत्व की ही सार्थकता शेष रह गई। किंतु उससे बड़ी बात जो आई, वह थी देश की राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा और विकास करने का प्रयास तथा नवीन राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण उत्पन्न समस्याओं से जूझने और उनका समाधान खोजने की चेष्टा। वर्तमान समस्याओं और प्रश्नों के संदर्भ में जब हम अपने अतीत गौरव को देखते है तब उससे अभिभूत होने के स्थान पर उसका पुनर्मूल्यांकन करते हैं और विचार के स्तर पर हम उससे अपने को जोड़ते या काटते हैं, उसके भीतर निहित द्वंद्वों, विसंगतियों और मानवीय संवेदना की तलाश करते हैं। जहाँ तक आधुनिक हिंदी-कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, कहा जा सकता है कि वह भारतेंदुकालीन कविताओं से प्रारंभ होती है। किंतु राष्ट्रीयता का स्वरूप तक से लेकर आज तक विकसित होता रहा है। आरंभ में छोटे-मोटे दु:ख-दर्दों, सहज भावात्मक प्रतिक्रियाओं तथा अतीत-स्मरण के रूप में लक्षित होने वाली राष्ट्रीयता धीरे-धीरे जटिल और संश्लिष्ट होती गई तथा अनेक मानवीय और सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनों से संपन्न होती चली गई। नई-नई राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने उसे जटिल रूप प्रदान किया। द्विवेदी-काल तक भारतीय राष्ट्रीयता बहुत-कुछ हिंदू राष्ट्रवाद के रूप में दिखाई पड़ती है। इसका कारण सायास हिंदू राष्ट्रवाद का प्रसार नहीं था, वरन् उस भारतीय दृष्टि का अभाव था, जो गाँधी के व्यक्तित्व में उभरकर आई।

प्रस्तुत कालावधि में आने वाली कृतियों पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि राष्ट्रीयता के सारे रूप कहीं खंडित रूप में, तो कहीं संश्लिष्ट रूप में इनमें दिखाई पड़ते हैं। राष्ट्रीयता का सबसे स्थूल रूप, वह है–विदेशी शासन के अत्याचारों, उनसे प्रसूत जन-यातनाओं और जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों का चित्रण। यह क्रिया बहुत स्थूल रूप में भी हो सकती है और बहुत सूक्ष्म तथा संश्लिष्ट रूप में भी। इस प्रकार की राष्ट्रीय कविताओं का महत्त्वपूर्ण स्तर प्रस्तुत अविध में दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में सुनायी पड़ता है। वास्तव में प्रेमचंद के उपन्यासों में तत्कालीन भारतीय जीवन को जकड़ती हुई विदेशी सत्ता, सामंतवाद और महाजनी सभ्यता के जिस जटिल और बुनियादी स्वरूप को उभारा गया है, उसे भावुकता से संचालित इस प्रकार की राष्ट्रवादी कविताएँ मुखर नहीं कर सकी हैं। इनमें वस्तुस्थिति की सही व्याख्या के स्थान पर भावुक प्रतिक्रिया है। इस संदर्भ में एक बात अवश्य लक्षित करने की है कि 1938 ई. के आस-पास के राष्ट्रीय जीवन की यातना और आक्रोश के स्वर में एक नया उभार लक्षित होता है। छायावाद-काल में गाँधी जी के प्रभाव में आत्मपीड़न तथा अहिंसाजन्य नरम प्रतिरोध दिखाई पड़ता है, किंतु वामपंथी दलों के उदय, समाजवादी सिद्धांतों के प्रचार तथा विदेशी शासन से झूठे वायदों और अधिकाधिक कठोर, विषम एवं जटिल होती परिस्थितियों के कारण साहित्य का स्वर अधिक उग्र, यथार्थवादी और लोकोन्मुख होता गया। दूसरी बात यह हुई कि प्रगतिवाद के प्रभाव से देश के भीतर बनते हुए शोषकों तथा शोषितों के अनेक वर्गों की पहचान होती गई। लड़ाई केवल अंग्रेज़ी सत्ता से ही नहीं है बल्कि सामंती महाजनी सभ्यता और उनके प्रतिनिधि देशी शोषकों से भी है जो अपने ही देश की जनता के लिए अपने-अपने ढंग से भयंकर शोषण के अस्त्र-शस्त्र बन रहे हैं। राष्ट्रीयता का यह नया स्वर दिनकर में अधिक उभरकर आया। कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद ने भारतीय राष्ट्रीयता को अधिक प्रत्यक्ष किया, उसे आकाश से धरती पर उतारा, उसे जन-जीवन से जोड़ा।

राष्ट्रीयता का संबंध देश के स्थूल सुख-दु:ख और आक्रोश के चित्रण से ही नहीं होता बल्कि राष्ट्र की आत्मा या चेतना की पहचान से होता है, वरन् उसी से अधिक होता है। यह चेतना स्थिर न होकर गतिशील रहती है, अर्थात् नव-नव परिस्थितियों में नए-नए कोण उभारती रहती है और पुराने कोण छोड़ती रहती है। संस्कृति का संबंध इसी आत्मा या चेतना से होता है यह संस्कृति जहाँ इतिहास के रूप में हमारे लिए प्रेरणा और पृष्ठभूमि बनती है, वहाँ वर्तमान चेतना से स्पंदित होकर हमारा जीवन बन जाती है। प्रतिभावान् और नव-दृष्टि-संपन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन-संदर्भों में पुनर्परीक्षित

करके ही स्वीकार किया है। यह प्रयास प्रस्तुत अवधि के पूर्व रचित महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों–'यशोधरा', 'पंचवटी', 'साकेत', 'प्रिय-प्रवास', 'कामायनी', 'राम की शक्तिपूजा' आदि–में भी लक्षित होता है।

प्रस्तुत अवधि में प्रकाशित काव्य-कृतियों में प्रमुख हैं–'कुरुक्षेत्र', 'जयभारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त', 'रश्मिरथी', 'विक्रमादित्य' आदि। इनके अतिरिक्त 'इतिहास के आँसू' की फुटकल कविताओं को भी इस संदर्भ में देखा जा सकता है। इन कृतियों में वर्तमान जीवन-प्रश्नों का प्रत्यक्ष या परोक्ष अंकन-आकलन तो अवश्य है, किंतु उन्हें परिणति देनेवाला स्वर भारतीय है, अर्थात् भारतीय संस्कृति के किसी उदात्त स्वर की तलाश ही इन प्रश्नों के बीच भटकती है।

नोट

मैथिलीशरण गुप्त–गुप्त जी इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। कवि ने अपने समय की समस्त राष्ट्र चेतना को अपने शब्दों में स्वर दिया है। काव्यात्मक दृष्टि से यह स्वर बड़ा ही विषम है, कहीं गहन, कहीं एकदम विवरणात्मक। फिर भी, जहाँ अपने युग को उसके बहुरंगी रूप में पकड़ने का प्रश्न है, गुप्त जी बहुत जागरूक कवि रहे हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन–इन दोनों कवियों में बहुत साम्य है। यों नवीन जी सौंदर्य और प्रेम की कविताएँ लिखने के कारण छायावादी कवियों के समीप पहुँच जाते हैं, किंतु जहाँ तक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता का प्रश्न है, इन दोनों की प्रवृत्तियाँ समान दिखाई पड़ती है। दोनों का संबंध मूलत: राष्ट्र की तत्कालीन अवस्था से है, दोनों ने पराधीन राष्ट्र की व्यथा, अंग्रेजी शासन के अत्याचारों, स्वाधीनता-सेनानियों के अदम्य उत्साह, कारागार-यात्रा और उनकी बेबसियों आदि के चित्रण में ही अपनी व्यस्तता दिखाई है। सांस्कृतिक पक्ष उनसे प्राय: छूट ही गया है। वर्तमान के संदर्भ में अतीत के पुनर्परीक्षण, संक्रांत मूल्यों के आकलन, वृहत्तर मानवीय प्रश्नों और संवदेनाओं के अनुभव में इनका मन उतना रम नहीं सका है।

रामधारी सिंह दिनकर–इस धारा के कालाविधि के सबसे सशक्त कवि 'दिनकर' (1908-1974) हैं। इनका जन्म सिमरिया (जिला मुंगेर) में हुआ था इन्होंने बी. ए. तक शिक्षा प्राप्त की। ये क्रमश: एक हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक, बिहार सरकार के अधीन सब-रजिस्ट्रार, बिहार सरकार के प्रचार-विभाग के उपनिदेशक, मुजफ्फरपुर के कॉलेज में हिंदी-विभागाध्यक्ष, राज्यसभा के सदस्य, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा भारत सरकार के हिंदी-सलाहकार रहे। दिनकर में संवेदना और विचार का बड़ा सुंदर समन्वय दिखाई पड़ता है। चाहे व्यक्तिगत प्रेम-सौंदर्यमूलक कविताएँ हों, चाहे राष्ट्रीय कविताएँ, सभी कवि की संवेदना से स्पंदित हैं। दिनकर में आरंभ से ही अपने को अपने परिवेश से जोड़ने की तड़प दिखाई पड़ती है, इसलिए उनमें सर्वत्र एक खुलापन है, लोकोन्मुखता है, सहजता है–व्यक्तिगत प्रेम-सौंदर्यमूलक कविताओं में भी। छायावाद या उत्तर-छायावादी वैयक्तिक कविता की कुंठा, अतिरिक्त अवसाद तथा निराशा के घिराव के स्थान पर प्रसन्नता और सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है। दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है–अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरूकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिंतन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं, समताओं आदि के ही रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपरा के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नए जीवन-संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किंतु जीवंत मूल्यों से जोड़ना चाहा है। दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबारकर चिंतन परीक्षण तथा आत्मालोचन का स्वस्थ रूप देने का प्रयत्न किया; साथ ही इस राष्ट्रीयता के सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा। यह विकास तभी संभव है जब बुद्धि के ऊपर संवेदनशील हृदय का शासन हो। 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म के माध्यम से वस्तुस्थिति की तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख-साम्राज्य की स्थापना की कामना का सुंदर समन्वय हुआ है–

कर पाता यदि मुक्त हृदय को
मस्तक के शासन से
उतर पकड़ता बांह दलित की

मंत्री के आसन से
स्यात् सुयोधन भीत उठाता
पग कुछ और संभल के
भरत भूमि पड़ती न स्यात्
संगर में आगे चल के। (कुरुक्षेत्र)

नोट

सियारामशरण गुप्त–गुप्त जी और दिनकर के समान सियारामशरण गुप्त इस धारा के विशिष्ट कवि हैं। इनकी कृतियों में सर्वत्र गाँधीवाद की अभिव्यक्ति दिखती है। देश की ज्वलंत घटनाओं और समस्याओं का इन्होंने बड़ा जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है, किंतु संस्कृति के उदात्त तत्वों के प्रति गहरी आस्था रखनेवाले सियारामशरण जी इन घटनाओं, अवस्थाओं और समस्याओं को तात्कालिक तथ्य के रूप में न देखकर उन्हें वृहत्तर मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं और संदर्भों से जोड़ देते हैं। इसलिए इनके काव्यों की पृष्ठभूमि अतीत हो या कि वर्तमान, उनमें आधुनिक मानवता की करुणा, यातना और द्वंद्व का समन्वित रूप उभरा है। सियारामशरण ने भारत की जिस किसी तात्कालिक घटना को लिया है, उसे एकदेशीयता से ऊपर उठाकर वृहत्तर मानवीय मूल्य का स्तर प्रदान किया है, मात्र राष्ट्रीयता कवि को स्वीकार्य नहीं। 'उन्मुक्त' आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें अपने ढंग से युद्ध की अनिवार्यता, त्याग, बलिदान, यातना-विभीषिका और मानवीय करुणा का अद्‌भुत समन्वय हुआ है।

उदयशंकर भट्ट–इनका जन्म कर्णवास, जिला बुलंदशहर में हुआ था। ये सनातन धर्म कॉलेज, लाहौर में हिंदी के अध्यापक रहे और बाद में आकाशवाणी से संबद्ध हुए। भट्ट जी की काव्य-कृतियाँ हैं–'विसर्जन', 'मानसी', 'अमृत और विष', 'युगदीप', 'यथार्थ', 'एकला चलो रे' और 'विजय पथ'। इसके काव्य में भाव, विचार और भाषा संबंधी बड़ा सुथरापन दिखता है। ये ठीक-ठीक किसी वाद के अंतर्गत नहीं आते। इनकी कविताओं में युग का स्वर सुनाई पड़ता है और साथ-ही-साथ अपनी अतीत संस्कृति के प्रति आस्था भी। इनकी कविताओं में वेदना एवं निराशा की भी गूंज है और नवनिर्माण का उत्साह तथा शक्ति भी है।

सोहनलान द्विवेदी–इनका जन्म सन् 1905 में बिंदकी, ज़िला फ़तेहपुर में हुआ। ये अत्यंत सरल भाषा में राष्ट्रीय चेतना का स्वर व्यक्त करने वाले कवि हैं। इनकी राष्ट्रीयता की चेतना अतीत, वर्तमान और भविष्य, इन तीनों ही काल-आयामों को समेटती है। अभिव्यक्ति की सादगी और वर्णनात्मकता इनके भावों को अत्यंत सहजता से पाठकों तक प्रेषित कर देती है। द्विवेदी जी की काव्य-यात्रा प्रबंधकाव्य और गीतिकाव्य–दोनों क्षेत्रों में हुई है। प्रसिद्ध रचनाएँ हैं–'भैरवी', 'वासवदत्ता', 'कुणाल', 'चित्रा', 'प्रभाती', 'युगधारा' और 'पूजागीत'।

श्यामनारायण पांडेय–पांडेय जी की काव्य-प्रवृत्ति मुख्यत: उनके प्रबंधकाव्यों में ही निखरी है। 'हल्दीघाटी' महाराणा प्रताप के जीवन पर तथा 'जौहर' पद्मिनी की जौहर-कथा पर आधारित काव्य हैं इन काव्यों में अद्‌भुत प्रवाह, ओज और सादगी है। किंतु पांडेय जी की राष्ट्रीयता अपने समय की सामाजिक भारतीय राष्ट्रीयता न होकर हिंदू राष्ट्रीयता है। कवि ने अतीत की कथाओं को युगीन संदर्भों में नियोजित न कर वर्णनात्मक पद्धति पर ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है। इसलिए इन काव्यों में प्रवाह तो है, किंतु भावात्मक और वैचारिक गांभीर्य नहीं है।

प्रगतिवाद (1936-43 ई.)

12.1.6 मार्क्सवाद क्या है?

मार्क्सवाद वह विचारधारा है जिसका संबंध कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंजेल्स, लेनिन, माओ आदि विचारकों से है। प्रगतिवादी कविता मार्क्सवाद को अपना दार्शनिक आधार बनाती है। मार्क्सवाद की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं–

नोट

1. मार्क्सवाद के दो प्रमुख सिद्धांत हैं–द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का संबंध प्रकृति और जगत के नियमों की व्याख्या से है जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद मनुष्य के संपूर्ण इतिहास की व्याख्या है।
2. मार्क्सवाद का मानना है कि प्रकृति की हर वस्तु में कुछ अंतर्विरोध होते हैं जिनके कारण वस्तु के भीतर 'पक्ष' और 'विपक्ष' में द्वंद्व की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। इन दोनों के संघर्ष से एक नई स्थिति 'संपक्ष' आती है जो वस्तुत: इन दोनों का समझौता ही है। बाद में 'संपक्ष' स्वयं 'पक्ष' बन जाता है और यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इसे मार्क्स ने 'निषेध के निषेध का नियम' कहा।
3. जहाँ तक मानवीय समाज का प्रश्न है, मार्क्स का मत है कि किसी भी समाज की व्याख्या उसकी बुनियादी संरचना अर्थात् उत्पादन प्रणाली के आधार पर हो सकती है। शेष सभी संरचनाएँ जैसे राजनीति, संस्कृति, कला और साहित्य इसी बुनियादी संरचना द्वारा निर्धारित होने वाली ऊपरी संरचनाएँ हैं। स्पष्ट है कि 'साहित्य' यहाँ स्वतंत्र संरचना नहीं बल्कि उत्पादन प्रणाली का एक उप-उत्पाद है।
4. उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण संकल्पना उत्पादन के संबंधों की है जिसका अर्थ है कि उत्पादन की शक्तियों के साथ विभिन्न मनुष्यों का क्या संबंध है? मार्क्स के अनुसार कुछ लोग उत्पादन के साधनों के मालिक बन जाते हैं तथा बिना श्रम किए लाभ कमाते हैं जबकि बहुसंख्यक वर्ग उत्पादन के साधनों पर श्रम करता है किंतु उसे सीमित आय से ही गुज़ारा करना पड़ता है। हर समाज में यही दो वर्ग होते हैं, जिन्हें मार्क्स ने शोषक और शोषित वर्ग कहा है।
5. मार्क्स के अनुसार, शोषित वर्ग की समस्याओं का एक ही समाधान है कि वह संगठित होकर हिंसक क्रांति करे। वर्ग चेतना उत्पन्न होने पर शोषित वर्ग अपने हितों के लिए जागरूक होता है और क्रांति की संभावना बनती है। मार्क्सवाद भाववादी विचारकों द्वारा प्रतिपादित 'हृदय-परिवर्तन' के विचार से सहमत नहीं है क्योंकि उसके भौतिकवाद के अनुसार भौतिक स्थितियाँ बदलने से विचार बदलते हैं, न कि विचार बदलने से भौतिक स्थितियाँ।
6. मार्क्स ने धर्म और राष्ट्र जैसी संकल्पनाओं का निषेध किया है। धर्म अफीम के समान है क्योंकि वह शोषित व्यक्ति को वास्तविक वर्ग-शत्रु से संघर्ष करने के स्थान पर अलौकिक तथा मिथ्या सुखों के लिए प्रेरित कर देता है। राष्ट्र भी धर्म के समान एक मिथ्या चेतना है क्योंकि वह वास्तविक वर्ग विभेद के स्थान पर कृत्रिम, भौगोलिक विभेदों को स्थापित करता है।
7. मार्क्सवाद विवाह और परिवार संस्थाओं का भी विरोधी है क्योंकि ये संस्थाएँ निजी संपत्ति की सुरक्षा और हस्तांतरण के लिए विकसित हुई हैं, न कि प्राकृतिक रूप से। उसका स्पष्ट मानना है कि नारी विवाह और परिवार के अंतर्गत शोषित वर्ग है, जबकि पुरुष शोषक वर्ग।
8. पूँजीवाद मानव इतिहास की वह अवस्था है जहाँ औद्योगिक उत्पादन की प्रचुरता के कारण मनुष्य की सभी भौतिक जरूरतें पूरी होने की संभावना बनती है किंतु उत्पादन के इन लाभों पर पूँजीपति-वर्ग का कब्जा होने के कारण सर्वहारा या श्रमिक वर्ग को मानवीय स्थितियाँ उपलब्ध नहीं हो पातीं, इसलिए पूँजीवाद को नष्ट करना दुनिया भर के मजदूरों के लिए आवश्यक है।
9. हिंसक क्रांति के बाद समाजवाद की अवस्था आएगी जिसमें सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होगी। यह एक संक्रमणशील अवस्था है और इसके गुज़रने के बाद साम्यवाद आएगा, जो मानवीय इतिहास की आदर्श व्यवस्था होगी। साम्यवाद में न राज्य होगा, न धर्म, न शोषण, न अलगाव, न विवाह और न ही परिवार। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं और रुचियों के अनुसार कार्य करेगा तथा उसे उसकी आवश्यकताओं के अनुसार उपलब्धियों की प्राप्ति होगी।

12.1.7 मार्क्सवादियों का साहित्यिक दृष्टिकोण

नोट

1. मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य 'स्वायत्त' या 'स्वतंत्र' संरचना नहीं है बल्कि समाज की उत्पादन प्रणाली का ही एक उप-उत्पाद है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी समाज का साहित्य वहाँ की अर्थव्यवस्था के स्वरूप से तय होता है। उदाहरण के लिए महाकाव्य सामंतवादी समय में ही लिखे जा सकते हैं जबकि उपन्यास का अनिवार्य संबंध उत्पादन की औद्योगिक तथा पूँजीवाद प्रणाली से है।
2. साहित्य निरुद्देश्य नहीं होता, सोद्देश्य होता है। उसका उद्देश्य है शोषित वर्ग को उसके शोषण के प्रति जागरूक बनाना तथा क्रांति के लिए तैयार करना। यह दायित्व मार्क्स ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को सौंपा था। जो साहित्य सर्वहारा के हित में नहीं है, वह साहित्य नहीं बल्कि शोषण को बनाए रखने की व्यवस्था है लेनिन ने तो स्पष्ट रूप से कहा कि *''साहित्य क्रांति के लिए एक हथियार मात्र है।''*
3. साहित्य में मुख्य महत्त्व वस्तु (Content) का होता है, न कि रूप (Form) का। रूप या शिल्प तो वस्तु के अनुसार स्वत: परिवर्तित होता है क्योंकि शिल्प वस्तु का उप-उत्पाद ही है। आगे चलकर जॉर्ज लुकाच ने इस नज़रिए को थोड़ा सा बदला और शिल्प को भी स्वायत्त महत्त्व देना आरंभ किया। लुकाच ने माना कि यद्यपि अंतर्वस्तु का महत्त्व अधिक है किंतु उसी अंतर्वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए शिल्प को पर्याप्त महत्त्व दिया जा सकता है। हिंदी के प्रगतिवादियों में यही विचार मुक्तिबोध का भी था। उन्होंने फंतासी शिल्प के विषय में कहा कि प्रगतिवादी कथ्य की ज्यादा बेहतर अभिव्यक्ति कभी-कभी भाववादियों या अति-यथार्थवादियों के फंतासी शिल्प में हो सकती है, अत: इसे स्वीकार करना चाहिए।
4. साहित्यकार में साहित्यिक रचना करने की क्षमता न तो जन्म-जन्मांतरीय होती है, न ही ईश्वर द्वार प्रदत्त। वस्तुत: प्रत्येक मनुष्य के शरीर पर ही उसकी चेतना निर्भर होती है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति में शारीरिक भिन्नताएँ हैं, इसलिए सभी की चेतना में भी कुछ अंतर पाए जाते हैं। कवि की विशेषताएँ मात्र इतनी है कि उसकी चेतना रचनात्मक लेखन में अधिक समर्थ होती है।
5. कोई भी रचनाकार समाज से स्वतंत्र या स्वायत्त नहीं होता। उसके साहित्यिक दायित्वों से ज्यादा बड़े उसके सामाजिक और मानवीय दायित्व हैं, और उन्हीं दायित्वों के तहत उसके लिए आवश्यक है कि वह शोषित वर्ग को न्याय दिलाने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से सहायक हो।
6. साहित्य का कार्य रस की उत्पत्ति करना या व्यक्ति को आनंद की उपलब्धि कराना नहीं बल्कि तनाव की सृष्टि करना है। यह तनाव या द्वंद्व ही सभी सामाजिक परिवर्तनों की मूल शक्ति है।

12.1.8 प्रगतिवाद और चेतना

प्रगतिवाद का चेतना संबंधी विचार मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित है। मार्क्सवाद का दार्शनिक चिंतन द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहलाता है, जिसमें भौतिकवाद का अर्थ यह है कि ब्रह्मांड की अंतिम सत्ता अपनी प्रकृति में भौतिक है न कि आध्यात्मिक या चेतना ईश्वरवादी विचारक ईश्वर रूपी आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से जगत की व्याख्या करते हैं, जबकि भौतिकवाद का दावा है कि यह जगत अंतिम सत्ता है, ईश्वर एक निरर्थक कल्पना मात्र है। चेतना की व्याख्या करते हुए मार्क्स ने माना कि वह भौतिक शरीर का ही एक गुण है न कि आत्मा जैसी किसी आध्यात्मिक सत्ता का। मानव का शरीर एक ऐसी भौतिक संरचना है जिसमें चेतना एक गुण के रूप में अभिव्यक्त होती है।

चेतना की उत्पत्ति ही नहीं, उसका स्वरूप भी भौतिक स्थितियों से ही तय होता है। अपने ऐतिहासिक भौतिकवाद सिद्धांत में मार्क्स ने स्पष्ट कहा है कि किसी भी व्यक्ति की आत्मनिष्ठ चेतना उसकी वस्तुनिष्ठ वर्गीय या आर्थिक स्थितियों से तय होती है। हृदय परिवर्तन का सिद्धांत उसके अनुसार निरर्थक है क्योंकि

चेतना के परिवर्तन से भौतिक स्थितियों का बदलना कल्पना मात्र है। वास्तविकता यह है कि भौतिक स्थितियों के परिवर्तन से ही चेतना परिवर्तित होती है। यह विचार न केवल उसके पूर्ववर्ती दार्शनिक हीगेल के प्रत्ययवाद के विरोध में हैं बल्कि सेंट साइमन जैसे स्वप्नदर्शी समाजवादियों के विरोध में भी है।,

प्रगतिवाद ने सामान्यत: चेतना का यही सिद्धांत अपनाया है। इसी स्पष्ट अभिव्यक्ति मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' में दिखती हैं–

नोट

"पूँजी से जुड़ा हृदय, बदल नहीं सकता,
छल नहीं सकता जन को,
मुक्ति के मन को।"

12.1.9 प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(क) संवेदना

(*i*) **मार्क्सवाद में विश्वास**–प्रगतिवादी चिंतन मार्क्सवाद है। प्रगतिवादी कवि साम्यवाद के आदर्श में पूरा विश्वास रखते हैं। मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था हिंसक क्रांति के साथ समाप्त होगी जिसके परिणामस्वरूप पहले समाजवादी तथा अंतत: साम्यवादी व्यवस्था आएगी जिसमें कोई शोषक और शोषित नहीं होगा। ये कवि सोवियत संघ में क्रांति का परचम फैलाने वाली मजदूर सेना को आदर के भाव से देखते हैं–

''लाल क्रांति की लड़ने वाली, मज़दूर सेना आम,
उनका, उनके स्त्री पुरुषों को, मेरा लाल सलाम।'' **(मुक्तिबोध)**

(*ii*) **समाजवादी यथार्थवाद**–प्रगतिवादी कवि यथार्थवाद में विश्वास रखते हैं, 'आदर्शवाद' या 'अध्यात्मवाद' में नहीं। इनका यथार्थवाद 'समाजवादी' मान्यताओं पर आधारित है। जिसके अनुसार मानव के यथार्थ को निर्धारित करने वाली सबसे ताकतवर शक्ति अर्थव्यवस्था या उत्पादन प्रणाली है। मार्क्स ने कहा भी है कि सारा चिंतन, सारी संस्कृति पेट भरने के बाद ही अस्तित्व में आती है। यही भाव इन कवियों का भी है–

''दाने आए घर के अंदर, कई दिनों के बाद,
चमक उठी घर भर की आँखें, कई दिनों के बाद।'' **(नागार्जुन)**

(*iii*) **पूँजीवादी व्यवस्था से घृणा**–प्रगतिवादी साहित्य के आक्रोश का केंद्र पूँजीवाद व्यवस्था व पूँजीपति वर्ग है। मार्क्स के अनुसार पूँजीपतियों द्वारा स्थापित उद्योगों में उत्पादन का कार्य मज़दूर करते हैं किंतु उससे पैदा होने वाले धन को पूँजीपति हड़प कर जाते हैं। इस अधिशेष मूल्य को हस्तगत करके वे मज़दूर का शोषण करते हैं। इसलिए प्रगतिवादी कवि पूँजीवाद के प्रति विरोध का भाव रखते हैं–

''तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ,
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।'' **(मुक्तिबोध)**

(*iv*) **शोषितों के प्रति सहानुभूति और आस्था**–प्रगतिवादी कविता में शोषण व अन्याय की चक्की में पिसते हुए मज़दूर एवं किसान वर्गों के प्रति करुणा व आस्था का भाव है। कवियों को गहरा विश्वास है कि मज़दूर व किसान वर्ग के वंचित लोग ही अंतत: समाज की नियति बदलने की शक्ति रखते हैं–

''मैंने उसको जब जब देखा, लोहा देखा,
लोहा जैसे तपते देखा, गलते देखा, ढलते देखा,
मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा।'' **(केदारनाथ अग्रवाल)**

(v) सामाजिक व्यवस्था का परिवर्तन–प्रगतिवादी कवि सामाजिक संरचना में क्राँतिकारी परिवर्तन चाहता है। यह परिवर्तन हृदय-परिवर्तन जैसी कल्पनाओं से नहीं, वरन् वर्ग-संघर्ष के माध्यम से होगा। यह परिवर्तन आमूलचूल होगा; 'व्यवस्था में' नहीं, 'व्यवस्था का' होगा–

नोट

''सदियों की ठंडी बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है।
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'' **(दिनकर)**

प्रगतिवादियों की स्पष्ट धारणा है कि वर्ग-संघर्ष में बीच का कोई रास्ता नहीं होता। जो शोषित वर्ग के पक्ष में नहीं है, वह शोषक के पक्ष में है। 'तटस्थता' की चादर ओढ़ने वाले भी अंतत: इतिहास में अपराधी ही माने जाएँगे–

''समर शेष है नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं समय लिखेगा उनका भी अपराध।'' **(दिनकर)**

(vi) राष्ट्रीय चेतना–प्रगतिवादी कवि भी राष्ट्रीयता की चेतना से युक्त हैं पर उनके लिए 'राष्ट्रीयता' का अर्थ छायावादी कवियों से भिन्न है। ये कवि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के समर्थक नहीं हैं; न ही इन्हें राष्ट्र के गौरवमयी अतीत या महान दर्शन के प्रति भावुक होना पसंद है। ये तो राष्ट्र का महत्त्व राष्ट्र के वंचित नागरिकों के आधार पर तय करते हैं–

''जहाँ न भरता पेट, देश वह कैसा भी हो, महानरक है।'' **(नागार्जुन)**

''कागज की आजादी मिलती, ले लो दो-दो आने में।'' **(नागार्जुन)**

(vii) राजनीतिक चेतना–प्रगतिवादी कवि कई अन्य कवियों की तरह राजनीति से दूर नहीं भागते बल्कि राजनीति को यथार्थ की पहचान का प्रतीक और यथार्थ बदलने की सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में देखते हैं। ये 'उदारवादी लोकतंत्र' का अंधसमर्थन करने के स्थान पर उसकी आंतरिक विसंगतियों का चित्रण करते हैं और बताते हैं कि तथाकथित लोकतंत्र वस्तुत: किस प्रकार शोषक वर्ग के हितों की ही सुरक्षा व अभिवृद्धि करता है–

''खादी ने मलमल से चुपचुप साँठगाँठ कर डाली है,
बिड़ला-टाटा-डालमिया की तीसों दिन दीवाली है।'' **(नागार्जुन)**

(viii) ग्राम्य प्रकृति–प्रगतिवादी कवि प्रकृति को सैलानी की नहीं, किसान की आँखों से देखते हैं क्योंकि ये कवि 'जन' के प्रतिनिधि है, अभिजात वर्ग के नहीं। इनके यहाँ 'गुलाब' के सौंदर्य का स्थान चने के सौंदर्य ने ले लिया है क्योंकि वह जनसामान्य के जीवन से जुड़ा हैं–

''एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरेठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है।''

प्रगतिवादियों का प्रकृति-चित्रण वर्ग संघर्ष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी है। छायावाद में जो प्रकृति कवि को अपनी गोद से आश्रय देती थी, वह प्रगतिवाद में आकर क्रांति का संकेत देने लगी हैं–

''तेज धार का कर्मठ पानी, चट्टानों के ऊपर चढ़ कर,
मार रहा है घूँसे कस कर, तोड़ रहा है तट चट्टानी।''

(*ix*) प्रेम वर्णन–प्रेम साहित्य के प्रत्येक युग का एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। प्रगतिवाद भी इससे अछूता नहीं है। यहाँ प्रेम साहचर्य एवं सहजीवन से उत्पन्न होता है। प्रेम के लिए इन कवियों को प्रकृति की गोद में जाने की आवश्यकता महसूस नहीं होती, वह तो श्रम करते समय भी महसूस किया जा सकता है। प्रेम साधारण जीवन का सहज अंग है, यह किसी विशेष परिस्थिति की माँग नहीं करता। प्रेम समाज से काटता नहीं है बल्कि वह तो व्यक्ति के सामाजिक होने की भावभूमि हैं–

(*i*) *''मिलकर वे दोनों प्राणी, दे रहे खेत में पानी।''* **(त्रिलोचन)**

(*ii*) *''मुझे जगत जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्रेम तुम्हारा।''* **(त्रिलोचन)**

(ख) शिल्प

प्रगतिवाद आंदोलन मूलत: कथ्य का आंदोलन था, शिल्प का नहीं। उसके अनुसार शिल्प कथ्य का उपोत्पाद होता है प्रगतिवादी कविता सर्वहारा व श्रमिक की पक्षधर होने के नाते इस दायित्व-बोध से युक्त है कि कविता शिल्प की चमक-दमक से लदी हुई नहीं बल्कि आम आदमी के लिए बोधगम्य होनी चाहिए। इन्हें कविता में उसी जन-प्रभाव की तलाश है जो पोस्टरों में दिखाई देती है। मुक्ति-बोध ने कहा भी है कि–*''चंद्र है, सविता है। पोस्टर ही कविता है।''*

(*i*) काव्यरूप–प्रगतिवादी काव्य में प्रबंधात्मक का अभाव है क्योंकि यह कविता संघर्ष की कविता है। ऐसी कविता में प्रबंध के अनुशासन की उपस्थिति संभव नहीं है।

(*ii*) भाषा–प्रगतिवादी कवि सहज भाषा का प्रयोग करते हैं जो जनसाधारण के जीवन की भाषा है। छायावाद ने जीवन की भाषा और काव्य की भाषा में जो अंतराल पैदा कर दिया था, उसे प्रगतिवाद ने समाप्त किया। मुक्तिबोध जैसे एकाध कवि को छोड़ दें तो सभी प्रगतिवादी कवि जनभाषा का ही सहज प्रयोग करते हैं।

(*iii*) लोकधुन–इस काव्य में लोक धुनों पर विशेष बल दिया गया है। प्रगतिवादी कविता जिस संघर्ष- चेतना का प्रसार करना चाहती है, उसकी सहज अभिव्यक्ति लोक-धुनों में ही संभव है। कहीं-कहीं इसमें लय व तुक के नियमों से मुक्ति भी दिखाई पड़ती है।

(*iv*) बिंब–बिंब प्राय: सामान्य जीवन से लिए गए हैं। छायावादी बिंबों से भिन्न ये बिंब लोक जीवन के साधारण अनुभवों से संबंधित हैं, जैसे *'गीत गाकर घर लौटते मज़दूर', 'पसीने में भीगा किसान'* आदि। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने,
मायके में आई बेटी की तरह मगन है।''

(*v*) प्रतीक–प्रगतिवादी कवि बात को साफ-साफ कहने के पक्षधर हैं। इन्हें सामान्यत: प्रतीकों का मोह नहीं है क्योंकि प्रतीक बात को छिपाते हैं। कहीं-कहीं कुछ प्रतीकों के प्रयोग से इन्होंने वर्ग संघर्ष की चेतना को व्यक्त किया है, जैसे–

''तेज धार का कर्मठ पानी, चट्टानों के ऊपर चढ़कर,
मार रहा है घूँसे कसकर, तोड़ रहा है तट चट्टानी।''

ये पंक्तियाँ वर्ग-संघर्ष को व्यक्त करती हैं। पानी वंचित वर्ग को व्यक्त करता है जबकि चट्टान शोषक वर्ग की मजबूत स्थिति को व्यक्त करती है।

(*vi*) व्यंग्य–प्रगतिवादी कवियों में व्यंग्य क्षमता की अत्यंत प्रभावशील उपस्थिति है। समाज के मूल हितों के प्रति गहराई से प्रतिबद्ध होने के कारण ये कवि स्वार्थी व व्यक्तिवादी

तत्वों को सहन नहीं कर पाते और तिलमिलाहट पैदा करने वाले तीखे व्यंग्यों का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए–

"दस हजार दस लाख मरें,
पर झंडा ऊँचा रहे हमारा।"

नोट

12.1.10 प्रयोगवाद का अर्थ एवं परिभाषा

आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास में सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही एक नया मोड़ उपस्थित होता है जिसे 'प्रयोगवाद' कहा गया है। अपनी विकास प्रक्रिया में **प्रयोगवाद** छायावादी कविता की रोमानियत और वायवीयता तथा **प्रगतिवादी कविता की वैचारिक प्रतिबद्धता के विरोध में** खड़ा होकर 'स्वानुभूति की प्रामाणिकता' को रचना के केंद्र में स्थापित करने का आग्रह करता है। शिल्प के स्तर पर यह छायावाद की ठहरी हुई अभिव्यंजना प्रणाली तथा प्रगतिवाद की अभिधात्मकता व सपाटबयानी का अतिक्रमण करता है। इस समूची नई दृष्टि को, जिसे अज्ञेय ने 'प्रयोगशीलता' कहा था, अज्ञेय के विरोध के बावजूद 'प्रयोगवाद' का नाम दे दिया गया और कालांतर में यही नाम प्रचलित हुआ।

प्रयोगवाद में प्रयुक्त 'प्रयोग' शब्द नए जीवन सत्यों को पाने की बेचैनी का द्योतक है। अज्ञेय ने तारसप्तक की भूमिका में प्रयोगशील शब्द का प्रयोग किया है और इसे जीवन-सत्यों के अन्वेषण का माध्यम माना है। अत: अज्ञेय के अनुसार, ''प्रयोग अपने आपमें साध्य नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है; क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है।'' दूसरे सप्तक की भूमिका में 'प्रयोगवाद' नामकरण का विरोध करते हुए अज्ञेय ने लिखा है कि प्रयोग का कोई वाद नहीं होता। किसी को प्रयोगवादी कहना उतना ही निरर्थक है जितना कवितावादी कहना। अत: 'प्रयोगशील' होने और 'प्रयोगवादी' होने में फर्क है। प्रयोगवाद वस्तुत: प्रयोगशीलता का पक्षधर है।

12.1.11 प्रगतिवाद व प्रयोगवाद में अंतर

प्रयोगवाद और प्रगतिवाद में कई बिंदुओं पर वैचारिक टकराहट है–

(*i*) प्रगतिवाद कलाकर्म को सामाजिक कार्य मानता है तथा इन दोनों की अद्वैतता की घोषणा करता है जबकि प्रयोगवाद के अनुसार कविता के प्रति दायित्व और नागरिक दायित्व में मूलभूत फर्क है। कविता का क्षेत्र सौंदर्यानुभूति का क्षेत्र है। कवि इसलिए कवि होता है कि उसके पास विशेष सौंदर्यानुभूति होती है।

(*ii*) प्रगतिवाद कविता को 'सोद्देश्य' मानता है और उसका उद्देश्य भी पूर्वत: निर्धारित कर देता है–पूंजीवाद का संहार तथा साम्यवाद की स्थापना का अस्त्र बनना। अत: प्रगतिवाद रचना और रचनाकार की स्वायत्तता का निषेध करता है। प्रयोगवाद मानता है कि कविता के उद्देश्य कविता से बाहर नहीं होते। वह समाज का परिवर्तन नहीं करती, उसे ऐसा प्रयास करना भी नहीं चाहिए। अज्ञेय का मत है कि, **''कविता का मूल लक्ष्य अधिक-से-अधिक व्यक्ति को संस्कारित करना है।''**

(*iii*) प्रगतिवाद मानता है कि कविता यथार्थ की अभिव्यक्ति है और यथार्थ पूर्व निर्दिष्ट है जिसे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक संदर्भों में देखा जा सकता है। प्रयोगवाद के अनुसार यथार्थ निर्दिष्ट नहीं है, वह प्रेक्षक के दृष्टिकोण के अनुसार भिन्न हो सकता है। वस्तुत: प्रगतिवाद यथार्थ को विचारधारा के चश्मे से देखता है, जबकि प्रयोगवाद यथार्थ के इस यांत्रिक बोध का विरोध करता है।

(*iv*) प्रगतिवाद के अनुसार, शिल्प सिर्फ माध्यम होता है जबकि अंतर्वस्तु प्रमुख होती है। अंतर्वस्तु के विकास के साथ-साथ शिल्प स्वत: परिवर्तित होता रहता है। इसके विपरीत प्रयोगवादी मानते हैं कि शिल्प कविता का नियामक तत्व है, वही विधाओं में अंतर भी करता है। अत: शिल्प प्राथमिक है, वह अंतर्वस्तु का अनुवर्ती नहीं है।

नोट

12.1.12 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(क) संवेदना

(*i*) भावुकता तथा बौद्धिकता का संश्लेषण–प्रयोगवादी कविता में न तो छायावादी काव्य के जैसी वायवीयता, अति भावुकता एवं कल्पना है और न ही प्रगतिवाद की तरह किसी विचारधारा के प्रति यांत्रिक मोह। नगरीय जीवन के दबावों से निर्मित इनकी चेतना में भावना बौद्धिकता से संयुक्त होकर व्यक्त होती है। इसलिए इनकी काव्यानुभूति में रोमानियत या तीव्रता नहीं बल्कि गैर-रोमानीपन तथा तटस्थता दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए–

''सुनो कवि, भावनाएँ नहीं है सोता,
भावनाएँ खाद हैं केवल,
ज़रा उनको दबा रक्खो,
उनको और पकने दो,
ताने और तचने दो
कि उनका सार बनकर धरा को उर्वरा कर दे।''

(*ii*) नवीन राहों का अन्वेषण–प्रयोगवादी कवियों ने प्रदत्त सत्यों को अस्वीकार किया। ये 'परंपरा' और 'रूढ़ी' में बारीक अंतर करते हैं और परंपरा को महत्त्व देते हुए भी रूढ़ियों का विरोध करते हैं। वे कहते हैं–''परंपरा अर्जित किया गया सत्य होता है। जो दी गई है, वह रूढ़ि है। परंपरा वह है जो व्यक्ति के विवेक के साथ संवाद करने की क्षमता रखती है।'' ये कवि रूढ़ियों को तोड़ते हैं। यह तोड़ना उन्हें सुखदायी लगता है–

''इस दिशा से उस दिशा तक/छूटने का सुख/टूटने का सुख/
बिना सीढ़ी के बढ़ेंगे/तीर के जैसे बढ़ेंगे
इसलिए इन सीढ़ियों के/फूटने का सुख/टूटने का सुख।''

–भवानी प्रसाद मिश्र

(*iii*) वैचारिक प्रतिबद्धता का निषेध–कोई भी विचारधारा एक यांत्रिक चिंतन पैदा करती है जिससे केवल सतही व सैद्धांतिक तौर पर ही समस्याओं का समाधान संभव हो पाता है। विचारधारा के प्रवाह में बहने वाले व्यक्तियों का निजी व्यक्तित्व खो जाता है। प्रयोगवादी कवि स्वयं के विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। वे विचारधाराओं से अपने काम भर का तत्व स्वीकारते हैं। मुक्तिबोध ने मार्क्सवाद से तो अज्ञेय आदि ने फ्रॉयड के मनोविश्लेषण ावाद से प्रेरणा ग्रहण की है, पर ये सभी कवि विचारधारा की बेड़ियों से स्वयं को मुक्त रखते हैं।

(*iv*) व्यक्ति को महत्त्व–प्रयोगवादी कवि सामाजिकता का निषेध नहीं करते परंतु व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता पर बल अवश्य देते हैं। इनका मानना है कि व्यक्ति समाज 'से' तो नहीं किंतु समाज 'में' अवश्य स्वतंत्र है। इनकी स्पष्ट मान्यता है कि कविता जिस अनुभव से रची जाती है वह वैयक्तिक ही हो सकता है, सामाजिक नहीं। अज्ञेय ने 'नदी' तथा 'द्वीप' के प्रतीकों से समाज व व्यक्ति के संबंधों के कई प्रतीकात्मक चित्र खींचे हैं। उदाहरण के लिए–

''हम नदी के द्वीप हैं/हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये/
वह हमें आकार देती है/--- किंतु हम हैं द्वीप/हम धारा नहीं हैं/स्थिर समर्पण है हमारा/
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के/किंतु हम बहते नहीं हैं/क्योंकि बहना रेत होना है।''

नोट

(*v*) **क्षण को महत्त्व**–प्रयोगवाद अनुभूति का काव्य है और अनुभव क्षणजन्य होता है, युगजन्य नहीं। इसलिए ये कवि क्षण को महत्त्व देते हैं, प्रगतिवादियों की तरह 'युगों' के आधार पर काव्यानुभूति का स्वरूप तय नहीं करते। इन कवियों का मानना है कि कविता स्वानुभूति से बनती है और अनुभूति का सहज संबंध क्षण से ही हो सकता है। अज्ञेय की प्रसिद्ध कविताएँ 'एक बूँद सहसा उछली' तथा 'थिर हो गई पत्ती' इस दृष्टिकोण को प्रबलता से प्रस्तावित करती हैं। एक और कविता में यह भाव इस रूप में व्यक्त हुआ है–

''और सब समय पराया है
बस उतना ही क्षण अपना
तुम्हारी पलकों का कँपना।''

(*vi*) **यौन चेतना की प्रबलता**–प्रयोगवादी काव्य में यौन चेतना के कई बिंब दिखाई पड़ते हैं जो संभवत: फ्रॉयड के मनोविश्लेषणवाद के वैचारिक प्रभाव से निर्मित हुए हैं। ये कवि व्यक्ति की सहजता की व्याख्या उसकी यौनिकता की सहज अभिव्यक्ति के अर्थ में करते हैं। अज्ञेय का मानना है कि **''आज के सामान्य मनुष्य का मन यौन कुंठाओं से भरा पड़ा है।''** इन्होंने माना कि नैतिकता का निर्धारण यौन संबंधों से नहीं हो सकता। जो दृष्टिकोण बच्चन ने 'उत्तर-छायावाद' के दौरान विकसित किया था, उसी का तार्किक विस्तार अज्ञेय, धर्मवीर भारती व नरेश मेहता के प्रयोगवादी काव्य में हुआ है। अज्ञेय की **'सावन मेघ'** तथा धर्मवीर भारती की **'ठंडा लोहा'** नामक कविताएँ इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं। धर्मवीर भारती लिखते हैं–

''न हो ये वासना तो ज़िंदगी की माप कैसे हो?
किसी के रूप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो?
नसों का रेशमी उफान मुझ पर शाप कैसे हो?'' **–धर्मवीर भारती**

(*vii*) **शहरी प्रेम दृष्टि**–प्रयोगवादी कवि शहरी हैं। इनका प्रेम बौद्धिक है, शुद्ध भावात्मक एवं काल्पनिक नहीं। इनका प्रेम जीवन की एक ज़रूरत है। इनका प्रेम अशरीरी नहीं है, उसमें शरीरी पक्ष अनिवार्यत: उपस्थित है। ये कवि प्रेम के प्रति छायावाद की तरह रोमानी नज़रिया नहीं रखते बल्कि एक पारस्परिक ज़रूरत की पूर्ति समझते हैं। यही कारण है कि प्रेम के प्रति इनमें वह समर्पण-भाव या कैशोर उद्वेग नहीं दिखता जो छायावाद में था–

''फूल को प्यार करो,
और झरे तो झर जाने दो,
जीवन का सुख लो
देह, मन, आत्मा की रसना से
पर मरे तो मर जाने दो।'' **–अज्ञेय**

(ख) शिल्प

प्रयोगवादियों ने शिल्प को अत्यधिक महत्त्व दिया। इन्होंने शिल्प को कविता की निर्धारक विशेषता माना। इनके अनुसार, कवि की मुख्य चुनौती संवेदना की अनुभूति करना नहीं, बल्कि उसकी सटीक अभिव्यक्ति करना है। कवि तथा अ-कवि में मूल अंतर संवेदना का नहीं, अभिव्यक्ति-सामर्थ्य का ही होता है।

(*i*) **भाषा**–प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को काफी महत्त्व दिया। अज्ञेय कहते हैं–**''भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, जानने का माध्यम भी है। जितनी हमारी भाषा**

नोट

होती है, हम उतना ही सोच सकते हैं।'' इन कवियों ने शब्दों को खुला आमंत्रण दिया। तत्सम, तद्भव, अंग्रेजी आदि विविध स्रोतों से शब्दों का चयन किया।

शब्दशक्तियों की दृष्टि से इन्होंने लक्षणा का अधिक प्रयोग किया, जैसे–

''कितने कमरों में बंद हिमालय रोते हैं,

मेजों से लगकर सो जाते कितने पठार।'' **–धर्मवीर भारती–'ठंडा लोहा'**

इन्होंने संज्ञाओं, विशेषणों तथा क्रियाओं का प्रयोग इस प्रकार किया कि ये शब्द एक-दूसरे के रूप में प्रयुक्त होने लगे। संज्ञा से क्रिया और विशेषण तथा विशेषण से संज्ञा बनाने की प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखती है, जैसे–**'हरा'** से हरिया, **'गंध'** से गंधाते, **'छंद'** से छंदित।

इन्होंने अक्षरों के टाइप पर भी विशेष ध्यान दिया क्योंकि इस समय तक 'श्रव्य कविता' का महत्त्व समाप्त होने लगा था। कविता 'पाठ्य कविता' बन गई थी जिसके लिए 'आर्ट ऑफ रीडिंग' पर ध्यान देना जरूरी हो गया था।

(ii) **अप्रस्तुत विधान**–इसके यहाँ उपमान बहुत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि कविता की ताज़गी या बासीपन उपमानों पर ही निर्भर है। कुछ नए उपमान हैं–

नवंबर की दोपहर – जॉर्जेट के पीले पल्ले सी

मौन – धूल भरी बाँसुरी सरीखा

अज्ञेय की कविता 'कलगी बाजरे की' नवीन उपमानों की ज़रूरत पर ही रची गई है। वे लिखते हैं–

"अगर मैं तुमको/ललाते सांझ के नभ की अकेली तारिका/अब नहीं कहता/

तो नहीं कारण/कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है/या कि मेरा प्यार मैला है/

बल्कि केवल यही/ये उपमान मैले हो गए हैं/देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।"

(iii) **प्रतीक**–प्रयोगवाद में बड़े पैमाने पर प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। यथार्थ की जटिलता व सूक्ष्मता को अभिव्यक्त करने के प्रयास में ये प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। सर्वाधिक प्रतीक यौन प्रसंगों से संबंधित हैं। व्यक्ति व समाज के जटिल संबंधों को भी बूंद व समुद्र, द्वीप व नदी, दीप व दीपमाला आदि प्रतीक-युग्मों से व्यंजित किया गया है। ये प्रतीक प्रायः तार्किक हैं, इसलिए अबोधगम्यता की समस्या पैदा नहीं करते। प्रगतिवादियों का आक्षेप है कि यथार्थभीरू होने के कारण इन्होंने कविता में प्रतीकों को पुनः शामिल किया किंतु प्रयोगवादियों का उत्तर है कि वे सूक्ष्म यथार्थ का प्रभावशाली अंकन करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करते हैं।

(iv) **छंद**–प्रयोगवादियों ने छंदों के स्तर पर भी नए-नए प्रयोग किए। मूल रूप से यहाँ छंद के नियम का निषेध ही दिखता है किंतु लय का विशेष ध्यान रखा गया है।

(v) **काव्यरूप**–इनके काव्य को न प्रबंध कहा जा सकता है, न ही मुक्तक। यह कविता प्रयोगधर्मी होने के कारण पारंपरिक काव्यशास्त्रीय ढाँचे का अतिक्रमण करती है। इनकी कविताएँ 'छोटे आकार की प्रगीतात्मक कविताएँ' हैं। हालाँकि इनमें छायावादी प्रगीतों की-सी तीव्र भावुकता नहीं दिखती।

12.1.13 नई कविता से अभिप्राय

(क) नई कविता का आरंभ तथा अर्थ

नई कविता छठे दशक की कविता है। अज्ञेय ने 1951 में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित किया और यहीं से 'प्रयोगवाद' 'नई कविता' में रूपांतरित हो गया। कुछ इतिहासकारों की राय है कि 1954 ई. में जगदीश गुप्त की पत्रिका **'नई कविता'** के प्रकाशन से नई कविता आंदोलन

नोट

का आरंभ हुआ। यह विवाद का विषय है कि नई कविता का अर्थ क्या है एवं नई कविता वस्तुतः किस अर्थ में तथा कितनी नई है? यूँ तो हर युग की कविता पिछले युग की तुलना में नई ही होती है। किंतु, यहाँ नए का अर्थ अद्यतन से नहीं है। दरअसल, इस आंदोलन में जो कविता लिखी गई, वह अपनी अंतर्वस्तु में पहले की परंपरा से काफी अलग है। इस नएपन की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है।

अज्ञेय ने **'अनुभूति की विशिष्टता'** को नई कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता माना तो **गिरिजाकुमार माथुर** ने **'अनुभूति की साधारणता'** को ही विशिष्ट माना। **मुक्तिबोध** के अनुसार, **''नई कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की 'पर्सनल सिचुएशन' की कविता है।''**

नई कविता के प्रमुख कवि हैं–अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, श्रीकांत वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, अशोक वाजपेयी इत्यादि।

(ख) प्रयोगवाद और नई कविता

प्रगतिवाद के बाद हिंदी कविता में स्वानुभूति एवं कला पक्ष पर ज्यादा बल दिया गया। इस दौर में किसी प्रदत्त सत्य का अनुसरण करने की बजाय नए प्रयोग करने पर बल दिया गया। इस प्रवृत्ति के कारण ही यह धारा 'प्रयोगवाद' कहलाने लगी। अज्ञेय आरंभ से ही प्रयोगवाद शब्द को उचित नहीं मानते थे। उन्होंने 1952 ई. में 'नई कविता' शब्द का प्रयोग किया। 1954 ई. में जगदीश चंद्र गुप्त ने इस नाम से पत्रिका भी निकाली। इस रूप में नई कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप कही जा सकती है। आरंभ में नई कविता के कवियों ने स्वयं को प्रयोगवाद से जोड़ा परंतु बाद में वे स्वयं को प्रयोगवाद से भिन्न बतलाने लगे। नई कविता पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव रहा है एवं **अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद** तथा **व्यक्तिवाद** का भी। इस रूप में इस पर प्रगतिवाद का प्रभाव भी है और प्रयोगवाद का भी।

प्रयोगवाद और नई कविता में बीज व वृक्ष का संबंध माना जा सकता है। प्रयोगवाद जहाँ प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में उपजा आंदोलन प्रतीत होता है, वहाँ नई कविता अपने स्वरूप में संश्लेषण एवं समन्वय की कविता है प्रयोगवाद एक हद तक साहित्यिक क्षेत्रों तक सीमित रहने वाला आंदोलन था जबकि नई कविता समग्र एवं जटिल काव्यानुभूति का प्रयोग करती है।

(ग) नई कविता की काल सीमा

नई कविता की काल सीमा को लेकर विवाद है। कुछ प्रमुख मत इस प्रकार हैं–

नंददुलारे वाजपेयी और बालकृष्ण राव का मानना है कि छायावाद के पतन के एकदम बाद 1937 ई. से ही नई कविता का आरंभ हो गया। किंतु, यह मत उचित नहीं है क्योंकि नई कविता में जो आधुनिक भावबोध मिलता है, उसका विकास हम तब से नहीं मान सकते। नई कविता अपने सारतत्व में प्रगतिवाद व प्रयोगवाद का विकास होकर भी उनसे भिन्न आंदोलन है।

लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसका आरंभ 1951 ई. से माना है क्योंकि इसी वर्ष अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ था। 1952 ई. में अज्ञेय ने अपनी कविताओं को नई कविताएँ कहा था। **शमशेर** ने भी इसी समय अपनी कविताओं को **'नई कविता'** कहा।

शंभूनाथ सिंह कहते हैं कि नई कविता को प्रयोगवाद से अलग नहीं किया जा सकता। यह मत भी उचित नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रयोगवाद में प्रयोगशीलता की केंद्रीयता है जबकि नई कविता में 'प्रयोग' केंद्रीय प्रवृत्ति के रूप में नहीं दिखता।

गिरिजाकुमार माथुर एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि नई कविता प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की विरासत से निर्मित संश्लेषण की कविता है। ''नई कविता'' पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही इसका आरंभ माना जा सकता है।

नोट

इन सभी मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद एवं नई कविता में गहरा संबंध होने के कारण किसी एक वर्ष या घटना को नई कविता के आरंभ के रूप में मानना कठिन है। किंतु, यदि कोई घटना सर्वप्रथम इस परिवर्तन को इंगित करती है तो वह 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन है। इसकी भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोगवाद नाम का खंडन कर दिया था। काव्यानुभूति के जिस परिवर्तन की बात ये कवि कर रहे थे वह इसी समय से व्यक्त होने लगी थी। जहाँ तक 'नई कविता' पत्रिका के प्रकाशन की घटना की बात है, वह नई कविता के विकास को रेखांकित करती है, जन्म को नहीं।'

12.1.14 नई कविताकालीन परिस्थितियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व पूँजीवादी और मार्क्सवादी दो खेमों में बँट गए। दोनों गुटों में शीतयुद्ध की स्थिति बन गई। इस दौर में मार्क्सवाद के खिलाफ 'व्यक्ति की स्वतंत्रता' का नारा बुलंद किया गया। इस बात पर ध्यान आकर्षित किया गया कि मार्क्सवाद सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं का अपहरण करता है एवं समाजवादी देशों में बुद्धिजीवियों, लेखकों एवं जनता को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। नई कविता पर मुख्यत: अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव पड़ा। हालाँकि इस पर मार्क्सवाद का प्रभाव भी रहा है। इस तरह नई कविता की दो धाराएँ बनीं–पहली मार्क्सवाद से प्रभावित थी जबकि दूसरी अस्तित्ववाद और व्यक्तिवादी आधुनिकतावाद से।

भारत में स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विषमता कम नहीं हुई। देश के नेतृत्व ने जनता की समस्याओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। इसके परिणामस्वरूप देश में असंतोष, मोहभंग और निराशा की स्थिति बनी क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी लोगों के सपने पूरे नहीं हुए। इसी पृष्ठभूमि पर नई कविता का उदय हुआ। आज़ादी के बाद जो भी विकास हुआ, उसमें मशीनीकरण और शहरीकरण पर बल दिया गया जिसने समाज में यांत्रिकता, अकेलेपन व आत्मनिर्वासन को उत्पन्न किया। इस मशीनीकरण से उत्पन्न नई सभ्यता के मूल्यों को आधुनिकतावाद कहा गया जिसका प्रभाव नई कविता पर पड़ा।

12.1.15 नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

संवेदना

(*i*) **यथार्थ के प्रति उन्मुक्त दृष्टि**–नई कविता में विचारधाराओं की यांत्रिकता से मुक्त होकर अनेक विषयों पर कविताएँ लिखी गईं। नई कविता में 'भोगे हुए यथार्थ' को महत्त्व दिया गया। यह एक ऐसा यथार्थ है जिसमें वायवीयता नहीं बल्कि 'अनुभव की आँच' है। ये कवि छायावादी अति भावुकता व प्रगतिवादी यांत्रिक विचारधारा का खंडन करके अनुभूति की प्रमाणिकता पर बल देते हैं। सर्वेश्वर बताते हैं कि बिना अनुभूति के कविता नहीं लिखी जा सकती–

''लिपटा रजाई में/मोटे तकिये पर धर कविता की कापी/
ठंडक से अकड़ी उंगलियों से कलम पकड़/मैंने इस जीवन की गली-गली नापी/
हाथ कुछ लगा नहीं/कोई भी भाव कमबख्त जगा नहीं।''

नए कवियों ने सत्य की गहराई को अपने अनुभवों से आँका है, सत्य की चोट को स्वयं पर सहा है–

''मैं नया कवि हूँ/इसी से जानता हूँ/
सत्य की चोट कितनी गहरी होती है।'' **–सर्वेश्वर**

(*ii*) **लघुमानववाद की अवधारणा**–अस्तित्ववादी दर्शन तथा विश्वयुद्ध, मशीनीकरण, स्वतंत्रता से मोहभंग आदि स्थितियों के प्रभाव में नई कविता में लघुमानव की धारणा उभरी। 'लघुमानव' वही मानव है जो पहले संस्कृति के केंद्र में था किंतु जिसके महत्त्व में अचानक भारी कमी आई है। यह अपने आत्मसम्मान, संकल्प, जय, पराजय आदि परिस्थितियों को समेटकर आगे

बढ़ता है। उस पर कोई देवत्व आरोपित नहीं है। वह संकट में फँसकर अपना रास्ता स्वयं बनाता है। इसी कारण उसे अपनी लघुता से हीनता की भावना नहीं उपजती बल्कि गर्व की अनुभूति होती है–

''हम छोटे लोग/चाहे अनदेखे बीत जाएँ/
कोई तो देखेगा/ हमारी मुट्ठियों में गुलमोहर के फूल थे
कोई तो चीन्हेगा/हमारे होठों पर कविताएँ थीं।'' **–अशोक वाजपेयी**

नोट

(*iii*) **आधुनिक भावबोध–**आधुनिक भाव-बोध नई कविता की केंद्रीय विशेषता है। जो आधुनिकता भारतेंदु युग से किसी-न-किसी रूप में बढ़ती आ रही थी, वह यहाँ आकर भाव-बोध के स्तर पर पहुँच गई है। अर्थात् इन कवियों के मूल चिंतन में शामिल हो गई है। इस कारण ये कवि संशय, निरर्थकता बोध, मोहभंग जैसी स्थितियों के शिकार हुए हैं।

ध्यातव्य है कि यह आधुनिक भावबोध मार्क्सवादी चिंतकों के विपरीत व्यक्तिवादी आधुनिक भाव-बोध है। इसीलिए प्रगतिवादी समीक्षा के शिखर पुरुष **डॉ. रामविलास शर्मा** ने नई कविता पर अस्तित्ववाद और आधुनिक भाव-बोध के प्रभाव का जिक्र करते हुए लिखा है कि ''नई कविता जीवन के नकार की कविता है। यह जीवन की विकृति की कविता है। यह हर तरह की नकारात्मकता को उत्सव भाव से चित्रित करती है। यह सब वह आधुनिक भावबोध के नाम पर करती है। यह संस्कृति, परंपरा और मनुष्य के उदात्त मूल्यों की उपेक्षा करती है।''

आधुनिक भावबोध की विशेषताएँ

(*i*) शहरीकरण, यंत्रवाद और संबंधहीनता आदि के कारण नगरीय जीवन में जटिलता, तनाव व अलगाव जैसी स्थितियों की उत्पत्ति हुई जिससे वेदना और पीड़ा का जन्म हुआ। नई कविताएँ वेदना को प्रतिष्ठा प्रदान करती हैं क्योंकि यह वेदना अर्जित होने के कारण सकारात्मक है। यह छायावादी वेदना की तरह भावों से नहीं वरन् विचारों की निर्मम ईमानदारी से पैदा होती है। उदाहरण के लिए–

"दु:ख सबको मंजता है/ और चाहे स्वयं/ सबको यह मुक्त करना न जाने,
किंतु जिन्हें यह मंजाता है/ उन्हें यह सीख देता है/ कि दूसरों को मुक्त रखें।" **–अज्ञेय**

"वह पीड़ा है जो/ हमको तुमको सबको अपनाती है।
सच्चाई है/ अनजाने को भी/ हाथ पकड़कर चलना सिखाती है।" **–धर्मवीर भारती**

(*ii*) नई कविता में संवेदना आधुनिक हो गई है। इसलिए जैसे ही कोई बात कवि के सामने आती है, वह उस पर संशय करने लगता है। यह संशय आधुनिक जीवन दृष्टि का प्रस्थान बिंदु है। कवि हर दिए गए सत्य पर संशय करता है क्योंकि यह सत्य की उपलब्धि हेतु वांछनीय है। नरेश मेहता संशय की महत्ता बताते हुए 'संशय की एक रात में' लिखते हैं–

"कौन सा/किसका असत्य/
इस सत्यासत्य का निर्णय/करेगा कौन/
ये सब स्वीकारोक्तियाँ हैं/सत्य नहीं/
ओ पिता/ संशय निकष है/ऋत का भी।"

(*iii*) जब परंपरा द्वारा प्रदत्त मूल्यों के प्रति संशय पैदा होता है तो व्यक्ति के जीवन से सार्थकता व संतोष खत्म होने लगता है। जीवन में यांत्रिकता व अनिश्चयात्मकता आ जाती है जो निरर्थकता बोध को जन्म देती है। नया कवि कहता है–

नोट

''जहाँ लिखा है प्यार वहाँ लिख दो सड़क/ फर्क नहीं पड़ता/
जहाँ लिखा है सड़क वहाँ लिख दो प्यार/ फर्क नहीं पड़ता,
मेरे युग का मुहावरा है/ फर्क नहीं पड़ता,'' **–केदारनाथ सिंह**

''कैसी विचित्र है यह ज़िंदगी
जिसे मैं जीता हूँ
एक सड़ा कपड़ा जो फटता जाता है
ज्यों ज्यों सीता हूँ।'' **–सर्वेश्वर**

(*iv*) संशय बोध के कारण इन कवियों को सभी प्रदत्त मूल्य अप्रासंगिक लगते हैं। यह मूल्यहीनता की स्थिति है क्योंकि इन्हें पुराने मूल्य अनुपयुक्त लगते हैं और नए मूल्य अभी बने नहीं हैं। यही संघर्ष आस्था पर भी प्रश्नचिह्न लगाता है–

''जिसको तुम कहते हो प्रभु/ उसने जब चाहा/
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया/ वंचक है वो।'' **–धर्मवीर भारती**

(*v*) नई कविता महानगर की कविता है, अत: इसकी विषयवस्तु का आधार नगरीय जीवन है। नगरीय जीवन में विडंबनाएँ, विसंगतियाँ और त्रासदियाँ हैं। यहाँ जीता हुआ आदमी अपनी पहचान, अपने जीने का अर्थ, आदमी होने का मतलब–सब कुछ खो चुका है। मानव से अधिक महत्त्वपूर्ण पोस्टर हो गए हैं–

''लेकिन मैं देखता हूँ/ आज के जमाने में/ आदमी से ज्यादा/
लोग पोस्टरों को पहचानते हैं/ वे आदमी से बड़े सत्य हैं।'' **–सर्वेश्वर**

(*vi*) नई कविता की चेतना में इतिहास-बोध प्रभावी नहीं है और उसे भविष्य से कोई सरोकार नहीं है। वह केवल क्षण को ही सत्य मानती है। उसकी व्यक्तिवादी चेतना उसमें क्षणवादी मानसिकता को विकसित करती है। इसी क्षणवाद ने एक ओर कवियों को व्यक्तिगत तथा क्षणिक सत्य खोजने की प्रेरणा दी तथा दूसरी ओर भोगवाद की प्रेरणा दी। निम्नलिखित कविता में क्षण का यही महत्त्व प्रदर्शित किया गया है–

"मैं प्रस्तुत हूँ/ यह क्षण भी कहीं न खो जाए
यह कछुए सी मेरी आत्मा/ पंजे फैला,
असली रूप जो तुम्हें दिखाने को उत्सुक हो उठी है,
क्या जाने/ अगले ही क्षण की आहट पा,
सब कुछ अपने में फिर समेट ले अंदर।" **–कीर्ति चौधरी**

(*vii*) नई कविता में सक्रिय राजनीतिक चेतना भी उपस्थित है। इसका प्रमुख स्वर राजनीति के चरित्र का पर्दाफाश करना है। यहाँ राजनीतिक मोहभंग की स्थिति है क्योंकि स्वतंत्रता के स्वप्न टूट गए हैं। जो स्वतंत्रता मिली है, वह नाम मात्र की है। नया कवि कहता है–

"अपने यहाँ जनतंत्र एक तमाशा है,
जिसकी जान मदारी की आशा है।" **–धूमिल**

शिल्प पक्ष

(*i*) **भाषा**–ये कवि भाषा पर अत्यधिक बल देते हैं। इनके अनुसार, व्यक्ति के अनुभव तथा चिंतन की सामर्थ्य उसके भाषा-बोध पर ही निर्भर है। इनके यहाँ विभिन्न प्रकार के शब्दों को खुला आमंत्रण मिलता है क्योंकि इनके लिए बात को सटीक ढंग से कहना अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह नहीं कि इन्होंने कौन से शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए–

"जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख,
और उसके बाद भी, हमसे बड़ा तू दिख।"

नई कविता की भाषा में अंग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू और लोकभाषा के शब्दों का नि:संकोच प्रयोग हुआ है–

"पिस गया वह भीतरी, औ बाहरी,
दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रैजिडी है नीच।''
''टिक टिक टिक, लैट मी स्पीक।"

नोट

(*ii*) **छंद**–नई कविता छंदमुक्त कविता है। लय भी यहाँ शब्दों में नहीं वरन् अर्थों के स्तर पर सक्रिय है। उदाहरण के लिए–

"तुम क्या जानो,
कितनी लंबी होती है रात,
अकेली
सिसकी की।"

(*iii*) **नए उपमान**–नई कविता में प्रयोगवाद की तरह भाव-बोध की अभिव्यक्ति के लिए नए-नए उपमानों का प्रयोग हुआ है। मुक्तिबोध जैसे कवियों ने प्राचीन व लोक-उपमानों पर ही बल दिया किंतु अज्ञेय और जगदीश कुमार आदि ने उपमानों की ताजगी को प्रस्तावित किया। उदाहरण के लिए–

"चाँदनी चंदन सदृश हम क्यों कहें,
हाथ हमें कमलों सरीखे क्यों दिखें,
हम तो कहेंगे कि चाँदनी उस सिक्के सी है,
जिसमें चमक है पर खनक गायब है।" **–जगदीश कुमार**

(*iv*) **बिंब**–नई कविता बिंबों पर बहुत अधिक बल देती है। केदारनाथ सिंह ने कहा है कि, ''मैं कविता में सबसे अधिक महत्त्व बिंब को देता हूँ।'' यहाँ विराट बिंब नहीं हैं, सहज जीवन के साधारण बिंब हैं। विशेषत: यौन जीवन के बिंबों की बहुलता है। उदाहरण के लिए, एक सहज बिंब दृष्टव्य है–

"जिंदगी दो उंगलियों में दबी,
सस्ती सिगरेट के जलते टुकड़े की तरह है,
जिसे कुछ लम्हों में पीकर,
नाली में फेंक दूँगा।"

(*v*) **काव्यरूप**–नई कविता में प्राय: दो काव्य रूप मिलते हैं–(*i*) लंबी कविता, (*ii*) प्रगीतात्मक छोटी कविता। लंबी कविताओं में कहीं तो विषयवस्तु ऐतिहासिक है जैसे **धर्मवीर भारती की 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', नरेश मेहता की 'संशय की एक रात'** जबकि कहीं विषयवस्तु युगीन बोध से प्रभावित है जैसे **अज्ञेय** की **'असाध्य वीणा', राजकमल चौधरी** की **'मुक्तिप्रसंग'** और **मुक्तिबोध** की **'अंधेरे में'** इत्यादि। ये लंबी कविताएँ छायावादी कविताओं की तरह प्रगीतात्मक नहीं हैं। इनका निर्माण भावनाओं की निरंतरता से नहीं, जटिल समस्या के समग्र विश्लेषण से हुआ है। इसलिए कहीं-कहीं इन्हें **'विश्लेषणात्मक लंबी कविताएँ'** भी कहा गया है। विशेष रूप से मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में यह विशेषता दिखाई पड़ती है।

(*vi*) **फंतासी**–नई कविता में फंतासी शिल्प का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। फंतासी वह कल्पना या स्वप्न है जिसमें चेतन जीवन की अपूर्णताओं को मानसिक स्तर पर उपलब्ध किया जाता है। मुक्तिबोध एवं श्रीकांत वर्मा ने इसका शिल्पगत प्रयोग प्रभावशाली तरीके से किया है।

(*vii*) व्यंग्य–यथार्थबोध से प्रेरित नई कविता में स्थितियों की भयावहता पर चोट करने की गहरी क्षमता है। यहाँ पर राजनीतिक मोहभंग की अनुभूति है किंतु व्यवस्था में परिवर्तन न कर पाने की कसमसाहट भी है। इसलिए विवशता की अभिव्यक्ति व्यंग्य के माध्यम से की गई है।

नोट

"लोकतंत्र को,
लाठी में जूते की तरह लटकाए,
चले जा रहे हैं सभी,
सीना फुलाए।"

–सर्वेश्वर

नई कविता के बाद साहित्यिक आंदोलन प्रायः कम दिखते हैं, किंतु कई साहित्यिक प्रवृत्तियाँ समानांतर रूप में बनी हुई हैं। सामान्य तौर पर 1960 ई. के बाद की संपूर्ण कविता को समकालीन कविता कहा जाता है। इसके अंतर्गत कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ विकसित हुई जैसे–अकविता, जनवादी कविता, नवगीत आंदोलन इत्यादि। इनके अतिरिक्त कुछ गौण प्रवृत्तियाँ जैसे–विचार कविता, बीट कविता, न-कविता इत्यादि भी दिखती हैं।

12.1.16 अकविता या साठोत्तरी कविता

अकविता 1960 ई. के बाद विकसित हुआ आंदोलन है। इसे प्रतिष्ठित करने की पहली कोशिश 1963 ई. में जगदीश चतुर्वेदी के 'प्रारंभ' नामक काव्य संकलन में हुई। अकविता का सबसे प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'विजप' है, जिसमें तीन रचनाकारों–**गंगा प्रसाद विमल (वि), जगदीश चतुर्वेदी (ज) तथा श्याम परमार (प)** की रचनाएँ संकलित थीं। इस आंदोलन के अन्य प्रमुख कवि हैं–धूमिल, राजकमल चौधरी, मोना गुलाटी, सौमित्र मोहन, मुद्राराक्षस इत्यादि। इनके अतिरिक्त कैलाश वाजपेयी, श्रीकांत वर्मा व सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कुछ कविताएँ भी इस आंदोलन में शामिल की जाती हैं।

अकविता को कहीं-कहीं साठोत्तरी कविता भी कहा जाता हैं। साठोत्तरी कविता के दो अर्थ हैं। सामान्य अर्थ में 1960 ई. के बाद की सारी कविता इसमें शामिल होती हैं। किंतु अब 'साठोत्तरी' को विशेषण नहीं बल्कि संज्ञा का अंश मान लिया गया है अर्थात् यह काल-सूचक नाम नहीं हैं। इस दृष्टि से 'साठोत्तरी कविता' नामकरण अकविता के लिए ही रूढ़ हो गया है।

अकविता आंदोलन भारतीय समाज की परिस्थितियों से स्वभावतः उपजा आंदोलन नहीं है। यह पश्चिम के बौद्धिक प्रभावों से निर्मित हुआ है। पश्चिम के 'एंटी पोएट्री' (Anti Poetry) आंदोलन का वैचारिक प्रभाव तो इस पर है ही, इसका नाम भी उसका अनुवाद है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पश्चिम में स्त्री-पुरुष अनुपात में बड़ा असंतुलन पैदा हुआ तथा युद्ध के कारण जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास होने से सुखवादी मानसिकता पैदा हुई। इस मानसिकता का प्रतिनिधित्व यूरोप तथा अमेरिका में **'हंगरी जनरेशन'** ने किया। इस भूखी पीढ़ी ने जिस प्रकार नैतिकता के सभी प्रतिमानों की धज्जियाँ उड़ायीं, उसी का प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में अमेरिका की 'बीट जनरेशन', इंग्लैंड के 'टैडी बॉयज़' तथा जापान के 'सन ट्राइबर्स' पर पड़ा। इन्हीं सब आंदोलनों से बंगाल के कुछ कवि प्रभावित हुए, जिन्हें 'विक्षुब्ध पीढ़ी' कहा गया। हिंदी का अकविता आंदोलन 'हंगरी जनरेशन' तथा 'विक्षुब्ध पीढ़ी' के प्रभावों से निर्मित हुआ। हंगरी जनरेशन के प्रमुख कवि थे–एलेन जिंसवर्ग, चार्ल्स मोल्सवर्थ, लैरी जॉन्स आदि। विक्षुब्ध पीढ़ी में चार कवि प्रसिद्ध थे–मलयनाथ चौधरी, देवीशंकर चट्टोपाध्याय, तपन दास तथा बिमल बसाक।

अकविता के नामकरण पर विवाद है। अकविता के विरोधियों की धारणा है कि 'अ' उपवर्ग का अर्थ 'निषेध' या 'विरोध' से है। इनके अनुसार, अकविता वस्तुतः 'कविता के विरुद्ध' है। आज तक के सभी काव्य-आंदोलन में कुछ मुद्दों पर मूल सहमति रही है किंतु अकविता इस सहमति को तोड़ती है। यह कविता की कोई सामाजिक भूमिका नहीं मानती है। इसके विपरीत, अकवियों की धारणा है कि 'अ' का अर्थ औपचारिकताओं से मुक्ति का प्रतीक है, निषेध या नकार का नहीं। यह कविता, कविता के उन नियमों को खारिज करती है, जो उस पर थोपे गए हैं। कवि अपनी हर बात को बिना किसी औपचारिकता के कविता में कह सके–यही अकविता का प्रयास है।

अकविता की विशेषताएँ

नोट

1. अकविता को प्राय: 'अवाँगार्द' (Avant-grade) लेखन कहा गया है। अवाँगार्द लेखन की धारणा पश्चिमी साहित्य की है। इसका शाब्दिक अर्थ है–सेना की अगली टुकड़ी। जिस प्रकार सेना की अगली टुकड़ी सर्वाधिक आक्रामक तथा विध्वंसक होती है, वैसे ही अकविता में भी सामाजिक, राजनीतिक आदर्शों व विचारधाराओं के प्रति विध्वंस का भाव दिखता है। कैलाश वाजपेयी लिखते हैं–

   ''पर जब सभी कुछ/ ऊल ही जुलूल है/ सोचना फिजूल है।''

2. अकविता विचारधाराओं तथा विचारों की विदाई की कविता है। यह किसी भी राजनैतिक विचारधारा को उपयोगी नहीं मानती। लोकतंत्र, समाजवाद जैसे तमाम शब्द इन कवियों के लिए निरर्थक हो चुके हैं। जगदीश चतुर्वेदी ने 'प्रारंभ' की भूमिका में लिखा है–''राजनीतिक विचारों पर काव्यधारा रचने का ज़माना लद चुका है। यह कहने में मुझे कोई अड़चन नहीं कि किसी भी कुंठित या ग्रस्त राजनीतिक विचारधारा में हमारा विश्वास नहीं।'' कैलाश वाजपेयी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'परास्त बुद्धिजीवी का वक्तव्य' में यही भाव इस प्रकार व्यक्त किया है–

   ''न हमारी आँखें हैं आत्मरत,
   न हमारे होंठों पर शोकगीत,
   जितना कुछ ऊब सके ऊब लिए
   हमें अब किसी भी व्यवस्था में डाल दो।''

3. लघु मानव की जो चेतना नई कविता में निरर्थकता बोध को जन्म दे रही थी, वह यहाँ और अधिक तीव्र हो उठी है। ये कवि स्वाधीनता आंदोलन के सपनों को एक-एक कर टूटते हुए देख चुके हैं। ये अपने समकालीन यथार्थ से बेचैन हैं, किंतु उसे बदल पाने में असमर्थ हैं। लंबे समय तक क्रांतिकारी तेवर रखने के बाद अब ये समझ चुके हैं कि उनमें यथार्थ को बदलने की जरा भी शक्ति नहीं है। यही पराजय बोध या असामर्थ्य बोध इन्हें निरर्थकता के भाव से भर देता है। प्रभाकर माचवे लिखते हैं–

   ''घूँट-घूँट/ साइनाइड पीता हूँ/ एक घिसे सोल के/फटे जूते का/
   टूटा हुआ फीता हूँ (मन को समझाता हूँ, क्रांति का पलीता हूँ)

   इसी प्रकार, सर्वेश्वर लिखते हैं–

   ''मैं हँसता हूँ/ गाता हूँ/ रोता हूँ, चीखता हूँ/ प्यार करता हूँ, गालियाँ देता हूँ/
   लेकिन हर स्थिति में/ वैसा का वैसा ही रह जाता हूँ/ जैसे मैं मुर्दों के बीच हूँ।''

4. मानवीय संबंधों के प्रति अनास्था का भाव अकविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। प्रेम के प्रति इनमें न छायावादी रोमानियत है, न प्रगतिवादी दाम्पत्य-चेतना। प्रयोगवाद व नई कविता में जिस प्रकार प्रेम को एक मानसिक व शारीरिक ज़रूरत समझा गया, इनके यहाँ वैसा दृष्टिकोण भी नहीं है। ये प्रेम शब्द से ही नफरत करते हैं, क्योंकि इनकी राय में यह एक नकली व लिज़लिज़ा शब्द है। जगदीश चतुर्वेदी अपनी कविता 'इतिहासहंता' में लिखते हैं–

   ''मैं प्रेम जैसे अभिशप्त रोग को मुट्ठी में भरकर,
   आग में झोंक देना चाहता हूँ,
   मैं आसपास के घरों में एक हाहाकार मचाना चाहता हूँ,
   एक अनिर्दिष्ट व्याघात।''

नोट

सौमित्र मोहन ने भी संबंधों के लिज़लिज़ेपन पर निम्नलिखित कविता लिखी है–

''अगर कोई जीने की शर्त है तो,
यह कि आदमी सड़क
का कुत्ता बन जाय या बीवी
का गुलाम या एयर इंडिया
का विज्ञापन।''

5. अकविता महानगरीय बोध की कविता है। अकविता में शामिल कवि मूलत: कस्बों के लोग हैं, जो महानगरीय जीवन के तनाव सहजतापूर्वक झेल नहीं पाते। जगदीश चतुर्वेदी ने इस नगरजन्य वेदना को विश्लेषित करते हुए लिखा है कि–''हममें से अधिकांश कवि महानगरों या नगरों में रह रहे हैं। नगरों का जीवन यांत्रिक हो गया है। व्यस्तता में लीन एक अजीब-सी उमस और अजनबियत तथा अकेलेपन की भावना हममें घर करती जा रही है।'' इसी महानगरीय-बोध को कुमार 'विकल' अपनी कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

''भीड़ के साथ/ दौड़ता जाता हूँ/ जबकि मैं जानता हूँ,
कि भीड़ की आँखें नहीं होतीं/ केवल आवाज़ होती है।''

6. अकविता में नारी के प्रति गरिमापूर्ण दृष्टिकोण नहीं मिलता। इन कवियों की चेतना प्रेम को मुक्त दैहिक भोग से ऊपर नहीं देखती। यही कारण है कि नारी इनकी कविताओं में प्राय: वस्तु बनकर आती है, उसका व्यक्तित्व नहीं उभर पाता। श्रीकांत वर्मा ऐसे ही निषेध भाव से लिखते हैं–

''कवियों की झूठ में लिपटी हुई,
वेश्या माँ,
अपनी संतानों का स्वर्ग देख रही है।''

7. अकविता भाषा और शिल्प के दृष्टि के प्रति कोई सैद्धांतिक दृष्टिकोण प्रस्तावित नहीं करती क्योंकि उसका उद्देश्य सभी औपचारिकताओं से मुक्ति है। वस्तुत: इसमें भाषा तथा कविता के प्रति निषेध का भाव दिखता है जो इनके सर्वतोन्मुखी निषेध का ही एक हिस्सा है। निम्नलिखित उदाहरणों में ऐसा ही भाव दिखता है–

''मगर खबरदार मुझे कवि मत कहो,
मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ/ ईजाद करता हूँ/ गाली/
फिर उसे बुदबुदाता हूँ/ मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ।'' **–श्रीकांत**

''अब यहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है,
पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों में,
× × × ×
अर्थ खोजना व्यर्थ है।'' **–धूमिल**

स्पष्ट है कि अकविता नई कविता की निषेधवादी प्रवृत्तियों का विस्तार है। हिंदी कविता के इतिहास में साधारणत: इसे अंधकार व पतन का काल माना गया है।

12.4. सारांश (Summary)

- प्रारंभ में 'छायावाद' का प्रयोग व्यंग्य रूप में उन कविताओं के लिए किया गया जो अस्पष्ट थीं, जिनकी 'छाया' (अर्थ) कहीं और पड़ती थी, किंतु कालांतर में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी।

- छायावादी काव्य का जन्म द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ, क्योंकि द्विवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी, जबकि छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ, कल्पनाप्रधान एवं सूक्ष्म है।
- छायावाद हिंदी काव्य का गौरवपूर्ण अध्याय है तथा प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इस युग के ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनके योगदान से हिंदी साहित्य को श्री समृद्ध प्राप्त हुई है।
- मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य 'स्वायत्त' या 'स्वतंत्र' संरचना नहीं है बल्कि समाज की उत्पादन प्रणाली का ही एक उप-उत्पाद है।
- आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास में सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही एक नया मोड़ उपस्थित होता है जिसे 'प्रयोगवाद' कहा गया है।
- प्रगतिवाद कलाकर्म को सामाजिक कार्य मानता है तथा इन दोनों की अद्वैतता की घोषणा करता है जबकि प्रयोगवाद के अनुसार कविता के प्रति दायित्व और नागरिक दायित्व में मूलभूत फर्क है।
- नई कविता छठे दशक की कविता है। अज्ञेय ने 1951 में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित किया और यहीं से 'प्रयोगवाद' 'नई कविता' में रूपांतरित हो गया।
- अकविता 1960 ई. के बाद विकसित हुआ आंदोलन है। इसे प्रतिष्ठित करने की पहली कोशिश 1963 ई. में जगदीश चतुर्वेदी के 'प्रारंभ' नामक काव्य संकलन में हुई। अकविता का सबसे प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'विजप' है।

नोट

12.5. शब्दकोश (Keywords)

1. **स्वीकार्य**–जिसको मान लिया जाए, मंजूरी, सहमति
2. **पुनर्विचार**–किसी विषय पर दुबारा चिंतन करना

12.6. अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. छायावाद का अर्थ, परिभाषा और छायावादी काव्य विशेषताओं का वर्णन करें।
2. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता से क्या तात्पर्य है? वर्णन करें।
3. साहित्य की मार्क्सवादी परिभाषा तथा साहित्यिक दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
4. प्रयोगवाद एवं प्रगतिवाद में अंतर स्पष्ट करें तथा प्रयोगवाद का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए।
5. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–**
   1. ..... में वैयक्तिक सुख-दु:ख की खुलकर अभिव्यक्ति हुई है।
   2. छायावादी कवियों ने नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण अपनाकर समाज में उसके सम्मानीय स्थान का ..... किया।
   3. छायावादी काव्य में ..... प्रवृत्ति भी प्रमुख रूप से उपलब्ध होती है।
   4. ..... के गीत छायावाद से अलग न हटकर उसकी संभावनाओं से निर्मित हैं।
6. **बहुविकल्पीय प्रश्न–**
   1. वैयक्तिक गीतिकविता की अभिव्यक्ति उसकी एक ..... है।
      (क) अमूल्य देन (ख) विशेष देन
      (ग) बड़ी देन (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
   2. भारतीय राष्ट्रीयता में स्व-रक्षा का भाव प्रधान था, जबकि स्वतंत्र ..... देशों में स्व-विकास का।
      (क) उत्तरी (ख) दक्षिणी
      (ग) पूर्वी (घ) पश्चिमी

नोट

3. मार्क्स के अनुसार, शोषित वर्ग की समस्याओं का एक ही समाधान है कि वह ..... होकर हिंसक क्रांति करे।

(क) एकत्रित (ख) क्रोधित

(ग) संगठित (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

4. ..... कवि साम्यवाद के आदर्श में पूरा विश्वास रखते हैं।

(क) एकतावादी (ख) रूढ़ीवादी

(ग) समतावादी (घ) प्रगतिवादी

7. निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. प्रयोगवाद में प्रयुक्त प्रयोग शब्द नए जीवन सत्यों को पाने की बेचैनी का द्योतक है।
2. क्या प्रयोगवाद मानता है कि कविता के उद्देश्य कविता से बाहर होते हैं?
3. क्या प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को काफी महत्त्व दिया है?
4. प्रगतिवाद के बाद हिंदी कविता में स्वानुभूति एवं कला पक्ष पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है।

12.7. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. भक्तिकालीन साहित्य – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
2. रीतिकाल साहित्य – डॉ. नगेन्द्र
3. आधुनिक साहित्य – डॉ. राजनाथ वर्मा
4. हिंदी साहित्य – डॉ. भोला नाथ तिवारी